जीवन ज्योत जले

परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी

जीवन ज्योत जले
परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी

जीवन ज्योत जले

परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वतीजी महाराज

प्रकाशक :

इन्डिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन

'परमार्थ निकेतन'

पो. आ. स्वर्गाश्रम

ऋषिकेश - 249304

हिमालय - इन्डिया

Ph. (0135) 2440088, 02434301; Fax (0135) 2440066
Emial : swamiji@parmarth.com
Websites: www.parmarth.com & www.ihrf.com

Note: from abroad, dial + 91-135 instead of (0135) for phone and fax

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

सभी सुख को प्राप्त हों, सभी रोग मुक्त हों,
सभी कुशल मंगल हों और किसी को दुःख न हो।

प्रस्तुतिः

"अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।"

हम सब सांसारिक विषमताओं की लहरों की प्रतिकूल स्थितियों से उत्पन्न काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि के विषयचक्र में लगातार घूमते रहते हैं। हमारे चारों ओर अज्ञान, अंधकार इस कदर व्याप्त हैं कि हमें ज्ञान के सूर्य का दर्शन उपलब्ध नहीं है और न ही उससे बाहर निकलने का मार्ग हम खोज पाते हैं। इन परिस्थितियों में श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का ज्ञानाञ्जन ही हमारे तमसावृत जीवन को अपने चिर-प्रकाश से प्रकाशित करने में सक्षम हो सकता है। ऐसे समर्थ सद्‌गुरु के आत्मज्ञान का अंजन यदि हमारे नेत्रों में लग जाए तो हम उस अज्ञान, अंधकार से पृथक होकर अनायास ही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त कर ईश्वर की करुणा का पात्र बन जाएंगे।

सद्‌गुरु का गुणगान करने के लिए शब्दोंकी असमर्थता प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि शाब्दिक व्यंजनायें भी उस छोर तक पहुँचने में पूर्ण असमर्थ हैं। सद्‌गुरु के महत्व को आदि शंकराचार्य जी एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं:-

"दृष्टान्तो नैव दृष्टिस्त्रिभुवन जठरे सद्‌गुरोर्ज्ञानदातुः,
स्पर्शेणापि च तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णतामेतिसारम्॥
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरण युगे सद्‌गुरुः स्वीय शिष्ये,
साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वालौकिकोऽपि॥"

"आत्मज्ञान प्रदान करने वाले सद्‌गुरु के लिए त्रिभुवन में कोई उपमा नहीं है। पारसमणि की उपमा देना भी व्यर्थ है, क्योंकि पारसमणि लोहे को सोना तो बनाती है, पारस नहीं, जबकि सद्‌गुरु अपने चरणों में पूर्ण निष्ठा से आश्रय लेने वाले शिष्य को अपने जैसा ही दूसरा पारसमणि बना देता है।"

शास्त्रों के अध्ययन से अध्यात्म - पथ की अनेक दिशाओं का ज्ञान तो मिलता है लेकिन जो इस मार्ग का अनुभवी पथिक है, वही साधक को मार्गदर्शन करा सकता है।

यही कारण है कि साधनाकाल में समर्थ सद्‌गुरु का सान्निध्य आवश्यक है। ऐसे समर्थ सद्‌गुरु के दर्शन मात्र से ही युगों-युगों से अंतर में सोयी चेतनाशक्ति स्वयं जागृत हो जाती है।

परम पूजनीय श्री स्वामी चिदानंद सरस्वती जी महाराज के दर्शन मात्र से अंधकार में डूबे मनुष्य को प्रकाश की वह किरण दिखाई देती है जो धीरे-धीरे साधक के मार्ग को सुगम व प्रशस्त बनाती रहती है।

पिछले कई वर्षों से हमें पूज्य स्वामीजी की अमेरिका की धर्मयात्रा का लाभ मिला है। यह जीवन की अनमोल उपलब्धि ही थी। जैसे एक ज्योति हमारे अंधकार मय मार्ग को प्रकाशित करती हुई निरंतर आगे बढ़ रही है तथा समग्र मानव जाति को वह संदेश दे रही है "तुम भी इसी पथ पर चले आओ, इसी में तुम्हारा कल्याण है। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

ईश्वर यदि सर्वव्यापी है तो उसने अपनी अभिव्यक्ति कराने के लिए सद्‌गुरु की प्राप्ति कराकर ही अपने स्वरूप का दर्शन करा दिया। इसका फल यह हुआ कि ईश्वर दर्शन विषय-ऐषणा का नितांत अभाव हो गया। सांसारिक दायित्वों में उलझे हुए जब हम आध्यात्म के पथ पर आगे बढ़े तो मार्ग में अनेक अन्तरालों एवं अवरोधों का सामना करना पड़ा जिससे मन सांसारिक द्वंद्वों में पुनः फंसने लगा। पूज्य स्वामी जी की कृपा से अध्यात्म जीवन की जो अनुभूति मुझे हुई, उससे मेरी श्रद्धा, मेरा धैर्य, मेरा भरोसा प्रबल हुआ। जीवन को एक नई दृष्टि एवं उत्साह मिला जैसे अंधकार में फंसी नौका को अचानक कोई मांझी मिले और किनारा भी दिखाई दे।

पूज्य स्वामी जी के जीवन कार्य में, उनके प्रवचनों में या उनकी अध्यात्म पथ की प्रेरणा में न कोई पंथ विशेष है और न ही किसी विधि-विधान की बेड़ियां। केवल ईश्वर प्रेरित कार्य, ध्यान, जप एवं मौन का संदेश हमेशा मिलता रहा है। आध्यात्मिक अभिमुखता का यह प्रथम सोपान है।

धीरे-धीरे आगे का पथ साधक के लिए अपने आप ही खुलता जाता है और जीवन की प्राप्ति का अर्थ धीरे-धीरे समझ में आता है। संसार के प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपने आप मिलने लगता है तथा प्रत्येक शंका का समाधान अपने आप ही होता है। सद्‌गुरु की कृपा होने के बाद हृदय के भावों को व्यत करना या उसका विश्लेषण करना असंभव लगता है। वह केवल अनुभवगम्य हो जाता है।

आज जगत में चारों ओर द्वेष एवं प्रतिशोध की ज्वालाएं धधक रही हैं। तब मैत्री, मुदिता और करुणा की पवित्र सलिला बहाने वाले इस आत्मनिष्ठ एवं ब्रह्मनिष्ठ संत के लिए युगों - युगो तक अपना जीवन समर्पित कर दिया जाए तो भी कम है।

प्रातः स्मरणीय सद्‌गुरु श्रीस्वामी जी महाराज भारतीय संस्कृति, मानवता एवं धर्म के प्रचार - प्रसार के लिए अपना जीवन समर्पित कर रहे हैं। भारतीय इतिहास में एक भागीरथ ने जन्म लिया था जिसने भगीरथ प्रयत्न से गंगा मैया को पृथ्वी पर अवतरित कराने का महनीय गौरव प्राप्त किया था। यह घटना भले ही सतयुग की हो पर आज इसकी समानता करने वाले पूज्य स्वामी जी एकता, प्रेम और अहिंसा की गंगा को पूरे विश्व में प्रवाहित कर रहे हैं।

''हिन्दू धर्म विश्वकोष'' रूपी ज्ञान गंगा का अवतरण कराकर न केवल पहाड़ की घाटियों में सीमित रखा बल्कि घर-घर में ज्ञान गंगा की धारा प्रकट कर रहे हैं। समस्त विश्व के द्वारा इस कार्य को सराहा गया है एवं सहयोग का आश्वासन भी प्राप्त हुआ है।

अमेरिका में आयोजित विशेष कार्यक्रम के अवसर पर हमारे पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने इस कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा- ''हिन्दू धर्म विश्वकोष एक महान यज्ञ है। विश्व भर के विद्वान चिंतक इसमें ज्ञान-दान से सहयोग दे रहे हैं। हम सबका अब दायित्व बन जाता है कि अपने धनराशि दान से इस यज्ञ में अपना सहयोग दें। जिस किसी रूप से भी संभव हो, इसमें सहयोग प्रदान करें। यह किसी एक व्यति, समाज या राष्ट्र का ही कार्य नहीं है बल्कि समूचे विश्व का कार्य है।''

पूज्य स्वामी जी ज्ञान की मशाल लेकर पूरे विश्व में भ्रमण कर रहे हैं। उनकी वह मशाल संपूर्ण मानव जाति को अपनी ज्योति से जगा रही है।

पूज्य स्वामी जी की वाणी में शास्त्रों का अर्थ और उनके प्रत्येक कार्य में तथा आचरण में ईश्वरीय स्पर्श की झलक दिखाई देती है। पूजा जब आचरण में उतरती है। तब ही दिव्यता का विकीरण होता है। इस सिद्धान्त को व्यवहार बनाकर पूज्य स्वामीने सार्थक कर दिखाया। विश्वम्भर से अविभक्त यह संत भक्ति के माध्यम से मानव मात्र की भावात्मक एवं भावुक जीवन की दीक्षा दे रहे हैं। उनका मौन भी एक व्याख्यान है। जिसे देखकर ही सारे संशयों का उच्छेदन भी हो जाता है। स्वामी जी जब अपने व्याख्यान में गीता के श्लोकों को उद्धृत करते हैं और उसके अर्थ का घटन करते हैं तब ऐसा लगता है कि गीता के गायक योगेश्वर कृष्ण उनकी वाणी में विराजमान होकर गीता का संदेश दे रहे हैं, मानो स्वामी जी को माध्यम बनाकर अपने हृदय के भाव को प्रकट कर रहे हैं। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि स्वामी जी के शदों के पीछे उनके जीवन की तीव्र तपश्चर्या बोल रही है या अनवरत कर्मयोग की गति में भक्ति की शक्ति बोल रही है। स्वामी जी की हृदय की गहराई से निकलने वाली वाणी मनुष्य को शीतलता प्रदान करती है। जीवन के संतापों का हरण होता है, पथ से भटके, पथिक को सन्मार्ग प्राप्त होता है।

पूज्य स्वामी जी ने अपना संपूर्ण जीवन मानवता के नाम कर दिया है। इसलिए तूफानों एवं मुश्किलों से टकरा कर भी बुद्ध की करुणा, राम की मर्यादायें, महावीर का प्रेम, कृष्ण की मस्ती उनके हृदय को छूती हुए वाणी के माध्यम से जीव मात्र को शांति देती है।

केवल आठ वर्ष की लघु आयु में उनके मन में अध्यात्म जगत की अभीप्सा जगी थी। जब सांसारिक जगत में इस आयु के बच्चे भांति - भांति के खिलौंनों के खेलने में व्यस्त रहते हैं, तब भविष्य के इस फकीर ने (पू.स्वामीजी ने) अपने जीवन के लिए एक दूसरा ही पथ चुना। उन्होंने आठ वर्ष की कम उम्र में एक साल तक पूर्ण मौन रखा और एकान्त का सेवन किया, किन्तु पहले ही वर्ष में एक उल्लेखनीय घटना घटी। घर में रहकर मौन-एकान्त सेवन करना, शाम के वक्त केवल एक कप दूध पीना - यही साधना क्रम बना। उनके माता

– पिता भी धन्यवाद के पात्र हैं। आठ साल के कोमल बालक की ऐसी कठोर साधना में प्रवृत्त होने पर भी किसी प्रकार की न तो आपत्ति ही करते थे और न व्यवधान ही उपस्थित करते थे। ऐसे कठोर अनुशासन से गुजरते देख पाना भी सहन शक्ति का आदर्श है। फिर भी माँ का दिल तो कोमल होता है, एक दिन माँ को दया आ गई उन्होंने शाम को दूध के बजाय रबड़ी देना शुरू किया। गुरु भी ऐसे सिद्ध पुरुष कि दूर रहकर भी उन्हें अंदेशा हो गया। एक दिन वे आए और माँ से कहने लगे; इस बालक को जो दे रही हो वह उचित नहीं है। माता को अपनी गलती का अहसास हुआ। आठ वर्ष के बालक को गुरु की डाँट सुननी पड़ी। अध्यात्म जगत का यह पहला बोध था।

इस तरह से एक वर्ष के कठोर मौन और अनुशासन से गुजरने के बाद नौवें वर्ष में बालक अपने आध्यात्मिक गुरु के साथ हिमालय जाने के लिए चल पड़ा। इस आयु के बच्चे में एकांत का जो भय होता है उसे बहुत जल्दी दूर कर लिया, तथा बालक ने अनुभव किया कि ईश्वर के सान्निध्य में शांति और सुख मिलता है। वे दिन के ग्यारह घंटे लगातार ध्यान एवं साधना में बिताते थे। उनके गुरु उन्हें सत्रह वर्ष की उम्र में ऋषिकेश के पवित्र स्थान 'परमार्थ निकेतन' में ले आए। जहां आपने संस्कृत एवं तत्वज्ञान में स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण की। आज पूज्य स्वामीजी विश्व की कई भाषाओं पर अपनी पकड़ बनाए हुए हैं।

इन्हीं घटनाक्रमों में स्वामी जी की युवावस्था में होने वाली एक आध्यात्मिक आश्चर्यजनक एवं विलक्षण घटना भी महाराज जी के जीवन में घटी, जिसका अलौकिक प्रभाव उनके आज तक के जीवन में दृष्टिगत हो रहा हैः

आज से पैतीस साल पहले की बात है।

नाथद्वारा में संत सम्मेलन हुआ। वहाँ संपूर्ण भारत से कई संत पधारे थे। संत समारोह शुरू हुआ।

कुछ संतों के प्रवचन के बाद अंत में एक युवा संन्यासी का प्रवचन शुरू हुआ। वैसे तो युवा संत के लिए यह प्रथम प्रवचन था और सामने बड़े-बड़े संत उपस्थित थे। फिर भी युवा संत ने बिना किसी संकोच के प्रवचन शुरू किया। जिसमें युवावस्था में की हुई उग्र तपश्चर्या का बल था। हृदय से निकली हुई इस वाणी में भक्ति की शक्ति गूंज रही थी। मुख पर छाई हुई अप्रतिम तेजस्विता में ईश्वरीय अनुसंधान दिखाई दे रहा था। मानवता के लिए, संस्कृति के लिए, प्रभु प्रेरित कार्यो को करने के लिए अपने जीवन का बलिदान देने की, सर्वस्व समर्पण करने की तमन्ना से संत की वाणी में अपूर्व बल था जिसके साथ प्रवचन समाप्त हुआ।

प्रवचन समाप्त होते ही यह संत मंच से नीचे आ ही रहे थे कि अचानक एक छोटा सा बालक, 'बाल गोपाल' जैसा सामने आया। संत की अंगुली पकड़ कर कहने लगा, ''मैं आपको नहीं छोड़ूंगा'' ''मैं आपको नहीं छोड़ूंगा।''

कुछ क्षणों तक ऐसा चलता रहा। अचानक बालक अदृश्य हो गया। संत तो सोच रहे थे कि ये संतों की सभा में इतना छोटा बालक कहाँ से और कैसे आया? और अचानक वह बालक अदृश्य भी हो गया। वहाँ उपस्थित संतों में से दो तीन संत ही इस दृश्य को देख पाए थे। युवा संन्यासी के लिए ईश्वरीय अनुभूति तो कई बार हो चुकी थी लेकिन यह अनुभव और अनुभूति कुछ अलौकिक थी। तुरंत ही अंतर में से आवाज आयी ''ये बालक कोई साधारण बालक नहीं है ये तो ''बाल गोपाल'' ''नंदकिशोर'' स्वयं आए थे।

इसके बाद स्वामी वापस अपने मुकाम पर जा रहे थे। वहां जाने का रास्ता जंगल के भीतर से था। स्वामी जी रास्ता भूल गए। अचानक जंगल में एक वृद्ध ''बाबा'' सामने आए। पूछा- कहाँ जाना है? संत ने बताया रास्ता भूल गए हैं। बाबा ने कहा- चलो मैं रास्ता दिखाता हूँ। मुकाम तक ले आए और दूर से बताया यह है आपका मुकाम। बस इतना कहते ही वे भी अदृश्य हो गए। एक ही दिन में ये दूसरा प्रसंग था, दूसरा अनुभव था। इसे अनुभूति कहें, ईश्वर दर्शन कहें या चमत्कार कहें। यह युवा संन्यासी और कोई नहीं बल्कि परम पूज्य स्वामी 'चिदानंद सरस्वतीजी महाराज'! ही थे।

उनके जीवन में घटी हुई इन घटनाओं के अतिरिक्त बचपन से ही इस प्रकार की चमत्कारिक और अतीन्द्रिय अनुभव पूज्य स्वामीजी के जीवन में कई बार होते रहे हैं। लेकिन आज तक वे सभी अप्रगट ही हैं। कभी-कभी उनकी वाणी द्वारा ये घटनाएं सहज रूप में प्रकट हो जाती हैं लेकिन वह भी अस्पष्ट रूप से। पूज्य स्वामी जी के शदों में कहें तो उसके लिए गोपनीय शब्द ही उपयुक्त है।

जब-जब इस प्रसंग के बारे में पूज्य स्वामी जी से पूछा जाता है तो वह अपनी स्वाभाविक मुस्कुराहट के साथ उसे टाल जाते हैं।

कभी - कभी अनायास ही पूछने पर वे कह उठते हैं ''आ हा हा, वो प्रसंग तो बहुत अद्भुत था'', बस इतने ही शब्दों में समाप्त करते हैं। लेकिन इतना कहते हुए पूज्य स्वामीजी के मुख पर एक अलौकिक तेज उभर आता है तथा उनकी दृष्टि द्वारा हम भी उस वक्त उसी दृश्य का दर्शन कर रहे हैं ऐसा अनुभव होता है।

कैसा होगा वह दृश्य? कैसा होगा उस 'बालगोपाल' का वेश? कैसी मधुर वाणी होगी ये? ''मैं आपको नहीं छोड़ूंगा''

कैसी भक्ति की लगन, कितनी उग्र तपश्चर्या कि स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण बालगोपाल के स्वरूप में आके कहें कि ''मैं आपको नहीं छोड़ूंगा''

अब नहीं छोड़ूँ हाथ तिहारो
मम प्रिय भक्त, मोंहे अति प्यारो
जल में जल जस संग हमारो

हे प्रभु! अब तू ना मिले तो इसका कोई रंज नहीं है। तू जिसको मिला है। उस

महान संत के दर्शन से, और उनकी कृपा से मुझे जीवन की एक नयी राह मिल गई है। सारा जग मधुबन सा लगता है। फिर तुम्हारे दर्शन की झंखना अब क्यों? प्रभु! बस इतनी ही प्रार्थना है कि ऐसी शक्ति देना कि उनके चरणों में हम सदा ही अपना जीवन समर्पित कर दें।

पूज्य स्वामीजी को कई सम्मान प्राप्त है, जैसे –

- "MAHATMA GANDHI HUMANITARIAN" AWARD.
- "HINDU OF THE YEAR" AWARD BY THE INTERNATIONAL MAGAZINE HINDUISM TO DAY.
- "PROMINENT PERSONALITY" AWARD BY LIONS CLUB INTERNATIONAL.
- "OUTSTANDING MAN OF THE 20TH CENTURY" AWARD BY AMERICAN BIOGRAPHICAL INSTITUTE.

पूज्य स्वामीजी से इस बारे में पूछने पर उनका उत्तर एक ही होता हैः यह तो ठाकुर की मर्जी थी, ठाकुर की कृपा है– उसने अपना काम मुझसे करवाया है।

Pujya Swamiji's religion is unity, and he has been a leader in numerous international, inter-faith summits and parliaments, including most recently the Parliament of World Religions in 1999, the Millennium World Peace Summit of Religious and Spiritual Leaders at the United Nations in 2000, the World Economic Forum in 2002, the World Council of Religious Leaders at the United Nations in Bangkok in 2002, the World Conference of Religions for Peace in Japan in 2006, the Global Youth Peace Summit at the United Nations in October 2006, the first Hindu-Jewish Summit in Jerusalem in February 2008 and the Hindu-Christian dialogue initiated by the Vatican in Mumbai in June 2009. He is also a leader of frequent world peace pilgrimages across the world.

पूज्य, स्वामी जी इन सारी कीर्ति एवं यशो गाथाओं से 'पृथक' निर्लिप्त भाव से, कर्मयोगी का जीवन जी रहे हैं।

'हिला दे जो पहाड़ों को उसे तूफान कहते हैं।
तूफानों से जो टकराये उसे इंसान कहते हैं॥'
यही है उनके जीवन की मस्त फकीरी और भक्ति की मस्ती।

पूज्य स्वामी जी के जीवन का सूत्र है, 'NO PROBLEM' फिर वह चाहे समाज

की समस्या हो, व्यतिगत सवाल हो या संस्था की बात हो, चाहे कितनी बड़ी समस्या क्यों न हो उनका उत्तर होता है 'NO PROBLEM' और इस उत्तर के साथ ही जैसे सारी समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाता है। इसलिए ऐसे ही संतों के बारे में कहा जाता है कि हे प्रभो! आपने कृपा कर के हमें मनुष्य के रूप में जन्म तो दिया पर संसार में माया के बंधनों में डाल दिया, आपने हमें काजल की कोठरी में डाल दिया। जबकि सद्‌गुरु ने हमें वहाँ से मुक्ति दिलायी। इसीलिए हे परमेश्वर! आप से गुरु की महिमा अधिक है।

मानुष तन, मुमुक्षुत्व मन,
महत पुरुष सतसंग।
दुर्लभ बिनु, भगवत कृपा
मिलाहिं न तिनों संग।।

पूज्य स्वामी जी भारत के एक भव्य एवं अति पुनीत "परमार्थ निकेतन" के अध्यक्ष हैं। केवल अध्यक्ष ही नहीं वे उसके प्राण भी हैं। अमेरिका में प्रथम हिन्दू जैन मंदिर की स्थापना पूज्य स्वामीजी की प्रेरणा से हुई। उनका धर्म है 'मनुष्य मात्र को ईश्वर के समीप लाना।' पूज्य स्वामीजी के जीवन का एक ही लक्ष्य है कि अंतिम सांस तक बस सेवा- सेवा, सेवा।

ऐसी महान विभूति के आदर्श एवं गुणों के शब्दबद्ध करने का प्रयत्न करना जल के एक बिन्दु द्वारा समुद्र की गहराई का विवरण देना।

अंत में हम सब परमेश्वर से प्रार्थना करें कि उनकी गति और मति समझने की हमें शक्ति दें। उनके कार्यों में हम सदा सहभागी बने रहें एवं सहयोगी बने रहें, इस प्रकार की सतत् प्रेरणा हमारे अंतस को सदा प्रेरित करती रहे।

इस पुस्तक की हिन्दी प्रस्तुति में संस्कृत एवं हिन्दी की विदुषी श्रीमती मृदुल कीर्ति जी का योग दान भी महत्वपूर्ण है। हम उनके सहयोग के लिये अत्यन्त आभारी हैं।

दैनिक जागरण के स्वामी एवं पूज्य स्वामीजी के अनन्य भक्त स्व नरेन्द्र मोहनजी के सुपुत्र श्री सन्दीप गुप्ता जी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मंजरी गुप्ता जी के प्रयास एवं सहयोग की भी इस पुस्तक की प्रस्तुति में अहम भूमिका है। दैनिक जागरण के माध्यम से जन जागरण करने का उद्देश्य निरन्तर सामने रखनेवाली इस दम्पतिने इस पुस्तक के अनुवाद में भी सक्रिय सहयोग किया है। जिस श्रद्धा व भक्ति भाव से उन्हों ने कार्य किया है वह बहुत सराहनीय है। हम उन के हृदय से आभारी हैं।

श्रध्दा सहित

रेखा

श्री भगवानुवाच

श्री भगवान ने कहा : हे भारत! निर्भयता, अंतःकरण की शुद्धि, अध्यात्म ध्यान, ज्ञान (और) योग में दृढ़ स्थिति सात्विक दान, इंद्रियों पर काबू, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, चुगली रहित होना, जीव- दया, अलोलुपता, मृदुता, लज्जा, दृढ़- निश्चय, तेज क्षमा, धैर्य, पवित्रता, अद्रोह, अति अभिमान का त्याग ये सब दैवी संपत्ति को प्राप्त हुए एक पुरुष के गुण हैं।

इस पुस्तक के 'दैवी संपत्ति पर' के प्रवचन गीता के 16वें अध्याय के उपरोक्त श्लोक 1 से 3 के आधार पर पूज्य स्वामीजी ने गंगा-तट पर हृषिकेश 'परमार्थ निकेतन' में साधकों के समक्ष दिए थे।

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥1॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥2॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥3॥

(श्रीमद्‌भगवद् गीता अ. 16 श्लोक सं. 1 से 3)

अनुक्रमणिका

दैवी संपत्ति प्रवचन

१.	हे प्रभो! हमें सभी ओर से निभर्य करो	१
२.	अन्तःकरण की शुद्धि	८
३.	जीवन वीणा का संगीत	१३
४.	देता चला जा	१८
५.	आत्म दीप का प्रकाश	२२
६.	कर्म ही मेरी पूजा और जीवन मेरा यज्ञ	२७
७.	स्वाध्याय का प्रकाश दीप थामे रहें	३१
८.	तप जीवन की कसौटी	३६
९.	सरलता का स्वरूप	४०
१०.	अहिंसा परमो धर्मः	४५
११.	सत्य का सौरभ-1	४९
१२.	सत्य का सौरभ-2	५४
१३.	शान्ति की सुगन्ध	६०
१४.	आनन्द अक्षय कोश	६२
१५.	अद्रोह प्रेम सागर	६५
१६.	मान-सम्मान की स्पृहा	६७

देश-विदेशों में दिए हुए अन्य प्रवचन

१७.	मामेकं शरणं व्रज	७०
१८.	योगेश्वर कृष्ण की शरण में	७५
१९.	प्रभु को समर्पित जीवन ही सच्ची पूजा है	८१
२०.	जीवन में सुगन्धित सुमन खिलें	८७
२१.	भावभूमि वृन्दावन	९१
२२.	हरि का पत्र तुम्हारे हाथ	९५
२३.	प्यास - प्रयास - प्रतीक्षा	१०१
२४.	जलती - ज्योति	१०४
२५.	जीवन - ज्योति	१०९
२६.	आध्यात्मिक अनुभव : व्यष्टि और समष्टि	११४
२७.	मैं अस्त हुआ तो मैं मस्त हुआ	११८
२८.	लक्ष्यबद्धता - ध्यान	१२४
२९.	श्रद्धा से सिर झुका दे	१३०
३०.	गुरु शिष्य संबंध एक दृष्टिपात	१३४
३१.	''मैं'' के पार है ''वह''	१३६
३२.	गंङ्गा दशहरा	१३९
३३.	पुराणों एवं काव्यों में योग - कथायें	१४१
३४.	देश भक्तों की आध्यात्मिक अनुभूति	१४७

अन्य माहिती

३५.	इन्डिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन के इन्द्रधनुषी रंग	१५८
३६.	'हिन्दू धर्म विश्वकोश' एक झाँकी	१६५
३७.	गंगा एक्शन परिवार	१७२

(१)

हे प्रभु हमें सभी ओर से निर्भय करो!

(अभयम्)

समर्पित– जीवन का साफल्यः

क्रान्तिकारी शहीद भगत सिंह को फाँसी की सजा सुनाई गई थी, ''जुर्म'' था देशभक्ति। अपने देश को स्वतंत्र कराने की इच्छा से अंग्रेजी सरकार को आजादी की आवाज सुनाने के अपराध में। फाँसी का दिन निकट आया तो भगतसिंहका विजन तौला गया। फाँसी की तारीख घोषित होने के बाद जेल में रखने के समय और फाँसी वाले दिन दोनों बार कैदी का वजन तौला जाता है। फाँसी के दिन तक सरदार भगतसिंह का वजन चौदह पौण्ड बढ़ चुका था। शहादत की खुशी में उनका वजन बढ़ गया।

इसी जेल में एक दूसरा कैदी था। राग–द्वेष के कारण किसी की हत्या के जुर्म में फाँसी की सजा प्राप्त कैदी। फाँसी वाले दिन उसका वजन कई पौण्ड घट चुका था। यह फाँसी के पहले ही मृत्यु के भय से मरणासन्न हो गया था।

मृत्यु का भय ही सबसे बड़ा भय है। फिर मृत्यु के समय भी ये दोहरी प्रतिक्रियाएं क्यों? सरदार भगतसिंह को फाँसी की सजा सुनकर अपार खुशी हुई और उसका वजन बढ़ गया। मृत्यु उनके लिए भय का कारण न बन सकी, जबकि फाँसी की सजा पाये दूसरे कैदी को मृत्युभय ने मौत से पहले ही खोखला कर दिया इसलिए उसका भार घट गया।

स्पष्ट है कि भय की कोई सत्ता नहीं है, और न कोई अस्तित्व ही है, यदि इसकी सत्ता होती तो वह दोनों बंदियों के मन पर एक जैसा ही प्रभाव डालती। एक को हर्ष से विभोर और दूसरे को तेजहीन, काँपते हुए पत्ते की तरह मृत्यु के पूर्व ही अधमरा न कर देती। भय काल्पनिक है, यह मात्र मन की उपज है। इसे मनुष्य ने ही उत्पन्न किया है। वह स्वयं अमृत का पुत्र है। उस प्रभु का पुत्र है, जो अजन्मा है, अमर है, फिर उसे भय कैसा? किन्तु उसने स्वयं को निर्बल बनाकर, अपने मूल अस्तित्व को भूलकर व्यर्थ ही स्वयंको भयग्रस्त बना लिया है, स्वयं को अनन्त भयों की गहरी गुफा में छिपा रखा है।

अज्ञान की अंधेरी गुफा से बाहर निकलोः

एक प्रेरक बोध कथा है। एक गाँव में डाकू घुस आए, कोहराम मच गया। जिसे जिधर रास्ता मिला, उधर ही भाग चला और छिप गया। गाँव का एक चौकीदार था रामदयाल,

उसने देखा गाँव के पास जंगल में गुफा है, वहाँ कोई खतरा नहीं है। बस, वह उसी गुफा में जा छिपा। डाकू आए, लूटपाट करके चले गए। फिर- से जीवन सामान्य चलने लगा। गाँव के जीवन की हलचल लौट आयी, परन्तु रामदयाल गाँव में नहीं दिखाई दिया। गाँव के लोगों में चर्चायें होने लगीं -

''रामदयाल का क्या हुआ? क्या उसे धरती निगल गई? डाकुओं ने उसे मारा नहीं, आस-पास के गाँवों में पता नहीं, वह गया तो कहाँ गया? महीनों बीत गए। आखिर विस्मय- विमुग्ध गाँव वाले रामदयाल को याद करते, उसे भूल गए। एक दिन गाँव के कुछ बच्चे खेलते-खेलते उस गुफा के पास पहुँचे। यों ही, आँख-मिचौली खेलने के लिए बच्चे गुफा में घुसे तो वहाँ कुछ हलचल हुई। बच्चे भयभीत हो गए। शायद कोई जंगली जानवर हो। लेकिन एक साहसी बच्चे ने अन्दर पत्थर फेंका और खतरा पड़ने पर भागने की मुद्रा में तैयार खड़ा हो गया। रामदयाल के माथे पर पत्थर लगा, तो चोट का दर्द हुआ और चीख पड़ा, मुझे मत मारो, मैं तो गाँव का चौकीदार रामदयाल हूँ।'' तब बच्चे बेधड़क गुफा में घुस पड़े और रामदयाल से पूछने लगा, ''काका रामू! तुम महीनों से इस गुफा में छिपे हो?'' बच्चों ने आश्चर्य मिश्रित स्वरों में पूछा।

रामदयाल के चेहरे पर अब भी घबराहट थी, बोला, ''गांव में डाकू घुस आए हैं, लूटपाट और हत्या कर रहे हैं, इसलिए मैं अपनी पोटली लेकर यहाँ छिपा हूँ।'' बच्चे हँस पड़े, उन्हें रामदयाल की बुद्धि पर तरस आया, बोले, 'रामू काका! डाकू तो कई महीने पहले आए थे और उसी दिन चले भी गए और तुम उनके डर से अभी भी गुफा में छिपे हो? चलो अब गाँव चलो!'' रामदयाल बोला, 'नहीं, अब तो मैं इस गुफा में ही रहूंगा। यहाँ मुझे डर नहीं लगता, यहाँ डाकू नहीं आ सकते।'' यह कहकर वह गुफा के अंधेरे कोने में और अधिक सिमट कर बैठ गया। बच्चे क्या कहते। उन्होंने घोषणा कर दी कि रामदयाल डर के मारे पागल हो गया है, इसलिए डाकुओं के जाने के बाद भी गुफा में छिपा बैठा है।

यही स्थिति है, भयग्रस्त मानव की। वह अमृत-पुत्र है, ईश्वर का अमर पुत्र। लेकिन वह जन्म-जन्मान्तर की वासनाओं के डाकुओं से घिर गया है, इसलिए भागता फिरता है, और इनसे बचने के लिए ही उसने अंधेरी गुफाओं की शरण ले ली है। जिस प्रकार वासनाओं के काल्पनिक डाकुओं की रचना उसने स्वयं की है। ये भय उसके स्वयं के हैं, ये भय उसने स्वयं गढ़े है, उसी प्रकार इनसे बचने की कल्पना की अंधेरी गुफायें भी उसने गढ़ी हैं। यदि वासनाओं के डाकू भाग जाएं या इन्हें भगा दिया जाए तो भय की काल्पनिक अंधेरी गुफाओं में छिपने की भी जरूरत न पड़े। किसी तत्व दृष्टा की शरण में जाने पर जब डाकू भाग जाते हैं, तो व्यक्ति को अभय प्राप्त हो जाता है, फिर उसे मृत्यु का भय नहीं रह जाता। वह जान जाता है कि मृत्यु भी काल्पनिक ही है।

भय के अभाव का नाम अभय नहीं है। *भय के अभाव की स्थिति निर्भयता हो*

सकती है, परन्तु निर्भय व्यक्ति अभय हो, यह जरूरी नहीं है। हिंसक व्यक्ति भी निर्भय हो सकता है। हजारों लोगों को उत्पीड़न करने वाला डाकू निर्भय होता है। निरंकुश तानाशाह भी निर्भय होता है, क्योंकि वह अपनी मदांध सत्ता के बल से भय की स्थितियों का मालिक बनने का भ्रम पाल लेता है, परंतु सत्य यही है कि जो जितना ही अधिक सत्ता और शक्तिजुटाने का आकांक्षी होता है, वह अंदर से उतना ही अधिक भयभीत होता है।

फिर अभय कौन है ? जिससे किसी भी प्राणी को भय नहीं है, जो सबको अभय देता है, वही अभय है।

भय से क्यों भागे ?

भय आंतरिक निर्बलता है। वासनायें ही भय का कारण है। काम, क्रोध, लोभ, मोहजन्य वासनायें ही राग-द्वेष उत्पन्न करती हैं, यही हमारे मूल आनंद स्वरूप को भुलाकर हमें वह सब पाने और छीनने की प्रेरणा देती हैं, जो हमें कमजोर बनाता है, यह सब कुछ पाने, छीनने की चाह ही भय को जन्म देती है। उसे स्थायी बनाने, सुरक्षित रखने और नियंत्रित रखने की कामना पैदा करती है।

सत्ता को टिकाए रखने का भय, धन को सुरक्षित रखने का भय, पद को सुरक्षित रखने का भय यहाँ तक कि मानवीय प्रेम-संबंधों, रिश्तों-नातों को बनाए रखने का भय। भय मूर्त पदार्थों को बनाए रखने में ही नहीं होता, बल्कि इसमें भी भय होता है। अमूर्त-भावनाओं और भाग-जगत के ये सभी पदार्थ नश्वर और काल्पनिक हैं।

जागकर जगत देखेंः

फिर अभय कैसे हो ? भय के इन सब उपकरणों को हटा दें। वासनाओं को मिटा दें, राग- द्वेष को नष्ट कर दें तो अभय की स्थिति स्वयं प्राप्त हो जाएगी।
वासनाओं से मुक्त हमारा सच्चा आनंदमय स्वरूप है, उसमें भय कहाँ है ? वासनारहित निर्मल चरित्र में भय नहीं है।

अतः अभय तो मुक्त होने में ही है। राग और माया के बंधनों से मुक्त होने में ही अभय है। अभय-पुत्र के लिए भय तो इसलिए ही है कि उसने स्वयं के स्वरूप को भुला रखा है भययुक्त होने के लिए तो उसे कुछ करना ही नहीं है। बस, अपने स्वरूप में जागना है जागने में कितनी देर लगती है ? न जागें और सोये रहें तो शताब्दियां भी कम हैं संकल्पपूर्वक जागने की इच्छा लेकर जाग जाएं तो एक पल में जाग सकते हैं।

राजा या भिखारीः

एक राजा था। एक रात को उसने भयानक स्वप्न देखा। उसने स्वप्न में देखा कि डाकुओं ने उसका सब कुछ छीन लिया है और वह भिखारी बनकर सड़क के किनारे बैठा भीख मांग रहा है परन्तु कोई उसे भिक्षा नहीं देता। उसका परिवार भूखों मरने की स्थिति में

आ गया है। वह भूख, गरीबी और परिवार के मृत्यु की गोद में चले जाने के भय से चीख उठता है, बस, अब नहीं सहा जाता प्रभो! मुझे बचाओ, मेरा त्राण करो।'' राजमहल में राजा के समीप ही सोई रानी जाग उठी, 'क्या हुआ प्राणनाथ। आप क्यों डर रहे हैं ? क्या कोई भयानक स्वप्न देखा है ?'

महाराजा उठे तो राजमहल, रानी और राजपरिवार तथा राजवैभव को वैसा ही पाकर आश्वस्त हो उठे। स्वप्न का भय चला गया। अपनी मूर्खता पर लज्जा हो आई, 'ओह! मैंने यह कैसा स्वप्न देखा था? ''फिर राजा ने सोचा, लेकिन स्वप्न पर मेरा क्या बस था? स्वप्न तो स्वप्न था। अब मैं जाग गया हूँ।'' महारानी को स्वप्न बताया तो वह व्यंग्यपूर्वक बोली, ''महाराज, आप तो प्रजा के प्रतिपालक हैं, सम्राट हैं, दीन-दरिद्रों को उदारहस्त से असीम दान देने की सामर्थ्य रखते हैं और दान भी देते हैं, भला आपने ऐसा स्वप्न क्यों देखा?'' परन्तु स्वप्न तो स्वप्न था और जागा हुआ राजा शक्ति सम्राट था, पूर्ण भयमुक्त। यही स्थिति है माया स्वप्न से घिरे हुए मनुष्य की। वह सम्राटों का भी सम्राट आत्मा है, वही यह सम्राट माया- स्वप्न में स्वयं को भिखारी बना देखकर भयभीत हो रहा है। वस्तुतः जब यह जाग जाता है, परिपूर्ण अभय हो जाता है तब देखता है कि वह तो सम्राटों का सम्राट है।

अपने स्वरूप को पहचानें

अभय को पाना है तो भय के स्रोतों को समझें और उन्हें मिटा डालें। सब प्रकार की कमजोरियां भय का प्रथम स्रोत हैं। स्वयंको सत्वहीन समझने वाला सत्वहीन ही रहेगा। हम ईश्वर की अमर संतान हैं, इसलिए स्वयं को दीन-हीन न समझें। हमारे ऋषियों ने उपनिषदों के माध्यम से सबसे बड़ा कोई संदेश दिया है तो वह इसी ईश्वरत्व का कि हम स्वयं 'वही' हैं अपने स्वरूप को पहचानें।

हमने स्वयं को आत्म सम्मोहित कर रखा है कि हम दीन-हीन, दुःख भोगना ही हमारी नियति है। यह हमारे द्वारा ही लादा हुआ आत्मसम्मोहन है। इसीलिए जब किसी भौतिक सुख का छोटा- सा टुकड़ा हमें मिल जाता है तो हम सम्राटों के सम्राट के पुत्र खुशी से चहक उठते हैं कि हमें पद, धन, यश का एक टुकड़ा मिल गया है। हम नहीं जानते कि सृष्टि का समस्त वैभव ही हमारा है। हमें तो 'वही' पाना है। हम इस भीख के टुकड़े पर क्यों मोहित हो रहे हैं ? इसी प्रकार जब हमारे हाथ से धन, पद, यश, का कोई टुकड़ा छिन जाता है तो हम चीख उठते हैं, बिलबिला उठते हैं जैसे हमारा साम्राज्य छिन गया हो। यही विचित्र विस्मरण है। हम भय के इस स्रोत को खत्म करें। हम नगण्य, दीन तथा सत्वहीन भिखारी नहीं हैं। जिसे इसी दुनियां से धन, पद, प्रेम, यश, स्तुति के भिक्षाकरण चाहिए बल्कि हम

तो स्वयं 'वही' हैं।

जगत को सत मूरख नहिं जाने।
दर-दर फिरत कटोरा ले के, माँगत नेह के दाने।
बिनु बदले उपकारी साई, ताहि नाहिं पहिचाने।
रहत सदा भयभीत भरमसे, अभय तत्व नहीं जाने।
आज बसंती, काल पतझरी, अगले पल वीराने।
करम-धरम की बाँध गठरिया, चल घर अब दीवाने।

जिस प्रकार आत्म- सम्मोहन के द्वारा हमने अपनी दीनहीन दशा बनाई है, उसी प्रकार हम निरंतर अपने स्वरूप का स्मरण करते हुए इस आत्मसम्मोहन से मुक्ति भी पा सकेंगे। निरंतर 'सोऽहम्' अर्थात् मैं वही हूँ के स्मरण से एक दिन हमारी निद्रा खुल जाएगी और हम भयमुक्त हो जाएंगे।

भय का दूसरा स्रोत है, भय का डर! समस्त भय को झटक फेंके। इनसे हमारा क्या वास्ता? भय का कभी चिंतन न करें। भय का चिंतन ही हमें निर्बल बनाता है। यह एक प्रकार का सम्मोहन है। अतः जब भी किसी प्रकार के भय के विचार उत्पन्न हों, उन्हें झटक कर हटा दें।

मन एक ऐसी भूमि है जिसमें एक समय में एक ही प्रकार के विचार रह सकते हैं। अतः जब भी भय के विचार- आएं प्रतिपक्ष- भावना सिद्धांत के अनुसार इनके विपरीत चिंतन करना शुरू कर दें। भय भाग जाएगा। जन्म- जन्मान्तरों से माया- आवरण में घिरे होने के कारण इस जीव को भयग्रस्त रहने की आदत पड़ गई है। चेतना पर भय के परमाणु छाए हुए हैं। हम भय का चिंतन कर उन्हें उत्तेजित करेंगे तो भय फल- फूल उठेगा और वह हमारे व्यक्तित्व को निर्बल और भयग्रस्त बनाकर रख देगा। भय के इन परमाणुओं को नष्ट करने के लिए किसी शस्त्र की आवश्यकता नहीं है। किसी शास्त्र से भी इन्हें नष्ट नहीं किया जा सकता। करना यह है कि हम आत्मतेज की सशत धारा को प्रवाहित करें और इन भय के परमाणुओं को विनष्ट हो जाने दें। यदि इन्हें नष्ट नहीं किया तो हम किसी दिन कोई भी भौतिक टुकड़ा छिनने पर फिर बिलख उठेंगे। अभय की स्थिति प्राप्त न की तो भिखारी ही बने रहेंगे।

इसलिए हम देखें, हम भयभीत तो नहीं हैं? हम भय की साधना तो नहीं कर रहे हैं? स्वामी विवेकानंद ने कहा है, "याद रखो, प्रकृति ने हमें देने और केवल देने के लिए रचा है। देने में ही हमारी सार्थकता है, इसी से हम ईश्वरत्व की ओर आगे बढ़ेंगे, और यदि पानेकी, छीनने की, दुनिया से लेने की कोशिश करोगे तो तुम्हारी ऐसी हर कोशिश एक दिन विफल होगी। प्रकृति किसी भी दिन तुम्हारे जबड़े पर ऐसे घूंसे मारेगी और तुमसे सब कुछ छीन लेगी।

इसलिए दुनिया को दो, बस देने वाले बनो, क्योंकि तुम सम्राटों के सम्राट हो।

भ्रम से मुक्ति पाओ, भय पर विजय पाओः

एक सबसे बड़ा भ्रम है कि बुद्धि से भय को जीता जा सकता है। इस भ्रम के कारण अधिक बुद्धिमान व्यक्ति, शतरंज के खेल की तरह बौद्धिक चालों पर बहुत अधिक भरोसा करता है और समस्त पदार्थों को पाने का स्वप्न देखने लगता है, समस्त भयों से मुक्त होने का विश्वास संजोने लगता है। यही सबसे बड़ा और खतरनाक भ्रम है, बुद्धि भय को घटाती नहीं, भय को बढ़ाती है। हम देखते हैं कि बुद्धि पर भरोसा करने वाले तानाशाहों का बुरा अंत होता है ? बुद्धि के बल पर यश बटोरने वाले शासक किस प्रकार कलंक से दलदल में फंस जाते हैं ? बुद्धि के बल पर भूमंडल को नचाने वाला किस प्रकार स्वदेश तक छोड़ देने के लिए विवश हो जाते हैं ? बुद्धि तो व्यक्ति को ऐसे दल- दल की ओर ले जाती है, जहां से निकलने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता। अपने शब्द कोश में 'असंभव' शब्द न रखने वाले 'नेपोलियन' का अंत याद करें। उसे सेंट हेलेना द्वीप में बंदी बनकर एकाकी असहाय अपने दिन बिताने पड़े और उसकी बुद्धि कभी भी उसे इस दल-दल से निकलने में सफल न बना सकी।

बुद्धि का अहंकार छोड़ें। बुद्धि भय को बढ़ाती है। प्रज्ञा भय को घटाती है। प्रज्ञा शाश्वत धर्माधारित विवेक का नाम है और इसे प्रयास और साधना से पाना होता है। बुद्धि प्रज्ञा नहीं है। प्रज्ञा को प्राप्त करना है और यही प्रज्ञा एक दिन ऋतंभरा बनती है, जिसमें सत्य के अतिरिक्त कुछ रहता ही नहीं है। वैज्ञानिक इस बुद्धि को ही बढ़ाने में लगे हैं। हम भी भ्रमवश बुद्धि के बल पर ही अभय होने का विचार करते हैं। पर वह बुद्धि ही तो है, जिसने मानव समाज के दुःखों को अधिकाधिक बढ़ा दिया है।

अतः बुद्धि नहीं, हम प्रज्ञा की साधना करें। वह होगी वासनाओं पर विजय पाने और भावतंत्र के परिष्कार से। चौबीसो घंटे अपने भावतंत्र को शुद्ध, सात्विक विचारों से भरे रहें। भय हमारी आध्यात्मिक प्रगति को ही नहीं रोकता, यही सब रोगों की जड़ है। यही रोग, बुढ़ापा, मरण, विस्मृति और पागलपन तक की जड़ है।

अपने आप को विस्तृत कर लोः

तो क्या अभय पलायन है ? दुनिया की सारी जिम्मेदारियां छोड़ कर भाग जाना अभय नहीं, यह तो कायरता है। भोगों से भागना, वासना से भागना नहीं है। भोगों के बीच रहकर उनसे असंपृत बने रहना ही अभय है। भोग आएं या जाएं, उनमें तटस्थ बने रहना ही अभय है। भोगों के प्रति दृष्टि बदलनी है। पदार्थों को अधिशून्यता के साथ भोग करें कि ये हमारे नहीं हैं, प्रभु ने जीवन- यात्रा के निर्वाह के लिए दिए हैं, ये उसी के हैं। ''इदं न मम'' का भाव रखें। धन, यश, वैभव उनका संयमित उपभोग करें। इस संसार का जो भी पदार्थ

है, वह ईश्वर का है, इसलिए उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं है, वह हमारी संपत्ति नहीं है। हम केवल उसके रक्षक हैं। उपनिषद् ने इस भाव के द्वारा ही संयमित उपभोग का निर्देश दिया है, पलायन का नहीं।

प्रथम उपनिषद के प्रथम मंत्र का प्रथम संदेश

''त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद् धनम्''

ईशावास्योपनिषद ।।१/१

भोगो जगत निष्काम वृत्तिसे, त्यक्तेन प्रवृत्ति हो, यह धन किसी का भी नहीं, अथ लेश न आसक्ति हो।

अतः जगत से भागने की जरूरत नहीं है। वासना के परित्याग का अर्थ पलायनवादी दृष्टि नहीं। जिसने हमें दीन- दरिद्र अभावग्रस्त बने रहने की भ्रांत शिक्षा दे दी है। यह उपभोग करते हुए निरासक्त बने रहने की दृष्टि है, यही अमरत्व का मार्ग है।

अभय की साधना हमारे जीवन का ध्येय बन जाए, इसलिए वेद में भगवान का संदेश है- ''मा भैषीः नः विश्वम'' डरो मत और वेद के ऋषि ने प्रार्थना की है। 'अभयं कृणुहि मा भैसीः न विश्वम्' अर्थात- हे प्रभो हमें सभी ओर से निर्भय करो।

(२)

अन्तःकरण की शुद्धि

(सत्व संशुद्धिः)

अन्तःकरण की शुद्धि (सत्व संशुद्धि) दैवी संपत्ति का दूसरा लक्षण है। अन्तःकरण हमारा सूक्ष्म शरीर है। मन, बुद्धि, चित्तऔर अहंकार इसके अंग हैं।

मन का काम है संकल्प- विकल्प की तरंगें बनाना अर्थात् अनुकूलताओं की योजनाएं बनाना और प्रतिकूलताओं में नए मार्ग ढूँढ़ना।

बुद्धि संचित संस्कारों के आधार पर कार्य के लिए निर्णय करती है। स्पष्ट है कि बुद्धि का निर्णय वैसा ही होगा जैसे व्यक्ति के संचित संस्कार और अनुभव होंगे।

चित्त, स्मृतियों और संस्कारों का भंडार है और चित्त में पडे संस्कारों का निमित्त पाकर स्फुरित हो जाना ही स्मृति है। अहंकार जीवात्मा का सम्मोहन है जिसके कारण वह वही ब्रह्मा होते हुए भी स्वयं को क्षुद्र जीव समझता है और निरंतर परिपूर्णता के लिए छटपटाता रहता है।

चित्त पटल पर से वही संस्कार उभर कर क्रिया के रूप में परिणित होते रहते हैं जो व्यक्ति को प्रारब्धभोग की ओर जाते हैं।

मन में वही संकल्प- विकल्प जन्म लेते हैं जो प्रारब्धभोग के लिए निश्चित हैं और बुद्धि प्रारब्ध भोग के कार्य की ओर ही प्रेरित करती है।

तू कहता कागज की लेखी, मैं कहता अंखियन की देखी (कबीर)

इसलिए मन से विचार करने और बुद्धि से निर्णय न करके कार्य करने के दावे निरर्थक हैं। अन्तःकरण चतुष्टय के द्वारा की गई इस प्रकार की सारी क्रियाएं कितने भी श्रमपूर्वक क्यों न की जाए, वे भूलरहित नहीं हो सकती। इसी कारण लोग अपने संपूर्ण बुद्धिचातुर्य को उपयोग करने के बावजूद अपने कृतनिर्णयों पर पछताते दिखाई देते हैं।

सरलता से कह दिया जाता है कि अमुक मानसिक रूप से विकृत हो गया है अथवा वह दुःखों से घिर गया है परन्तु यह सत्य नहीं है। मन और बुद्धि अपने हैं ही नहीं, वे तब तक भोग के यंत्रमात्र हैं जब तक सत्वसंशुद्धि द्वारा उन्हें शुद्ध न कर लिया जाए। जब तक वे अशुद्ध हैं तब तक केवल प्रारब्धभोग के यंत्रमात्र हैं, आत्मोद्धार के उपकरण नहीं।

इसलिए अन्तःकरण की शुद्धि से ही मनुष्य प्रारब्ध पर विजय पाता है, यही परम पुरुषार्थ है और शुद्ध अन्तःकरण ही अन्त में मोक्ष की ओर ले जाता है।

इसके विपरीत जब तक अन्तःकरण में संसार के विषय बने रहते हैं तब तक मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति नहीं पा सकता। उसका स्थूल शरीर तो नष्ट होता पर सूक्ष्म जन्म लेता रहेगा किन्तु सत्त्वसंशुद्धि के बिना सूक्ष्म शरीर समाप्त नहीं होता। अन्ततः कब तक यह देह बदलते रहोगे। जिससे तुम्हारा मरना ना छूटे, उसे लेकर क्या करोगे?

पुनरपि जनमं, पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननि, जठरे शयनं।

- श्री शंकराचार्य

अच्छे कर्म और पुरुषार्थ के द्वारा संसार के कष्टों से मुक्ति पाने का स्वप्न देखना मात्र भ्रम है। अत्यधिक बुद्धिचातुर्य संपन्न लोग अक्सर कहा करते हैं, हमें धर्म से क्या प्रयोजन, ईश्वर के होने न होने से क्या अन्तर पड़ता है, श्रेष्ठ कर्म ही हमारे कल्याण के लिए काफी है। परन्तु श्रेष्ठ कर्म हो कैसे? श्रेष्ठ कर्मों का निर्णायक कौन होगा? वह मन और बुद्धि जो पहले ही अशुद्ध संस्कारों से पूरित है? उसके द्वारा श्रेष्ठ कर्म कैसे होंगे?

अतः सत्वसंशुद्धि आदि अन्तःकरण की पवित्रता के बिना कर्म शुद्ध हो ही नहीं सकते। शुद्ध अन्तःकरण के बिना घोर परिश्रम भी उसी प्रकार निरर्थक होगा कि जिस प्रकार कोल्हू में चलने वाला बैल रात-दिन चलते रहने पर एक गज दूर भी नहीं जा पाता, अपने स्थान पर ही घूमता रहता है।

चित्त शुद्धि का अर्थः

शुद्धि का अर्थ है मूलस्वरूप की प्रस्थापना। मूलस्वरूप के ऊपर पड़ी हुई गर्द को हटाना। अन्तःकरण पर जमी वासनाएं ही वह मल है जिसे शुद्ध करना है। मूलस्वरूप वासनारहित है। वासनाएं स्वयं बनाई हुई हैं। ये बुरी भी हैं, अच्छी भी हैं। बुरी वासनाएं घातक और पतनकारी हैं जबकि अच्छी वासनाएं विकासमान हैं। किन्तु दोनों ही विकारी हैं। एक लोहे की जंजीर है तो दूसरी सोने की। दोनों ही बन्धन हैं। मैं श्रेष्ठ कर्म कर्ता हूँ यह भी अहंमन्यता का स्त्रोत है।

फिर भी सत्वसंशुद्धि के द्वारा शुद्ध वासनाओं को जगाना है। वासनाओं की शुद्धि के पश्चात् एक दिन निर्मलता की वह स्थिति आती है जब यह यंत्र नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार छत पर चढ़ने के बाद सीढ़ी की उपयोगिता नहीं रह जाती उसी प्रकार आत्मदर्शन के पश्चात् अन्तःकरण यंत्र की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

मानसिक शुद्धि का साधन मानसिक तप है। गीता में कहा हैः

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

(श्री मद्‌भागवत गीता अ. 17/16)

अर्थात् मन को इस प्रकार प्रयासरूपी तप द्वारा शुद्ध बनाना चाहिए कि मन के भीतर सदैव प्रसन्नता रहे, गंभीरता और शांति का भाव बढ़े, चपलता और उच्छृंखलता के भाव मिटते जाएं, मन को इंद्रियों द्वारा विषयों में रमण करने से रोका जाए और भावनाओं को शुद्ध रखा जाए।

इसी प्रकार सात्विक बुद्धि के लिए गीता में कहा हैः

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

(श्री मद्‌भागवत गीता अ. 18, 30)

अर्थात् वह बुद्धि सात्विकी कहलाती है जो इस बात का ठीक-ठाक निर्णय कर सके कि मनुष्य को किस ओर से हटना चाहिए और किस ओर झुकना चाहिए, कौन सा कार्य करने योग्य है और कौन-सा कार्य नहीं करना चाहिए। किस कार्य के करने में हानि है और किसे निश्चित होकर किया जा सकता है। सात्विक बुद्धि यह भी निर्णय करती है कि किस कार्य में बंधन है और किसमें मोक्ष है।

राजसी बुद्धि में सही- निर्णय की निश्चितता नहीं है और तामसी बुद्धि में तो सब कार्य विफल ही हुआ करते हैं। अतः राजसी और तामसी बुद्धि को दूर करके सात्विक बुद्धि निर्माण के लिए शुद्धि क्रिया आवश्यक है।

इसी प्रकार अहंकार की शुद्धि आवश्यक है। वेदान्त के अनुसार अहंकार ही वह जीवभाव है जो जीव को ब्रह्मचेतना से पृथक किए हुए हैं। जब अहंता बहुत गहरे बैठ जाती है तो जन्मो तक पीछा भी करती है। अन्यथा तो 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' यह सब ब्रह्म ही है। परन्तु यह अहंकार जो जन्मान्तर से जीवभाव में बंधा हुआ है, एकदम ही नष्ट नहीं हो जाता, पहले इसका शुद्धिकरण आवश्यक है। अशुद्ध अहंकार वह है जो अपने को यह स्थूल शरीर समझता है और विविध प्रकार की उपाधियों से स्वयं को गौरवान्वित समझता है। शुद्ध अहंकार में जीवात्मा अपने आपको मात्र साक्षी समझता है, वह कर्तापन के भाव से मुक्त हो जाता है।

चित्त की शुद्धि वासनाओं और संस्कारों के परिष्कार पर निर्भर करती है। राजसिक और तामसिक चित्त पर वासनाओं के प्रबल संस्कार और स्मृतियां छाई रहती हैं, उसमें सात्विक विचारों के लिए स्थान नहीं रहता इसलिए धर्म और सत्संग में मन ही नहीं लगता।

मन, बुद्धि और अहंकार के शुद्ध होने में चित्त स्वयं ही शुद्ध होने लगता है। क्योंकि चित्त में मन, बुद्धि और अहंकार के द्वारा ही संस्कार आया करते हैं।

इस प्रकार अन्तःकरण के चारों अंगों की पूर्ण शुद्धि को सत्वसंशुद्धि कहते हैं।

शास्त्रोक्त उपायः

अन्तःकरण की शुद्धि के लिए वेदशास्त्रों में अनेक उपाय बताए हैं। साधना, स्वाध्याय और जप-तप का जितना महत्व है, कर्म का भी उतना ही महत्व है। कर्म द्वारा काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि कुत्सित वृत्तियों का परिष्कार होता है।

कर्मक्षेत्र में इन कुत्सित वृत्तियों का उभार होता है। जब इस प्रकार की वृत्तियों का उभार हो तब उन्हें विवेक और संयमपूर्ण दबा देने से अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

कर्मक्षेत्र एक परीक्षास्थल है। यहाँ पग-पग परीक्षा होती है और पता चलता रहता है कि अन्तःकरण वासनाओं से कितना मुक्त हुआ है।

रामकृष्ण का तपः

रामकृष्ण परमहंस देव ने अन्तःकरण की वृत्ति अहंकार के संशोधन केलिए कठिन सेवापथ अपनाया था। उन्होंने चांडाल के घर जाकर झाड़ू- बुहारी करने की प्रार्थना की। लेकिन भला चांडाल कैसे मानता। ऐसे परमभक्त को कौन अपनी सेवा करने देता। लेकिन रामकृष्ण देव तो कृतसंकल्प थे, इस क्षुद्र अहम् को गलाने के लिए। वह रात के अंधेरे में ही भोर होने से पहले उठे और चांडाल के घर में अपने लबे केशों से बुहारी देने लगे। चांडाल चकित था कि यह सफाई कौन कर जाता है? रामकृष्ण देव कई दिन तक ऐसा ही करते रहे। आखिर एक दिन वह रात भर जागता रहा ताकि देख सके कि यह कौन घर की सफाई कर जाता है। भोर के पहले अपने संकल्प के अनुसार श्री रामकृष्ण आए और अपने केशों से सफाई करने लगे। चांडाल रामकृष्ण परमहंस के चरणों में झुक गया, उसका स्वयं का जीवन श्री रामकृष्ण की कृपा से धन्य हो गया।

श्री रामकृष्ण कहते थे, ''अहंकार का उच्छेदन बड़ा कठिन है। यह प्याज के छिलकों की तरह है। प्याज के छिलके उतारते जाओ, एक के बाद एक छिलका उतरता ही जाएगा। प्याज का सारा फल समाप्त हो जाएगा और अन्त में क्या बचेगा? कुछ भी तो नहीं। यही अहंकार का अस्तित्व है। उसका उच्छेदन प्याज के छिलकों की तरह ही है। बस उतारते जाओ और अंत में देखोगे कि कुछ भी शेष नहीं बचा है। बस तुम 'वही' हो। तब द्वैत समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार उत्तम वृत्तियों द्वारा शुद्धकर्म करने पर धीरे-धीरे समस्त चित्तमल नष्ट हो जाते हैं। प्रारब्ध की सबीज ब्याधियाँ भोग चुकने के बाद निर्बीज समाधि का स्फुरण होता है, जिसका अन्त:करण स्वभाव से ही शुद्ध होता है।

उपासना और भक्ति द्वारा मन की चंचलता दूर होती है। यह विक्षेप दोष है। मन कभी बेकार नहीं बैठता। भक्त द्वारा भगवान की ओर इसे उन्मुख ही किया जाता है अन्त

में निरंतर वेदादि ग्रन्थों के स्वाध्यायरूपी ज्ञानामृत से धीरे-धीरे आवरणों का क्षय होता है अन्तःकरण शुद्धि की यही शास्त्रोक्त प्रक्रिया है।

समय के साथ कदम मिलाएंः

मन का स्वभाव है अतीत के पीछे झांकना। यह वर्तमान में उन्हीं क्षणों में रहा है जब उसे किसी कार्य में व्यस्त रखा जाए। मन को जरा सी ढील दी कि वह अतीत में चला जाता है। अतीत में है सुख- दुःख की स्मृतियां, पाप-पुण्य के रेखाचित्र। इसे अतीत में मत जाने दो। स्वामी विवेकानंद कहते हैं, 'अतीत केवल ब्लैकबोर्ड पर खिंची रेखाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वह मृत और अस्तित्वहीन है।' अतीत भोगे गए भोगायतन का अवशेष मात्र है। इसलिए पाप के बोझ से मत छटपटाओ। वह जैसा भी है अस्तित्वहीन है। पापमय रहा है तो भी अस्तित्वहीन है पुण्यमय रहा है तब भी अस्तित्वहीन है।

अतः स्वयं को पापी कहकर या बुराइयों की स्मृतियों को कुरेदकर व्यर्थ ही अन्तःकरण पर कीचड़ न उछालो। निरंतर पवित्रता का ही स्मरण करो। निरंतर सोचो कि मैं जन्मजात पवित्र हूँ। पवित्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं स्वभाव से मुक्त हूँ। मैं अपनी मिथ्या आसक्ति हटाकर अपवित्रता और बुराइयों का त्याग कर रहा रहा हूँ। यही सच भी है। हमें पवित्र होना नहीं है, हमें आत्मस्वरूप को पाना नहीं है, हम वहीं हैं। बस, हमें तो अज्ञान के आवरणों को, इन मलिन वस्त्रों कोएक-एक कर उतार कर फेंक देना है। अपने अज्ञान को हटाना ही ज्ञानी होता है।

पवित्र होने या बनने का भाव व्यक्ति में अहंकार की वृद्धि करेगा कि मैं विशिष्ट हो गया हूँ। यही तो बंधन है। जब सब 'वही' है तो विशिष्ट कौन है, श्रेष्ठ कौन है और कौन बड़ा-छोटा है। बस, हमने तो अपने मलिन वस्त्र उतारे हैं। निर्मलता तो हमारा स्वभाव ही है। यही भाव अहंकार से मुक्त रखता है।

अन्तःकरण की शुद्धि एक सहज प्रक्रिया है, इसे जटिल न बनाएँ। जटिल बनाने से उल्टे अहंकार बढ़ता है। श्रेष्ठ अथवा, सिद्ध होने का अहंकार तो सबसे घातक है क्योंकि ज्ञान के भ्रम से उपजे इस अहंकार को नष्ट करने का तो कोई उपाय ही नहीं है। ''मैं पूजा करता हूँ'' ऐसे अहंकार को कोई ज्ञान नहीं हटा सकता।

इसलिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि साधना पथ में ऋद्धि-सिद्धि जैसी कोई चीज नहीं है। अन्ततः ये लालच काही रुप हैं। अन्तःकरण की शुद्धि एक साधना है और इससे हमारे मूल स्वरूप का जो उद्घाटन होता है वह सिद्धि नहीं हमारा असली स्वरूप ही है। मूलस्वरूप के पहले हम जो थे, वह हम नहीं थे वरन् एक निद्रा थी। अतः जागरण के समय हम जो हैं वह सिद्धि नहीं, हमारा दिव्य स्वरूप ही है।

यही सही चिंतन ज्ञान के अंधकार से बचाकर अन्तःकरण को पूर्ण शुद्धि की ओर ले जाएगा।

(३)

जीवन वीणा का संगीत

(ज्ञान योगव्यवस्थितिः)

बहुत साल पहले एक कलाकार संगीत की आराधना में मस्त, किसी निर्जन प्रदेश में एक छोटी सी कुटिया में रहता था उसकी वीणा उसकी एकमात्र साथी थी। जीवन यात्रा समाप्त होने पर वह वीणा अकेली हो गयी, उदास हो गयी। ऐसे ही समय बीता और एक दिन वह वीणा उस कुटिया से निकल कर एक महल में पहुँची। उसे बड़ा सम्मानपूर्वक, संजोकर, सजाकर एक आलीशान भवन में रखा गया। दुर्भाग्यवश उस महल का स्वामी संगीत का शौकीन होने के बावजूद भी उस वीणा से सुरों की स्वर लहरियां निकालने में असमर्थ था। उसने कई कलाकारों को निमंत्रण भेजा, परन्तु उनमें से कोई भी उस वीणा से संगीत लाने में कामयाब न हुआ। वीणा बिचारी और उदास हो गयी। दिन, महीने, साल बीतते गए और धूल मिट्टी की पर्तें उस पर जमती गयीं। धीरे-धीरे उस भवन में सूरज की किरणें आना भी बंद हो गयीं... क्योंकि सारी खिड़कियां अब बंद ही रहती थीं और दरवाजे पर ताला....... उसकी सुरक्षा के लिए।

...... और अचानक एक दिन उस भवन की खिड़कियां खुलीं- सूरज की चमकती किरणों ने वीणा को जगाया। इतने में कोई उसके पास आया- बड़े प्यार से उसे वीणा को मुलायम वस्त्र से स्वच्छ किया आंखें बंद कर उसके तार छेड़े मात्र....... पल भर में वह वीरान भवन सुर मंदिर बन गया। उस वीणा के सीने से स्वर्गीय संगीत उमड़ पड़ा।.......

प्रारंभिक अभ्यास व साधना काल में जब ऐसे ही किसी साधना के दौरान उस जगज्जननी की प्रेरणा से मेरे जीवन की वीणा जागी थी, जीवन में रोशनी हुई, रस जागा, बहार आयी। जीवन धन्य हो गया।

पड़ा था सूना सितार दिल का।
हुई अचानक यह जाग तुमसे॥
जो ज़िन्दगी रोग बन गई थी।
वो बन गई आज राग तुमसे॥
यह मेरी जीवन की रागिनी क्या?
यह प्रेम की मीठी बाँसुरी क्या?

यह राग तुमसे मिला है जननी।
मिला है मुझको यह प्यार तुमसे॥

मनुष्य जीवन भी ऐसा ही है। सब कुछ होते हुए भी वह उससे अनजान होता है। सुखों का भंडार पास होते हुए भी दुःखी होता है क्योंकि उन तमाम सुखों को उसने अपने अज्ञानवश बंद करके रखा है और जीवन नैया को मँझधार में छोड़ दिया है।

एक लकड़ी का टुकड़ा किसी नदी में छोड़ दीजिए। वह प्रवाह की दिशा में प्रवाह के साथ बहता जाएगा। उसकी अपनी न कोई दिशा होगी, न संकल्प। बस, नदी का प्रवाह और उसमें उठने वाली लहरें उसे जिधर बहाती ले जाएंगी, वह बहता जाएगा। वह बीच में पड़ी किसी चट्टान के साथ भी अटक सकता है और तीव्र लहरों के द्वारा किनारे पर भी फेंक दिया जा सकता है। उसकी नियति पूर्णतः नदी के प्रवाह और उसकी लहरों पर निर्भर है।

किन्तु इसके विपरीत है एक नाव। उसमें नाविक (माझी) बैठा है, उसे नाव को नदी के पार ले जाना है। उसका लक्ष्य स्पष्ट है। वह प्रवाह की चिंता न कर उस प्रवाह को झेलते हुए, प्रवाह की तीव्रता से बचने के लिए नाव को तिरछी दिशा में खींचते हुए किनारे पर ले जाता है और ठीक वहां जाकर रोकता है, जहाँ नाव के रुकने के लिए बाँध बंधा है। बेजान लकड़ी के टुकड़े और नाविक द्वारा नियंत्रित नाव में जो अंतर है, वही भौतिक प्रवाह में बह रहे सामान्य व्यक्ति और ज्ञान योग में अवस्थित योगी में है।

ज्ञानयोग वही Master's Touch, 'प्रभु-स्पर्श' है, जो जीवन समय की सीमाओं को पार कर जाता है। सर्वग्राही- सर्वव्यापक व सर्वसाक्षी बनता है।

आज जो भी हमारी परिस्थितियां हैं, वे हमारे कल की फलश्रुति है, हमारे कल के कर्मों का प्रभाव है। लेकिन मूर्च्छितावस्था में सारे कार्य होने से उनका ज्ञान हमें नहीं है। आज अपने आपको सुख- संतोष में पाते हैं तो वह भी हमारे पिछले कर्म और प्रभु- कृपा है और आज हम दुःखी हैं तो भी हमारी अपनी भूलों से- प्रभु कृपा तो दोनों सूरतों में एक जैसी ही होती है। सवाल है जागृति का- जीने का, जीवन का- केवल मरने तक जीवित रहने का नाम जीवन नहीं है। आनन्द तो तब आएगा जब हम जानें, जब हमें ज्ञान हो कि जैसे हमारे अतीत ने हमारा वर्तमान बनाया है, उसी तरह आज हमारा भविष्य बनाने या बिगाड़ना केवल हमारे आधीन है। अगर आप कहें दुर्योधन की तरह "जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्य धर्मं न च मे निवृत्तिः।" थपेड़े खाते-खाते उसी की इच्छानुसार प्रवाह के वेग में फंसी हुई उस नाव की भांति आप हतबल एवं दिशाहीन हैं। इस मन के मालिक बनना सीखें तो, नाविक बनना भी जानेंगे-और फिर मँझधार से भी नाव को पार लगाने की क्षमता पाओगे।

ज्ञान-योग विहीन व्यक्ति की स्थिति मूर्छा जैसी है। उसकी हर स्थिति मूर्छा में है, बेहोशी में है। अपने बारे में चिंतन करके आसानी से देखा जा सकता है क्या आपका जीवन

इच्छा और योजना के अनुसार आनंद के सुनिश्चित लक्ष्य की ओर ही बढ़ता रहा है। अतीत के थोड़े से पृष्ठ पलटने पर विचित्र दृश्य देखने को मिलेगा।

जीवन की घटनाओं की परत-दर परत मन की आँखों से देखते जाइए। जीवन में बहुत कुछ ऐसा घटित हुआ है, जो नहीं होना चाहिए था, जो आप नहीं चाहते थे, और ऐसा घटित हुआ है, जिसने आपको कष्ट दिया। अब आप आराम से विश्लेषण कर लेते हैं, ''हमारे सामने भूल हो गई थी। उस समय ''ऐसा'' किया होता तो ठीक रहता, ''अमुक'' की बात मानी होती, तो यह कष्ट न होता, परन्तु उस समय हमारी बुद्धि ही फिर गई थी।''

प्रश्न है, उस समय यह बुद्धि क्यों उलट जाती है? व्यक्ति अपनी बुद्धि को सर्वश्रेष्ठ समझता है, फिर निर्णय में यह भूल क्यों हो जाती है? इसलिए कि बुद्धि अपनी नहीं है, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सभी भोग के यंत्र मात्र हैं, व्यक्ति इन्हें भ्रमवश ही अपना समझता है, इनके संकल्पों और निर्णयों के आधार पर व्यवहार करता चलता है, बड़ी सर्तकता से जीवन के दाँव चलता है, किन्तु पग-पग पर ठोकर खाता रहता है। यही नदी का प्रवाह है। यही भवसागर है और इस प्रवाह में ज्ञानयोग विरहित, बुद्धि रहित व्यक्ति की अवस्था उस लकड़ी के टुकड़े के समान रहती है, जो प्रवाह के साथ बहता रहता है और प्रारब्धरूपी नदी की लहरें उसे जिधर चाहे ले जाती हैं। दरअसल यह बेहोशी है। व्यक्ति इसे जागृति समझता है लेकिन जब अतीत का चिंतन करता है तो पाता है कि सचमुच जो कुछ घटित हुआ इसका कारण तो मूर्च्छा ही थी उसमें पूरी जागृति कहां थी?

ज्ञान का दीपक जलाओः

जीवन के इस प्रवाह में कभी भी कुछ खो जाता है तब हम बिलबिला उठते हैं, ईश्वर को पुकारने लगते हैं, ''हे प्रभो, तूने ये दारुण दुःख क्यों दिए मेरा सब कुछ क्यों छीन लिया'' तब अपनी बुद्धि का गर्व मिट जाता है, किन्तु सत्य से तब भी अनभिज्ञ रहते हैं। बस, एक छोटे से अनुभव से संतुष्ट हो जाते हैं। इस प्रसंग में अब फिर ऐसी भूल नहीं करेंगे।'' किन्तु जब मान-सम्मान और सफलताएं मिलती हैं, तब अपनी बुद्धि की श्रेष्ठता का अहम् जाग उठता है, ''मैंने यह किया, मेरे बराबर बुद्धिमान है ही कौन, मैं भविष्य द्रष्टा हूँ आदि।'' उस समय प्रभु या प्रारब्ध विस्मरण हो जाते हैं। आत्मचिंतन में देहात्मबुद्धि से हटकर अपना द्रष्टा बनना कठिन है, दूसरों के द्रष्टा बनना हमारी सहज प्रवृत्ति है। इसलिए इतिहास से सीख लें तो हानि नहीं।

कहते हैं history repeats..... इतिहास की पुनरावृत्ति होती है, उसका एकमात्र कारण यही है कि हम इतिहास से सीखते नहीं हैं। अपने आपको अगर अपने तन-मन से अलग सोचने, देखने व पाने का प्रयास करें तो आत्मचिंतन हो पाएगा। अपने जीवन की सोई हुई वीणा को जगाने के लिए और उसे मधुर सुरों के अमृत में ढालने के लिए और उसमें आत्मज्ञान का दीप जलाने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा। हर पल साधना में अग्रसर होने के लिए और जीवन के अंतिम लक्ष्य को क्रमशः पाने के लिए यह जीवन मिला है, उसका सदुपयोग

ही जीवनमुक्ति है जो आज, अभी और इस समय प्राप्त हो सकती है केवल संकल्प, प्रयत्न और श्रद्धा-विश्वास की देरी है।

ज्ञान की रोशनीः

रावण प्रकाण्ड पण्डित था, धर्मशास्त्रों का ज्ञाता था। फिर वह अनीति की राह पर क्यों चला? सीता का अपहरण क्यों किया? अपने शुभचिंतकों की श्रेष्ठ सलाह क्यों नहीं मानी और क्यों विनाश को प्राप्त हुआ? हम सहजता से कह देते हैं, वह दुर्बुद्धि था, सत्य से विमुख था। किन्तु क्या आज भी योगविहीन सांसारिक लोगों के मन में अनीति, अधर्म और वासनाओं का रावण जीवित नहीं है? क्या यही रावण उन्हें संकटों में नहीं फंसा देता?

दुर्योधन पांडवों को न्याय न दे सका, वह इन्हें एक सुई के बराबर भी भूमि देने को तैयार न हुआ। भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे प्रबुद्ध, तपस्वी और शास्त्रज्ञ विद्वान भी सत्ता सुख के लिए अनचाहे उसका समर्थन करते रहे। क्या आज भी दूसरों के अधिकारों को छीनने वाला दुर्योधन- संकटों का कारण नहीं बना हुआ है? क्या धृतराष्ट्र का पुत्रमोह आज भी जीवित नहीं? भीष्म पितामह और द्रोण के समान महापण्डित क्या आज भी अन्याय और अनीति के सामने हाथ बाँधे चुपचाप नहीं खड़े रहते। यही अज्ञान की स्थिति है। इस अज्ञान की स्थिति के कारण ही व्यक्ति प्रारब्ध की लहरों के सहारे कभी अनुकूल तो कभी दूसरों में उलट-पुलट कर बहता है। यह वही स्थिति है कि कोल्हू में चलने वाला बैल रात-दिन चलता रहता है पर जाता कहीं भी नहीं है। घड़ी का पैण्डुलम सतत हिलता है पर पहुँचता कहीं नहीं।

ज्ञानयोग की स्थिति जागरण वाली हैं। हर समय ज्ञान का दीया जलता रहा। हर आचरण जागृति में हो, हमारा उठना, बैठना, चलना सब जागरण में हो यह ज्ञानयोग की स्थिति है। यह दैवी संपदा है। इसी को महावीर ने सम्यक् ज्ञान कहा है, बुद्ध ने सम्यक् स्मृति, कबीर, नानक देव इसे सुरति योग कहते हैं।

सोच समझ कर चलें जीवन पथ परः

अज्ञान में स्थिति है चाबी के खिलौने बनना। ऐसे व्यक्ति से अचेतन शक्तियां, उसके पुराने संस्कार चाहे जो करा लेती हैं, और फिर वह पश्चाताप करता है कि वह यह क्या कर बैठा? जो व्यक्ति संवेगों से परिचालित होता है क्या वह चाबी का खिलौना नहीं है?

किसी ने आपसे क्रोध का व्यवहार किया, आपने प्रतिक्रिया में क्रोध प्रकट कर दिया, किसी ने आपकी निंदा की, आपने भी उसकी निंदा कर दी, किसी ने आपकी स्तुति (प्रशंसा) की, आपने भी उसकी प्रशंसा के गीत गाने शुरू कर दिए, तब चालक तो वह व्यक्ति हो गया, आप तो जड़ यंत्र हो गए न। हम अपने सुख-दु:ख की डोर औरों को क्यों दे देते हैं! क्यो हम उन्हें अपनी भावनाओं का स्वामी बना लेते हैं। वे हमें हँसा या रुला सकते हैं यह कहाँ का ज्ञान है। क्यों हम भूल जाते हैं कि हम अपने स्वामी आप हैं।

ज्ञानयोग की स्थिति यह है कि आप स्वयं अपने चालक हों। लोगों का व्यवहार आपको न चलाए, आप संवेगों के दास न बनें। आप जानते हैं कि प्रतिक्रियाओं में बहना बुरा है, लेकिन फिर भी बहते हैं, यही जड़ता है, यही बेहोशी का जीवन है। अत: भावना ठीक है किन्तु भावुकता ठीक नहीं है।

मन विकार छोड़ के पा ले सच्चा ज्ञानः

आप संवेगों के दास क्यों बने रहते हैं ? क्यों बार-बार पश्चाताप करना पड़ता है ? क्योंकि आपका जीवन, अचेतन मन आपका मालिक बना हुआ है और वह अशुद्ध है। इसमें दीर्घकाल के कुसंस्कार भरे पड़े हैं, यही चित्त का विकार है।

थोड़े अभ्यास, सत्संग और स्वाध्याय से चेतना का एक हिस्सा शुद्ध हुआ तो उससे क्या होगा? अचेतन को शुद्ध किए बिना काम न चलेगा। इसी को शुद्ध करना है। इसे शुद्ध करने पर ही ज्ञानयोग की स्थिति प्राप्त होती है। जप, तप, उपासना से जितनी मात्रा में चित्त शोधन होता है, आपके मन में शुभ संकल्प उठने लगते हैं, बुद्धि सात्विक होने लगती है, विवेक का उदय होता है। चित्त शुद्धि से यही बुद्धि सात्विक होने लगती है, विवेक का उदय होता है। चित्त शुद्धि से यही बुद्धि प्रज्ञा और फिर ऋतम्भरा बनती है। जैसे-जैसे चेतना का परिष्कार होता है, जीवन की मूर्छा दूर होने लगती है तभी आपके निर्णय सटीक होते हैं शुद्ध होते हैं।

इसीलिए श्री कृष्ण कहते हैं कि दैवी संपदा तभी सक्रिय होती है जब कोई निरन्तर ज्ञानयोग में अवस्थित होता है। जितनी ही जागृति होगी अचेतन मन उतना ही शुद्ध होगा और एक स्थिति ऐसी आयेगी जब अवांछित कुछ भी नहीं रह जाएगा। तभी आपके निर्णय सत्य होंगे। आपकी योजनाएं सफल होंगी। इस प्रकार सारी साधनाएं ही ज्ञानयोग में अव-स्थिति के लिए हैं।

(४)
देता चलाजा
(दानम)

एक बार राजा इन्द्र ने देवताओं और असुरों को भोजन पर निमंत्रण दिया। असुरों ने कहा, आप हमेशा देवताओं के साथ पक्षपात करते हैं, इस बार हम उनसे पहले भोजन करेंगे, उनके साथ नहीं रहेंगे।

राजा इन्द्र मुस्कराये, बोले, ''हम किसी के साथ पक्षपात नहीं करते। आज भोजन के समय ही इसका निर्णय हो जाएगा। लेकिन हमारी एक शर्त है।''

असुरों ने पूछा, ''कौन सी शर्त है देवराज बतायें ?''

इन्द्र ने कहा, ''भोजन करते समय हाथों में एक लकड़ी बाँध कर उन्हें सीधा कर दिया जाएगा और तब बिना हाथ मोड़े ही भोजन करना होगा। इसी प्रकार देवताओं को भी करना होगा।''

असुरों ने यह शर्त स्वीकार ली। उनके हाथों में लकड़ियां बांध दी गई। भोजन परोस दिया गया। अब हाथ मुड़ नहीं सकते थे इसलिए असुर भोजन का ग्रास उठाते तो मुंह तक न जा पाता। सिर से ऊपर हाथ निकल जाता और इधर-उधर बिखर जाता। आखिर समय बीत गया और असुर भोजन का एक ग्रास भी ग्रहण नहीं कर सके।

अब देवताओं के हाथों में भी लकड़ियां बांध दी गईं और उनके सम्मुख भोजन परोस दिया गया। देवतओं ने आमने-सामने दो पंक्तियां बनाईं और अपने सीधे हाथों से एक-दूसरे के मुंह में भोजन के ग्रास डालने लगे। इस प्रकार उन्होंने हाथ में लकड़ियां बंधी होने के बावजूद भोजन कर लिया। तब देवराज इन्द्र ने असुरों को संबोधित करते हुए कहा, ''देवताओं की देने की प्रकृति के कारण ही उनके मन में विचार आया कि हम भले ही भोजन न कर पायें, दूसरे को भोजन करा सके। देवताओं की यही विशष्टता उन्हें आदर योग्य बनाए हुए है।''

देव और असुरजीवन की दो प्रकृतियां हैं। देव प्रकृति है देने की, दान और परहित चिंतन की, जबकि असुर प्रकृति छीनने, झपटने की ओर, केवल निजी स्वार्थचिंतन की है।

प्रकृति का नियम है जितना देंगे, उतना ही लौटा कर आएगा, जितने छीनेंगे, उतना ही छिनता जाएगा। यही कर्म का सिद्धांत है। देने की इसी प्रकृति के विकास को गीता में दान कहा है। दान को दैवी संपत्ति कहा है।

त्याग में समाया सुखः

दान हमारे संचय का अक्षय भंडार है। यह एक सुरक्ष बीमा है। स्वामी विवेकानंद

ने कहा है, ''इसी जीवन में निरंतर देने की आदत डालो, बस देते रहो, धन, सेवा, प्रेम जो भी कुछ दे सकते हो देते जाओ। प्रतिदान की रंचमात्र भी इच्छा मत रखो। तुम्हारा जीवन मात्र देने के लिए है, पाने के लिए नहीं। क्योकि तुम स्वयं पूर्ण हो। याद रखो, यदि तुम नहीं दोगे, छीनने की, संग्रह की कोशिश करोगे तो तुम्हारे जबड़े पर प्रकृति का एक घूंसा पड़ेगा और प्रकृति सब कुछ छीन लेगी। इसलिए केवल देने वाले बनो।''

पदार्थ हमारे हैं ही नहीं, न वह हमारा स्वरूप ही हैं, इन्हें देने से हमारी पदार्थ से आसक्ति छूटती है, प्रफुल्लता मिलती है, देने से अनिर्वचनीय आनंद मिलता है, चित्त शुद्धि होती है।

देत हार कोई और है, भेजत है दिन रैन,
लोग भरम हम पर धरैं, तासों नीचे नैन।

छीनने या लेने का भाव आसुरी संपदा है। संसार में जो कुछ है, वह मेरा हो जाए, समस्त पदार्थ सत्ता पर मेरा अधिकार हो जाए, यह आसुरी भाव है फिर वह अधिकार की प्रबल आकांक्षा आसुरी संपदा है। अगर कहीं ऐसा है तो आत्मचिंतन करें, वह आसुरी बीज है। संसार का सारा धन मेरा हो जाए, सारी सत्ता पर मेरा निरंकुश अधिकार हो जाए, ये सभी आसुरी हैं। इसलिए संसार में अधिकार की आकांक्षा रखने वालों का नहीं अधिकार छोड़ने वालों का ही सम्मान हो रहा है।

तेरा तुझको अर्पणः

धनपतियों, कुबेरों का नहीं, उस भामाशाह का नाम आदर से लिया जाता है जिसने अपना सारा धन जनहितार्थ महाराणा प्रताप को दे दिया था। यह संसार सत्ता के निरंकुश बर्बर तानाशाहों को नहीं, ईसा और बुद्ध का प्रेम से स्मरण करता है। इसलिए यहाँ राम और भरत ने राज्य को गेंद की तरह ठुकराया था। सत्ता संघर्ष के लिए रक्त बहाने वालों को नहीं, यहाँ लुंगी और दंडधारी फकीर गाँधी को पूजा जाता है, यहाँ साम्राज्य निर्माण कर उसे ठुकराने वाले चाणक्य को पूजा जाता है।

अधिकार सभी त्याज्य हैं। अधिकार संघर्ष और दुःख को जन्म देते हैं। देने की भावना प्रेम और सुख को जन्म देती है। पति का पत्नी पर अधिकार और पिता का पुत्र पर अधिकार भाव भी अग्राह्य प्रवृत्ति ही है। यहाँ भी अधिकार नहीं, प्रेमही श्लाध्य है। प्रेम यानी केवल देने की भावना, प्रतिदान की चाह नहीं। वह प्रेम भी प्रेम नहीं जिसमें बदले में स्नेह के दो मधुर शब्दों की भी आकांक्षा हो, सेवा-सम्मान या पूजा-प्रशंसा की चाह है, धन्यवाद की कामना है। बस दो, और हट जाओ। प्रतिदान की आकांक्षा तो व्यवसाय है।

इस संसार में हमारा कुछ नहीं है, सब ईश्वर का ही है। उपनिषद् में कहा है, ''इस जगत में जो कुछ भी है वह ईश्वर का है, इसलिए उसका त्यागपूर्वक उपभोग करो, दूसरों को दो और प्रसाद रूप में शेष का उपयोग करो।''

दान की यह प्रवृत्ति माया जगत् के भ्रम का धीरे-धीरे नाश करती है और जीवात्मा को उसके मूल स्वरूप के निकट ले जाती है।

कुछ पाना है तो देना भी होगाः

दान है दैवी संपदा। मेरे पास जो है, वह सब बँट जाए। मेरा सब कुछ दूसरों का हो जाए। जहाँ अधिकार की भावना है, वहां अज्ञान है, बेहोशी है, वह आसुरी धन है।

श्रीकृष्ण दान क्या है, यह नहीं बताते, दान के भाव की बात करते हैं जिसमें सब कुछ आ जाता है। धन ही नहीं, हमारे पास जो भी है वह समस्त देने का भाव ही दान का भाव है। निरंतर दान का भाव बना रहे तो स्वार्थ का भाव स्वयं क्षीण हो जाएगा, अधिकार का आसुरी भाव नष्ट हो जाएगा। जिससे भी मिलें, बस यही सोचें, 'हम क्या दे सकते हैं?' 'द' दान, ''द'' दया, 'द' दमन औपनिषदीय ज्ञान।

एक परिवार में एक नन्हीं बच्ची को देखा। अभी बोलना भी नहीं जानती, संकेतों से बात करती है। उसे कोई भी खाने की वस्तु दो, तुरन्त सबको बाँटती है। वह नन्हीं बच्ची अपने हाथ से अतिथि को खिलाने लग जाती है और फिर खिलखिलाकर हँसती है। परिवार-जन और अतिथि भावविभोर हो उठते हैं। उसे देवी कह उठते हैं। बच्ची में देने का यह जन्मजात भाव उस पर स्नेह और माधुर्य की बौछारें करवा देता है।

ऐसा क्यों होता है? क्योकि मूलस्वरूप से हर व्यक्ति देने वाले का आदर करता है, देने वाला प्रिय लगता है, दैवी संपदा का गुण ही यह है कि वह प्रिय लगता है। इसके विपरीत जो बच्चा छीनकर खाता है, अपनी चीजें बाँटकर नहीं खाता, उसे हम संस्कारहीन कहते हैं। वह स्नेह और प्रेम से वंचित रहता है क्योंकि आसुरी संपदा किसी को भी पसंद नहीं है। तब क्या प्रबुद्ध और वयस्क होने पर भी यही अधिकार की भावना, संग्रह की भावना अज्ञान नहीं है?

इसलिए जब, जहाँ भी हो, जिससे भी मिलें, उसे क्या दे सकते हैं यही सोचें इससे अपना अहम् गलता है। धन दे सकते हैं तो धन दें, सेवा दे सकते हैं तो सेवा दें। मृदुल, स्नेह, माधुर्य और प्रेम तो दे ही सकते हैं, वह दें।

ज्ञानदान की महिमा को जानोः

आजकल समाज में इतनी विषमता और तनाव है, आपाधापी (अर्थः हर एक को अपनी या अपने काम की चिंता होना) है। यह क्यों है? क्योंकि यह देने का भाव नष्ट हो गया है। सतत् लेने का ही भाव है कि मैं अमुक व्यक्ति से क्या ले सकता हूँ। किसी से मित्रता करनी है तो देखा जाता है, उससे क्या ले सकते हैं पिता पुत्र से, पति-पत्नी से और पत्नी-पति से, बस लेने और पाने का यह भाव इतना गहरा पैठ गया है कि लोग प्रेम, माधुर्य, ममता और स्नेह के भिखारी हो गए हैं। मुफ्त में दे सकने वाले ये उपहार भी देने में नहीं, लेने में ही तत्पर रहते हैं।

ज्ञान बांटते रहोः

आप एक कार्यालय में बैठे हैं, केवल आगन्तुक को एक मुस्कान दे दीजिए और दो स्नेह के शब्द– मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ? बस, वह निहाल हो जाएगा। उसके अन्तःकरण से आपके लिए सद्‌भावनाओं के झरने बह उठेंगे। किन्तु यह हो कैसे ? इसके लिए सतत् देने का भाव पैदा करना होगा। दान का भाव हमारे व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन को ही नहीं सामाजिक जीवन को भी सरसता से भर देगा। दैवी सम्पत्ति की यही विशेषता है। यह व्यष्टि से लेकर समष्टि तक सबका मंगल करती है।

छीनने से अहंकार बढ़ता है, बाँटने से अस्तित्व पिघलता है। अहंकार क्षुद्रता के कारागृह बनाता है, निरहंकारिता से मुक्ति के द्वार खुलते हैं। इंद्रियां लेना चाहती हैं, भोगना चाहती हैं। इसलिए जितना ही देंगे, वासनाएं विसर्जित होंगी। चित्त के मल हटेंगे। परमात्मदेव की छवि उभरेगी। पर दान में भी सजग रहें। दान वह हो जो अहम् को विसर्जित करें।

राजसी दान में फल की आसक्ति रहती है, प्रतिदान की आकांक्षा होती है। दान से यश की आकांक्षा, जयकार की आकांक्षा होना यह राजसी दान है, इससे अहम् घटता नहीं बढ़ता है, बंधन कटते नहीं, मजबूत होते हैं।

इसी प्रकार तामसी दान भी है। वह दान जो तिरस्कार और अपेक्षा के साथ दिया जाए। वह तामसिक दान है, वह तमस् की ही वृद्धि करता है।

सात्विक दान ही कल्याणकारी है। बिना किसी फलाकांक्षा के उचित पात्र को दिया गया दान ही सात्विक दान है। सात्विक दान से शुद्धि होती है, यह मुक्तिवाहक है।

सात्विक भाव से दिए गए सभी दान श्रेष्ठ हैं, धन, संम्पत्ति, प्रेम–माधुर्य, सेवा इन सभी के पीछे फलाकांक्षा न हो तो ये सात्विक दान दैवी संपदा है किन्तु इनमें भी ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि ज्ञान ही शाश्वत है, पदार्थ नश्वर है। इसलिए ईसा, बुद्ध, कबीर, महावीर निरंतर ज्ञान बाँटते ही रहे।

प्रकृति के इस नियम को याद रखें। छाया के पीछे भागे तो छाया आगे ही आगे रहेगी और ज्यों ही छाया से मुँह मोड़ लेंगे वह हमारे पीछे चलेगी। यही नियम है माया का पीछे मत भागो, लेने की आकांक्षा छोड़ दो, तब सब कुछ तुम्हारा हो जाएगा।

(५)

आत्म दीप का प्रकाश

(दमः)

वह सब दैवी सम्पत्ति है जो बंधनों से मुक्त करती है। भोग बंधनों में जकड़ते हैं, और योग प्रभु से मिलन कराता है। किन्तु इन्द्रियों का सहज स्वभाव है भोग। जन्म-जन्मांतर से करोड़ों देहों में यह मन इन्द्रियभोगों में ही लगा रहा है, इसलिए इसका पुराना अभ्यास एकाएक समाप्त हो नहीं सकता।

इन इन्द्रियों को भोगों से हटाना ही इन्द्रियदमन है। भोग नश्वर है अनित्य है, भोगों में लिप्तता, अज्ञान है, इंद्रियों को योग में नियुक्त करना ही विवेक है।

प्रश्न उठता है, भोग की ओर यह अविवेकी प्रवृत्ति आखिर क्यों है ? भोग अनित्य, दुःखदायी और बंधनकारी है तो मन की भोगों में आसक्ति क्यों है ? जब सुख का स्रोत आत्मा स्वयं ही है, तो जीव सुख की तलाश में बाहर क्यों भटकता है ?

लौकिक से अलौकिक की ओरः

इसे एक उदाहरण से सहज ही समझा जा सकता है। एक नन्हें शिशु को कोई भी वस्तु दीजिए, वह उसे मुख में ले जाएगा, क्योंकि सुख पाने के लिए उसकी एक ही इन्द्रिय (रस) का विकास इस आयु में रहता है। शिशु थोड़ा बड़ा होता है तो खिलौने से खेलने लगता है। यह उसमें जिज्ञासा का विकास है। अब खिलौने ही सुख की प्रियतम उपकरण हैं। मानवीय संबंधों और उपाधियों से उसे कोई रुचि नहीं होती। लेकिन वयस्क होने पर उसकी पुरानी रुचियां छूट जाती हैं, बदल जाती हैं, अब खिलौने, से खेलने की स्मृतियाँ उसे अज्ञानमूलक घटनाएँ लगती हैं। संबंधो और उपाधियों के जगत को वह ज्ञानमूलक समझता है। बचपन में खिलौने से खेलने का स्मरण दिलाया जाए, तब कहता है, तब तो मैं बच्चा था, अज्ञानी था। बस यही भ्रान्ति है। वह एक बिन्दु पर आकर ठहर गई है। यहाँ सुख का अंत नहीं है, किन्तु व्यक्ति के इन्द्रिय सुख की एक सीमा है, वहाँ पर आकर ठहर गया है। यह भी खिलौने से ही खेलना है।

जब वह इंद्रियों के पार जाता है, तब इंद्रियातीत सुख का अनुभव करता है। यह अनिवर्चनीय और विलक्षण है। पर व्यक्ति इसे कैसे जाने ? वह तो सीमारेखा के गुरुत्वाकर्षण में फँस गया है।

इन्द्रियों का आकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से भी प्रबल है। कोई भी वायुयान पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को सरलता से पार नहीं कर सकता। चन्द्रमा पर अथवा किसी अन्य

ग्रह पर भेजे जाने वाले अंतरिक्ष यान को विशेष शक्ति से पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के पार धकेलना पड़ता है, तभी वह दूसरे नक्षत्र की सीमा रेखा में प्रवेश कर पाता है, तब अन्तरिक्ष यात्री देखता है कि एक अन्य ज्योतिर्मय नक्षत्र भी है। वह अनुभव करता है कि यह पृथ्वी कितनी छोटी और नगण्य है इस ब्रह्माण्ड में, जिसे वह एकमात्र क्रीड़ास्थली माने बैठा था।

इन्द्रियातीत सत्ता- सौन्दर्य के दर्शन पाने के लिए भी बिल्कुल यही प्रक्रिया है। इन्द्रियों के दमन के द्वारा ही उस इन्द्रियातीत आनन्द की अनुभूति होती है, जो इन्द्रियों के सीमित सुख से विलक्षण है। अन्तरिक्ष यान की तरह मन को इन्द्रियों के परवर्ती लोक में भेजने के लिए जिस शक्तिबल की जरूरत है उसी का नाम इन्द्रिय-दमन है। इस प्रकार इन्द्रिय-दमन को उच्चतर लोक में ले जाने वाली दैवी सम्पत्ति है। इन्द्रिय भोग सत्य नहीं है, सुखकर नहीं है, यह एक भ्रान्ति है। ज्ञान के स्तर पर इस सत्य को जाने बिना इन्द्रियों का दमन संभव नहीं है। इन्द्रिय-दमन के लिए विवेक के स्तर पर यह जानना जरूरी है कि यह विष है। तब मन उसे सहज ही अस्वीकार कर देगा। यही होगा सहज इन्द्रिय-दमन।

इन्द्रिय-सुख के पीछे भागने की अज्ञान-मूलक प्रवृत्ति तो पशुओं में भी है, जानना यह है कि ये सुख विष है, अमृत नहीं है। जगद्‌गुरु शंङ्कराचार्य जी कहते हैं, देखो किस प्रकार जीव एक-एक इन्द्रिय की आसक्ति के कारण बंधन में फंसा रहता हैं।

भौंरा गंध की आसक्ति में, मछली रस (जल) की आसक्ति में पतंगा रूप (अग्नि) की आसक्ति में, हाथी स्पर्श की आसक्ति में और हरिण शब्द की आसक्ति में अपने प्राण गवां बैठता है। फिर सोचो, उस मनुष्य की क्या गति होगी जो पाँचों इन्द्रियों से ही आसक्तिपूर्वक भोग भोगने में संलग्न रहा है।

''भृंग, मीन, मृग, पतंग, कुंजर, एकहिं दोष विनास
पञ्च दोष साधे मनुज, ताकी कतहूँ आस''

सन्त रविदास

इन्द्रिय भोग एक भ्रम है। वह सत्य के प्रति अज्ञान के कारण है।

यह इस अमृत को न चखने के कारण है, जिस इन्द्रियातीत अनुभव- अमृत को अभी तक चखा नहीं है।

सापेक्षता का भ्रम ही इन्द्रिय सुख की भ्रान्ति का कारण है। एक बालक को गुड़ बहुत प्रिय लगता है। उसे गुड़ की मधुरता में सबसे अधिक सुख की अनुभूति होती है। ... मधुर वस्तु दे दीजिए। रसगुल्ला, रसमलाई या कोई अन्य मिष्ठान्न मिलने पर वह गुड़ नहीं खाएगा। अब उसे ये पदार्थ अच्छे लगने लगेंगे। मनुष्य को विषयुक्त इन्द्रिय सुख इसलिए अच्छे लगते हैं क्योंकि सापेक्ष उसने श्रेष्ठ रस का आस्वादन नहीं किया है।

विषयों की भ्रान्ति समझने के लिए एक पुरानी कथा है। एक राजा ने एक विचित्र नियम बना रखा था कि प्रातःकाल राजमहल के पास से जो व्यक्ति गुजरे उसे वह एक दिन के लिए राजमहल का अतिथि बनाता था। नियम के अनुसार भोर होते ही राजकर्मचारी उस प्रथम व्यक्ति को पकड़ कर राजमहल में ले आते, जो राजमहल के सामने से गुजरता। फिर उसका राज्योचित सत्कार किया जाता। एक दिन प्रातःकाल एक मछुआरिन (मछली पकड़ने और बेंचने वाली स्त्री) राजमहल के सामने से गुजरी तो राजकर्मचारी उसे राजमहल में ले आए।

महाराज ने हुक्म दिया कि उसे सुगंधित द्रव्यों से नहलाया जाए और फिर कीमती वस्त्र पहनाकर राजसी भोजन कराया जाए। राजाज्ञा के अनुसार उसका इसी प्रकार आतिथ्य हुआ। रात हुई तो सुन्दर पुष्पशैया पर मछुआरिन के शयन का प्रबंध किया गया। उसे कोई कष्ट न हो इस हेतु एक सेवक की नियुक्ति भी की गई ताकि वह पूरा ध्यान रखें।

लेकिन मछुआरिन करवट बदलती रही, उसे नींद न आई। राजसेवक सतर्क हो उठा। किसी तरह मछुआरिन को नींद आनी ही चाहिए अन्यथा वह दंड का भागीदार होगा। उसने विनम्रता से पूछा, ''आपको नींद नहीं आ रही है देवी, बताइये मैं आपके लिए क्या करूँ ताकि, आप आराम से सो सकें ?''

मछुआरिन ने कहा, ''मैं नहीं जानती, क्या बात है लेकिन यहाँ बहुत दुर्गंध आ रही है, इसके कारण दर्द से मेरा सिर फटा जा रहा है। कुछ करें ताकि वह दुर्गन्ध दूर हो।''

सेवक ने देखा, मखमली शैया सुगन्धित पुष्पों से सजी थी। वस्त्रों पर भी सुगन्धित इत्र लगा था, कहीं भी दुर्गन्ध का नाम न था, पर मछुआरिन को दुर्गन्ध आ रही थी। आखिर उसने विशेष मंत्री को जगाया जो राजमहल का प्रबंध देखता था। मंत्री ने जाकर शैया का निरीक्षण किया, चारों तरफ मधुर सुगन्ध की भरमार थी, दुर्गन्ध का तो प्रश्न नहीं था। मंत्री मुस्कुराये उन्हें रहस्य समझ में आ चुका था। उन्होंने सेवक से कहा, ''जाओ, मछुआरिन का मछली वाला जाल ले आओ जो प्रातःकाल अश्वशाला में रखवा दिया था। राजसेवक मछली वाला जाल ले आया, तो मंत्री ने निर्देश दिया, इसे विशेष अतिथि (मछुआरिन) के सिरहाने पलंग पर रख दो, दुर्गन्ध भाग जाएगी।''

राजसेवक चकित था कि दुर्गन्धित मछली वाले जाल से दुर्गन्ध कैसे मिटेगी? पर उसने आज्ञा का पालन किया। मंत्री और राजसेवक ने देखा कि अब थोड़ी ही देर में मछुआरिन गहरी नींद में पहुँच चुकी थी। मछली वाले जाल की दुर्गन्ध ही उसके लिए सुगन्ध थी, वह उस गन्ध को सूँघते ही सो गई।

इन्द्रिय सुख ठीक इसी प्रकार की भ्रान्ति है। मछुआरिन की तरह इन्द्रियों को जन्म-जन्मांतर से विषयों की दुर्गन्ध ही प्रिय लगती रही है, इसीलिए ये भागती रहती हैं। राजा है आत्मा, उसका भव्य राजमहल है अतीन्द्रिय सुख, मछुआरिन की तरह मलिन मन तब तक

इस सुख का आनन्द कैसे पा सकता है जब तक यह शुद्ध न हो जाए, इन्द्रियों की दासता से मुक्त न हो जाए। इन्द्रिय- दमन की यही सार्थकता है।

इन्द्रियों की दिशा में परिवर्तन कर दो:

परन्तु यह इन्द्रिय दमन जबर्दस्ती से नहीं होगा, इन्द्रियों को काट देने से भी नहीं होगा। एक भिक्षुक की कथा है। यह एक गृहिणी के द्वार पर भिक्षा माँगने गया। वह भी अनन्य रूपवती। भिक्षुक रोज भिक्षा मांगने उसके द्वार पर जाने लगा। उसके मन में सुन्दरी के प्रति वासना जाग चुकी थी। सुन्दरी विदुषी और तत्वदृष्टा थी। उसे भिक्षुक पर दया आई कि उसके कारण एक तपस्वी पथभ्रष्ट हुआ जा रहा है। उसने एक नाटक रचा। शाम होते ही एक तीव्र दस्तावर औषधि सेवन कर ली। सुबह होते-होते मल का ढेर लग गया। इस मल को उसने एक पात्र में इकट्ठा कर लिया और स्वयं निर्जीव-सी शैया पर पड़ी रही। अब वह रूपविहीन थी। मल और रस के निकल जाने से वह कान्तिहीन हो गई थी। कपोल गढ़े में घुस गए थे।

निश्चित समय पर भिक्षुक भिक्षा के लिए आया तो सुन्दरी ने अन्दर बुला भेजा। भिक्षुक ने सुन्दरी को देखा तो विस्मय से आँखें फैली रह गईं, मन में प्रश्न उठा, कल वाला वह रूप कहाँ गया?

सुन्दरी ने भिक्षु के मन को पढ़ लिया, वह बोली, ''तपस्वी, वह देखो, सामने इस पात्र में देखो, मेरा सारा सौन्दर्य उस पात्र में है।

भिक्षुक की आंखें खुल चुकी थीं। उसे इस रूप की प्यासी आँखों पर क्रोध उमड़ आया। उसने एक नुकीली लकड़ी उठाई और अपनी आँखें फोड़ डालीं।

विदुषी ने प्रबोधित किया, तपस्वी, आँखें फोड़ने से वासनाएँ नहीं मिट जाती। इनका केन्द्र तो अन्दर है। ''उस मन को शुद्ध करो, इन्द्रियाँ स्वयं उपराम हो जाएगी।''

यही सत्य है। इन्हीं आँखों से देव प्रतिमा के दिव्यदर्शन भी किए जा सकते हैं, सवाल केवल इन्द्रियों की दिशा परिवर्तन का है। इसलिए इन्द्रिय-दमन मन के जागरण से होता है। बहिर्मुखी प्रतिरोध से नहीं। इन्द्रिय-दमन का उपाय यही है कि मन को पवित्र कार्यों में लगाया जाए। भोक्ता इंद्रियाँ नहीं, यह मन ही है। इन्द्रियाँ तो रसों की वाहक मात्र है और मन की प्रवृति है कि वह एक समय में एक ही बिन्दु पर केन्द्रित रह सकता है। अतः सरल उपाय है कि मन को उच्चतर रसों की ओर लगा दो, इन्द्रियाँ भी उधर ही चली जाएंगी। उन्हीं उच्चतर रसों में रस लेने लगेंगी।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने इन्द्रिय- आसक्ति और भक्ति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। वह कहते हैं, ''योगी और भोगी में कार्य व्यापार का अन्तर नहीं दृष्टि का अन्तर है। योगी और भोगी रात को दोनों ही जागते हैं। भोगी रात को रसरंग में मतवाला होकर जागता है, जबकि योगी प्रियतम प्रभु की आराधना में जागता है।

योगी भी प्रियतम प्रभु की आराधना में जागता है। योगी भी मदिरा पीता है और भोगी भी, किन्तु योगी प्रभु प्रेम मदिरा पीकर उसके प्रेम में मस्त रहता है। जबकि भोगी हाट की मदिरा पीकर कीचड़ में लोटता है। दोनों ही मधुपान का रस लेते हैं, लेकिन योगी प्रभुकीर्तन के गान में आँखें बंदकर ताली बजाकर झूमता है, जबकि भोगी नर्तकी के कोठे पर उसके नृत्यचाप में लीन हो उसके चरणों में लुढ़कता है।"

यह अन्त है मन की दिशा के परिवर्तन का। इन्द्रियों को प्रभु की ओर लगा देना ही सही इन्द्रिय-दमन है।

अपने लिए कुछ बचाकर मत रखो। अपनी निजता को बाँट दो, भोग के लिए कुछ बचेगा ही नहीं, अपने भीतर कुछ भी बचाने की आकांक्षा छोड़ दो, इन्द्रियाँ स्वयं ही शान्त हो जाएगी।

(६)

कर्म मेरी पूजा और जीवन मेरा यज्ञ

(यज्ञः)

"यज्ञ आध्यात्मिक जीवन का आधार है। यह सारी सृष्टि ही एक महायज्ञ है। इस सृष्टि रचना को देखें तो पायेंगे कि हर प्राणी का सृष्टि प्रवाह में योगदान के लिए एक दायित्व है, उसके जीवन की उपयोगिता है। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी स्वयमेव सृष्टि यज्ञ का उपकरण बना हुआ है।"

जिस कर्म से बहुत लोगों को तृप्ति हो वही कर्म 'यज्ञ' है परमार्थ किया जाने वाला कर्म (यज्ञ) चित्तशुद्धि का श्रेष्ठ साधन है इसलिए यज्ञ को दैवी संपत्ति कहा है। यज्ञ की चरम सीमा है जीवन के हर कार्य को ही यज्ञमय बना लेना, कोई भी कार्य अपने लिए न करना केवल अपने लिए ही जीना और उपभोग करना पशु-प्रवृत्ति है, केवल दूसरों के लिए जीना देवत्व है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठे और प्रयास द्वारा देवत्व की ओर बढ़े।

यज्ञमय जीवन की इस प्रेरणा के स्रोत आदिकाल से देवता ही बने। सृष्टि रचना के समय से अग्नि, वरुण, सूर्य आदि देवगण निस्वार्थ रूप से धर्मपालन के लिए जो कर्म कर रहे हैं, वे प्रथम कर्तव्य ही अनुकरणीय बन गए। यजुर्वेद में कहा हैः

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥"

(पुरुष सूक्त)

भोग में से योगः

जीवन अनेक जन्मों में केवल भोग का अभ्यस्त रहा है। भोग बन्धनकारी है, इसीलिए मनुष्य जीवन में भी उसकी सहज प्रवृत्ति भोगों की ही ओर रहती है। इस प्रवृत्ति को अधिक से अधिक त्याग की ओर उन्मुख करने के लिए ही हमारे ऋषियों ने यज्ञमय जीवन की कल्पना की थी। उन्होंने मानव जीवन धारा को योगवाहक बनाने के लिए पाँच यज्ञों का निर्देश दिया है। ये हैं ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ।

यज्ञों का यह वर्गीकरण सार्थक है। हमारा यह जीवन प्रकृति के हर कारक का ऋणी है। इनके प्रति कर्तव्य पालन द्वारा ही हम यह ऋण चुका सकते हैं।

हमें जो भी ज्ञान प्राप्त है, उसके पीछे ऋषियों की अनन्य तप साधना है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि इस ऋषि-ऋण को चुकाने के लिए ज्ञानदान की परम्परा को आगे बढ़ायें। यही ब्रह्मयज्ञ या ऋषियज्ञ है।

देह मन्दिर का पितृयज्ञः

हम अपने माता-पिता व अन्य पुरखों के भी ऋणी हैं। माता-पिता के द्वारा ही हमें यह देहमन्दिर प्राप्त हुआ है। इसलिए उनके प्रति श्रद्धाभाव, आज्ञापालन और उनकी सेवा पितृयज्ञ के प्रेरक उदाहरण हैं, श्रवणकुमार जिन्होंने अपने कंधे पर माता-पिता को बहंगी में बैठाकर और अपने कन्धों पर ढोकर तीर्थाटन कराया था। राम का पितृयज्ञ भी अनुकरणीय है जिन्होंने अपने पिता के वचन की रक्षा के लिए राज्य त्यागकर सहर्ष चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार किया।

श्रद्धा की अभिव्यक्तिः

देवयज्ञ है देवताओं के प्रति श्रद्धा की अभिव्यक्ति। अग्नि, वरुण, वायु आदि देवता हैं, जिन्होंने न केवल हमारे शरीर की रचना की है बल्कि जीवनपर्यन्त ये ही देवगण हमें ऊर्जा देते हैं। इनके प्रति यज्ञभाव है पर्यावरण को अशुद्धि से बचाना, नदियों को प्रदूषण से बचाना और जल की रक्षा करना वरुण देव की उपासना है। इसी प्रकार सूर्य-अग्नि प्रदायक है। अपने तेज से साधुजनों की रक्षा करना ही सूर्य की उपासना है।

सब है साथी सब संगाथीः

भूतयज्ञ है प्राणीमात्र के प्रति सेवा की भावना। अन्य सब प्राणी जीव-जन्तु मनुष्य के उपभोग मात्र के लिए हैं यह दृष्टिकोण गलत है, यह चिंतन आसुरी है। समस्त प्राणी एक-दूसरे के पूरक हैं, सृष्टिचक्र के अनिवार्य चक्र दण्ड हैं। सभी जीव-जन्तुओं का सृष्टि-संतुलन बनाए रखने में योगदान है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में चींटी से लेकर हाथी तक हर एक पशु को ईश्वरीय तत्व से जोड़ा गया है। किसी को किसी देव का वाहन कहकर आदर दिया गया है तो किसी को स्वयं अवतार कहा गया है। इसके पीछे प्रयोजन यही था कि हम प्राणीमात्र के प्रति दया और प्रेम का भाव रखें भूतयज्ञ का यही भाव है कि प्रतिदिन किसी पशु के प्रति यज्ञभाव से आहुति अर्पित करें। गृहस्थ में पहली रोटी निकाल कर गौमाता को खिलाना इसी यज्ञ परम्परा का प्रतीक है।

नृयज्ञ का अर्थ है मनुष्य मात्र के प्रति सेवा की भावना। मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है, अतिथि की सेवा भी नृयज्ञ की भावना से प्रेरित है।

हमारे देश में इन विविध यज्ञों के सर्वोच्च उदाहरण रहे हैं। एक कबूतर के लिए सारे शरीर का मांस अर्पित कर देना राजा 'शिबि' का ऐसा ही भूतयज्ञ था। प्राणियों के प्रति

दया और त्याग का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है कि अपना शरीर ही अर्पित कर दिया जाए। चालीस दिन के भूखे राजा 'रन्तिदेव' के द्वारा परिवार सहित अतिथि को अपना समस्त भोजन दे देना नृयज्ञ का अप्रतिम उदाहरण है।

यज्ञक्रिया का रहस्यः

यज्ञ का बाह्य प्रतीक एक गहन आध्यात्मिक अर्थ का परिचायक है। हवन कुण्ड में समिधा से अग्नि प्रज्जवलित कर घृत और सामग्री की आहुति देना यज्ञ का बाह्य कर्म है। इसका प्रतीकार्थ बड़ा व्यापक है। यज्ञ हमारे भीतर हो रहा है, अग्नि भीतर है। उसी देव का आवाहन करना है। सारे कार्यों की आहुतियां उसी को देनी हैं। कोई कर्म अपने लिए न हो, हमारा हर कर्म देवपूजा हो, सारा जीवन यज्ञमय हो, यही मानव जीवन की सार्थकता है।

अग्नि है प्राण-चेतना। इसमें वासनाओं और स्वार्थों की आहुति देना ही यज्ञ है। इस प्रक्रिया में अन्त में वह स्थिति आती है जब अहं भी जल जाता है। अहं की भी आहुति पड़ जाती है और तब बच जाती है विशुद्ध चेतना, वही प्रभुमिलन की घड़ी है।

शरीर-यंत्र की क्रियाएं भी स्वयं यज्ञ हैं। इसमें भोगों की आहुति देनी है। योग की विधियों के इस अग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाता है, इसमें जन्म-जन्मान्तर की वासनाएँ जल जाती हैं और अन्त में जल जाता है वह आवरण जिसे 'अहं' कहते हैं। इसे ही जलाना यज्ञ का उद्देश्य है।

सहज साधनः

यज्ञ-बन्धन मुक्ति का सहज साधन है। निष्काम भाव से दूसरों के लिए किए जाने वाले कर्म (यज्ञ) अकर्म बन जाते हैं, फिर उनके फल भोगने के लिए जन्म नहीं लेना पड़ता।

गीता में कहा हैः

''गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
याज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।''

(श्री मदभगवद् गीता अ. 4 श्लोक सं. 23)

अर्थात् जो कार्य फल की कामना से रहित होकर विश्व कल्याण की भावना से यज्ञ के रूप में किए जाते हैं, वे सब अकर्म बन जाते हैं। उनके फल भोगने के लिए जन्म नहीं लेना पड़ता।

यज्ञ एक, अर्थ अनेकः

यज्ञ की व्याख्या गीता में बड़ी व्यापक है। गीता के अनुसार वे सभी कर्म जो निष्कामभाव से ईश्वर को समर्पित किए जाते हैं, यज्ञ ही हैं क्योंकि ऐसे कर्म बन्धनकारी नहीं हैं।

आत्मसंयम को भी यज्ञ कहा गया है। इन सब निष्काम कर्मों से चित्त की शुद्धि होती है और मल, विक्षेप, आवरण तथा विषय वासनाओं की आहुति आत्मसंयम यज्ञ में देकर इन्हें भस्म किया जाता है। इस प्रकार आत्मज्ञान की प्राप्ति के समस्त साधन यज्ञ ही हैं।

अनेक महापुरुषों और संतों ने लोक-कल्याण के लिए निष्काम कर्म करते हुए अपने जीवन को यज्ञस्वरूप ही बना डाला था। वे मानवता के प्रेरक प्रकाशस्तंभ हैं। महर्षि दधीचि ने देवताओं के लिए अपनी अस्थियां ही निकाल कर दे दी थीं। यह है यज्ञ का व्यापक भाव। अपने जीवन को अभावों और संकटों में डालकर भी लोक-कल्याण करना, इतना ही नहीं, प्रलोभनों को ठुकरा कर भी सेवा पथ पर बढ़ना ही सच्चा यज्ञ है। ऐसा ही यज्ञ चित्तशुद्धि का अप्रतिम साधन है।

सृष्टि ही यज्ञ है :

यज्ञ सर्वश्रेष्ठ दैवी सपत्ति है। यह आध्यात्मिक जीवन का आधार है। यह सारी सृष्टि ही एक महायज्ञ है। इस सृष्टि रचना को देखें तो पायेंगे कि हर प्राणी का सृष्टि प्रवाह में योगदान के लिए दायित्व है, उसके जीवन की उपयोगिता है, क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी भी स्वयमेव सृष्टि यज्ञ का भाग बना हुआ है। क्षुद्र केंचुआ भी भूमि को उपजाऊ बनाकर अन्न उत्पादन में सहयोगी बन रहा है।

इसलिए वेद में कहा हैः

'अयंयज्ञो भुवनस्य नाभिः'

अर्थात् यह यज्ञ ही संसार का केन्द्र है। हम सृष्टि के इस रहस्य को समझें और अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर सार्थक करें।

(७)

स्वाध्याय का प्रकाशदीप थामे रहें

(स्वाध्याय)

''घोर अंधेरी रात थी। गुरु ने शिष्य से कहा, जाओ वत्स! यात्रा प्रारंभ करो।''

शिष्य ने विनम्र अनुरोध किया, ''गुरुदेव, मार्ग लंबा है, उबड़-खाबड़ भी है और रात ऐसी अंधेरी कि हाथ नहीं सूझता।'' उसने प्रार्थना की मुद्रा में गुरु की ओर देखा और निवेदन किया, ''क्यों न भोर होने तक ठहरूँ और तब ही यात्रा करूँ ?''

गुरु मुस्कराये और बोले, 'वत्स! तुम्हारे पास यह मशाल है न, इससे तुम्हारे मार्ग का अंधेरा दूर होता जाएगा और तुम सुगमता से यात्रा पूरी कर लोगे।

शिष्य ने फिर संदेह प्रकट किया, ''गुरुवर मार्ग बहुत लबा है। संकरी पगदण्डियों, घाटियों से घिरा हुआ, एक पैर फिसला कि हजारों फीट नीचे घाटी में गिरने का खतरा है और यह मशाल कितनी छोटी है। कितना धीमा है इसका प्रकाश। चार कदम से अधिक इसमें कहाँ दीखता है फिर इतनी लंबी यात्रा कैसे पूरी होगी?''

गुरु ने स्नेहासित स्वर से समझाया, 'वत्स! प्रकाश की सीमा मत देखो। चार कदम चलोगे तो प्रकाश फिर आगे के चार कदमों को आलोकित कर देगा। जब तक तुम मशाल थामे रहोगे, कोई खतरा नहीं है। बस, ध्यान रखो, मशाल जलती रहे और तुम्हारे हाथ उसे थामे रहें, कितना ही लंबा अंधेरा पथ हो, प्रकाशित होता रहेगा'' और यात्रा निर्विघ्न होती रहेगी।

शिष्य को प्रकाश की शक्ति का रहस्य समझ में आ चुका था। उसने मशाल थामी और मीलों लंबी यात्रा पर चल पड़ा।

प्रकाश और अंधकार का यही संबंध है। अंधेरा कितना ही सघन क्यों न हो, रास्ता कितना ही ऊबड़-खाबड़ और लंबा क्यों न हो और प्रकाश देने वाली मशाल या दीपक कितना ही छोटा क्यों न हो, यदि कोई इसे हाथ में थामे रहे और चले तो अनन्त अंधेरा पथ भी सरलता से पार कर सकता है।

जीवन यात्रा के अनन्त अंधेरे मार्ग पर ज्ञान ही यह प्रकाश है जिसे थामें रहना है, फिर हमारी यात्रा निर्विघ्न होती रहेगी।

ज्ञान का स्रोतः

यह ज्ञान मिले कहाँ से? कहाँ है ज्ञान का स्रोत! वह स्रोत है, हमारे ऋषियों द्वारा

प्रणीत ग्रन्थ। तत्वदर्शियों द्वारा दिया गया उपनिषद् ज्ञान और ऐसे ही साधना के असंख्य अमृत फल जिन्हें हम आर्यग्रंथों के रूप में जानते हैं।

इन ग्रन्थों का अध्ययन पठन-पाठन ही वह (मशाल) प्रकाश है जो, हमारे जीवन पथ की लंबी यात्रा को आलोकित करता है। इनका अध्ययन ही स्वाध्याय है और स्वाध्याय ही जीवनयात्रा का पाथेय है।

किसी भी ग्रन्थ का अध्ययन स्वाध्याय नहीं है। भौतिक जानकारियां देने वाले ग्रन्थ का स्वाध्याय ग्रंथ नहीं कहला सकते। वे पदार्थों को पाने या जानने की पुस्तकें मात्र हो सकती हैं। ये विद्या के ग्रन्थ भी नहीं हैं। "सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् विद्या तो वह है, जो बंधन से मुक्त करती है। अतः स्वाध्याय ग्रन्थ वे हैं जो हमें माया बन्धनों से मुक्त कर प्रभु साक्षात्कार की दिशा में ले जाते हैं।

ज्ञान का दीपक थामे रहना हमारी सुखद जीवन यात्रा की आवश्यक शर्त है।

ज्ञान पूर्वक जीना हरपल मुक्त होना है। प्रकाश के बारे में अज्ञान का बहाना बनाकर हम दुर्घटनाओं से बच नहीं सकते। अंधेरे से मुक्ति के लिए जैसे प्रकाश हमारी अनिवार्यता है उसी प्रकार जीवन के अंधेरे से मुक्ति के लिए ज्ञान हमारी अनिवार्यता है, अर्थात् स्वाध्याय हमारी अनिवार्यता है।

सुखद जीवन यात्रा के लिए स्वाध्याय का प्रकाश हमारे लिए ईश्वरीय संदेश है। ईश्वर ने इस मनोरम सृष्टि की रचना की है। यदि हमें सृष्टि से टकराना नहीं है तो ईश्वर प्रदत्त ज्ञान की मशाल को हाथों में थामना और इसे थामे रहकर बढ़ते जाना हमारा कर्तव्य है। इसीलिए वेद में कहा है- "स्वाध्याययान् मा प्रमद" अर्थात् स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो।

स्वाध्याय क्या है ?

स्वाध्याय मात्र पठन नहीं है। अर्चना पूजापूर्वक सद्ग्रंथों के पठन-पाठन मात्र को स्वाध्याय नहीं कहते। ज्ञान को जीवन में अवतरित करना ही स्वाध्याय है। "स्वाध्याय" शब्द से ही इसका अर्थ स्पष्ट है। स्वाध्ययन अर्थात स्व का अपना अध्ययन यानी स्वयं को जानना कि हम कौन हैं और स्वयं को जानने की प्रक्रिया तब तक अंत नहीं हो सकती, जब तक हम यह न जान लें कि हम वही 'ब्रह्म' हैं।

यह एक ऐसी यात्रा है जहाँ हमें हर पल सावधान रहना है। इस पथ पर मानों हर जगह एक बोर्ड लगा है, 'सावधान, आगे खतरा है'। किन्तु यदि चालक निपुण है, उसका पथ प्रकाशित है तो कोई खतरा नहीं। इसलिए जीवन के हर कर्म का अध्ययन करते रहें। यही सतत् स्वाध्याय है।

स्वाध्याय कैसे करें ?

यह स्वाध्याय करें कैसे ? यह हमारे जीवन का हिस्सा कैसे बनें ? स्वाध्याय बोलने

में जितना सुगम है, करने में उतना ही कठिन है क्योंकि जन्म-जन्मान्तर से हमारी स्वाध्याय की आदत छूट गई है। हमने अपना अध्ययन करना बंद कर दिया है हम दूसरों का ही अध्ययन करते रहते हैं। हम हमेशा दूसरों की खिड़की में ही झांकते रहते हैं। हमारी अंगुली हमेशा दूसरों की ही ओर उठी रहती है।

कैसी विचित्र बात है। हमने अपनी चिन्ता छोड़ दी है। स्वयं को प्रेम करना बंद कर दिया है और हम दूसरों की कमियां ढूंढ़ने में ही रात-दिन लगे रहते हैं। वह बुरा है, वह छली है, वह झूठा है, उसका चरित्र खराब है। इतना ही नहीं, अज्ञानीजन इससे भी आगे बढ़ जाते हैं। वे गर्व से कहते हैं, ''मैं उड़ती चिड़िया के पंख पहचान लेता हूँ। मैं उसके सात पुरखों की कहानी जानता हूँ'' और वह अभागा अपने बारे में कुछ नहीं जानता, जानेगा भी कैसे उसने तो अपने बारे में जानने का रास्ता ही बंद कर रखा है। वह तो बस दूसरों के बारे में ही सोचता रहता है।

ऐसे लोगों को आप परोपकारी नहीं कह सकते। वे तो बस, दूसरों की कमियां देखकर मुदित होते रहते हैं। दूसरों की कमियां अपने श्रेष्ठ होने का भ्रम बनाए रखती हैं कि दूसरे बुरे हैं तो हम अच्छे हैं। दूसरों के मुख पर कालिख पोतने से स्वयं का चेहरा उजला नहीं हो जाता किन्तु अज्ञानी जीव जन्म-जन्मान्तर से इसी खेल में फँसा रहता है। वह अपनी अंगुली हमेशा दूसरों की ओर उठाये रहता है, और संकेत कर कहता रहता है, वह बुरा है वह दंभी है, वह छली है, वह ....। उसकी समस्त समय शक्ति, दूसरों की कमियों को ढूंढ़ने में लगी रहती है, इसलिए वह स्वाध्याय से विरक्त हो गया है। उसे अपनी ओर देखने की फुर्सत ही कहाँ है।

निन्दा की दलदल में धँसते नहीं, प्रसंशा से जितने फिसलते कदम हैं।
कुरुक्षेत्र, इतिहास के पृष्ठ काले, कुटिलता के कारण भी केवल अहम् हैं।

इसलिए स्वाध्याय कठिन हो गया है। इसी कारण व्यक्ति जीवन पथ पर ठोकर खाता रहता है और फिर भी दुःखों से चीत्कार कर जाग नहीं पाता, दूसरों को दोष देता रहता है कि उसने मुझे धोखा दे दिया, उसने ठग लिया, अमुक ने विश्वासघात किया, वह भूला हुआ है कि ये सब उसी के चेहरे के प्रतिबिंब हैं।

शताब्दियों में संत चेतावनी देते हुए कहता है :-

''बुरा जो देखन मैं चला,
बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपनो,
मुझ से बुरा न कोय॥'' (कबीर)

स्वाध्याय की यही दिशा है- अपने अंदर झाँकना, स्वयं के चित्त की सफाई करना। दूसरों की कमियों की ओर देखते रहना क्या सूअर की तरह मल की ओर देखते ही रहना नहीं है ? यदि दूसरों की ओर ही देखना है तो मधुमक्खी की तरह पराग की ओर देखें। जीवन पुष्पों में पराग भी तो है, अच्छाई भी तो है, अच्छाइयों का, गुणों के मधु का संचय करें। यह स्वाध्याय हो जाएगा। दूसरों की अच्छाइयां, उनके सद्‌गुण हमारे जीवन को मधुमय बना देंगे।

स्वाध्याय की आदत एक बार डाल लें तो हम प्रकृति के कण-कण से सीख सकेंगे। जीवन का हर क्षण हमें कुछ न कुछ सिखाता रहेगा। तब हम बुराइयों से भी शिक्षा लेंगे, दुर्घटनायें भी हमें दिशा देंगी।

स्वाध्याय की बाधाः

किन्तु हमारे इस स्वाध्याय की सबसे बड़ी बाधा हे, सर्वज्ञता का अहम्। यह अहम् कि हम सब कुछ जानते हैं। व्यक्ति का यह अहम् ही उसे सबसे क्षुद्र बनाये रखता है। अहम् का दायरा आप कितना बढ़ायेंगे ? वह रहेगा तो छोटा ही, जबकि मनुष्य क्षुद्र है ही कहाँ वह तो स्वयं निस्सीम ब्रह्म ही है।

किन्तु जब तक यह अहम् नहीं मिटता, स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया जारी नहीं होती। कबीर ने कितना सार्थक कहा है-

''जब मैं था तब हरि नहीं,
अब हरि है मैं नाहिं।''

अर्थात जब मुझमें अहंकार था, तब भगवान मुझसे अंतर दूर थे, लेकिन जब यह अहंकार नहीं रहा, तब केवल भगवान ही हैं, और कुछ भी नहीं।''

जब अहम् विगलित हो जाता है, तब व्यक्ति स्वयं वही हो जाता है। उसे क्षुद्र बनाए रखने वाला यह श्रेष्ठता का भाव ही है।

सचमुच ज्ञान बढ़ने पर अहम् रहता ही कहां है क्योंकि अहम् तो ज्ञान के अभाव से घिरा अंधेरा ही है।

आत्म-चिन्तन की आदत डालें:

मन की आदत है बाहर की ओर देखना। जीवन में कहीं भी कोई घटना हो, व्यक्ति बाहर ही देखता है, दूसरों को ही दोष देता है। इसके विपरीत अभ्यास का नाम है ''आत्म-चिंतन'' कहीं कोई भी घटना-दुर्घटना घटे तो अपने अंदर झांकें, अपनी भूल खोजें। यह बड़ा कठिन अभ्यास है। अपनी भूल ढूंढ़े मिलती ही नहीं है।

क्योंकि मन को वासनाओं और कामनाओं के काले रंग में अपनी भूल दिखेगी ही कैसे? उसके लिए तो पहले दर्पण को साफ करना होगा। धुंधले दर्पण में चेहरा कैसे दिखेगा?

अतः आत्म-चिंतन की आदत भी सापेक्ष है। स्वाध्याय के प्रकाश से मन-दर्पण निर्मल होगा, तब आत्म-चिन्तन से स्वाध्याय का प्रकाश पाने में अधिक सफलता मिलेगी। इसलिए आत्म-चिन्तन स्वाध्याय का प्रेरक है और स्वाध्याय आत्म-चिंतन का प्रेरक। दोनों क्रियायें पूरक हैं। अतः जीवन में कोई भी भूल हो तो आत्म-चिन्तन अवश्य करें। स्पष्टतः दूसरे की भूल दिखाई देती हो तो भी आत्मचिंतन के लिए बैठें और अपनी भूल ढूंढ़ें। देखेंगे कि कोई भी प्रतिक्रिया क्रिया के बिना नहीं है, चाहे भूल छोटी-सी हो, मिलेगी अवश्य। इस प्रकार आत्म-चिन्तन सबसे बड़ा स्वाध्याय है।

प्राचीनकाल में स्वाध्याय की यह मशाल जीवन के प्रारंभ में ही थमा दी जाती थी। छात्र को पांच वर्ष की आयु में ही गुरुकुल में शिक्षा के लिए भेज दिया जाता था और जब वह वेदादिशास्त्र ज्ञान के प्रकाश से पूर्ण होकर जीवन क्षेत्र में प्रवेश करता था, उसकी जीवन-यात्रा निर्विघ्न होती थी। तब गुरु के ये शिष्य समाज का नेतृत्व करते थे। आज वह शिक्षा कहां है? यह तो कुछ जानकारियों का ढेर मात्र है। ऐसी जानकारियों का ढेर जिससे जीवन को न तो कोई सम्बल मिलता है, न आत्म-विश्वास। जीवन का अंधेरा पथ और अधिक सघन हो जाता है और तब जीवन में प्रकट होती हे कुंठायें, निराशायें और आत्मघात की प्रवृत्तियां।

जीवन का आहारः

इसलिए स्वाध्याय जीवन का आहार है। यह मन का भोजन है। मन निराहार नहीं रह सकता। यह कभी रिक्त नहीं रह सकता। इसे स्वाध्याय के द्वारा सात्विक संस्कारों से भरते रहें। यदि सात्विक संस्कार नहीं भरेंगे तो चारों ओर जो भी है, मलिन, तामसिक, यह उन्हीं को ग्रहण करेगा। पर यह खाली कभी नहीं रहेगा, इसलिए स्वाध्याय की आदतें डालें। मन को पवित्र संस्कारों से पूरित करते रहें।

हमारी चेतना का सम्पर्क किससे हो, हमें यह देखना है। मन तो एक संग्राहक (बिजली के होल्डर) की तरह है। इसमें 25 वोल्ट का बल्ब लगायेंगे तो उतनी ही रोशनी प्राप्त होगी। सौ वॉट का बल्ब लगाने से सौ वॉट ही की रोशनी मिलेगी और यदि आपको एक हजार वॉट के बराबर रोशनी चाहिए तो होल्डर में उसी शक्ति का बल्ब लगाइए।

बस, यही बात मन के बारे में है। चौबीस घंटे में आप इसे जितनी विद्युत शक्ति के साथ जोड़ेंगे, उतना ही प्रकाश मिलेगा। इसे बुरी मानसिकता, व्यर्थ मनोरंजन और वासनापूर्ण भोगों से जोड़ेंगे तो वही धुंधला प्रकाश मिलेगा। इसे ईश्वर की दिव्य शक्ति से जोड़ेंगे तो विराट प्रकाश धारा मिलेगी, फिर क्यों न इसे चौबीसों घंटे उसी धारा में जोड़े रखा जाए?

जीवात्मा में जन्म–जन्मान्तर के अहम् भाव के कारण अन्तर्निहित आत्मा के प्रकाश का अभाव ही यह अंधेरा है। आत्मा पर पड़े इन आवरणों को हटाने के लिए स्वाध्याय के प्रकाश की आवश्यकता है। स्वाध्याय दैवी संपत्ति है। यह मृत्यु से अमृत की ओर ले जाने वाला मार्ग है। अतः स्वाध्याय में प्रमाद न करें। स्वाध्याय की मशाल हाथ में थामे रहेंगे तो लंबा, दुर्गम जीवन का अंधियारा पथ भी सहज प्रकाशित होता रहेगा।

''ये तन-मन सुमन सा तुम्हीं ने दिया है सुवासित इसे ज्ञान से भी किया है
सुनो नाथ विनती तुम्हीं से हमारी हमें थाम लेना बिखरने से पहले।''

(८)

तप जीवन की कसौटी

(तपः)

तप शारीरिक परिश्रम का सात्विकता ही नहीं है बल्कि यह निरन्तर जागरूकतापूर्वक ऐसा कर्मयज्ञ है जिसमें मन के चिन्तन और वाणी से निकलने वाले प्रत्येक शब्द पर ध्यान रखना जरूरी है। जिस प्रकार मन, वाणी और शरीर द्वारा संपन्न होने वाले कर्म हमें कर्मजाल में फँसाकर हमारेलिए जन्म-मरण का कारण बनता है, उसी प्रकार मन, वाणी और शरीर द्वारा जागरूकतापूर्वक किया जाने वाला हर कर्म हमारा तप बनकर हमें शुद्ध कर उत्तरोत्तर भगवान की ओर ले जाता है।

अत: हमारी प्रार्थना का मूल यही हो।

''हे ईश्वर! तन परिश्रमी हो, मन संयमी हो, बुद्धि विरागी हो, हृदय अनुरागी हो।''

यूनान के महान दार्शनिक सुकरात शिष्यों को तत्वज्ञान समझा रहे थे। शिष्य ऐसे गुरु को पाकर स्वयं को कृतार्थ अनुभव कर रहे थे और गुरु योग्य शिष्यों को ज्ञान प्रदान कर अपने कर्म को सार्थक समझ रहे थे। सहसा उनकी क्रोधी पत्नी ने बातचीत के दौरान कमरे में प्रवेश किया और सुकरात की पीठ पर एक लकड़ी से तड़ातड़ तीन-चार प्रहार कर डाले। इसके बाद पत्नी बड़बड़ाती हुई वापस चली गई। इन कुछ क्षणों के लिए सन्त सुकरात के प्रवचन में गतिरोध आ गया था। पत्नी जैसे ही वापस लौटी सुकरात ने सहज मुस्कान के स्वर में शिष्यों से कहा, ''हाँ, तो अपनी बात आगे बढ़ायें, हम आत्मा की शक्ति पर विचार कर रहे थे।'' गुरु की मुद्रा से स्पष्ट था जैसे कुछ हुआ ही नहीं, किन्तु शिष्य हतप्रद, क्रुद्ध और अशान्त थे। वे इसके पश्चात कुछ भी सुनने की स्थिति में नहीं थे।

एक शिष्य आवेश में बोल उठा, ''गुरुवर! यह आपके योग्य पत्नी बिलकुल नहीं है, आपको इनसे मुक्ति पा लेनी चाहिए।''

दूसरे शिष्य ने बात आगे बढ़ाई, ''वो भाग्यहीन यह भी नहीं जानती कि वह विश्व के नरश्रेष्ठ संत की पत्नी है, भला उसके साथ जीवन बिताने में क्या सार्थकता है गुरुदेव?''

सुकरात ने सहज भाव से उत्तर दिया, '' मैं अपनी इस धर्मपत्नी के प्रति बड़ा कृतज्ञ हूँ शिष्यों! क्योंकि यह मुझे ठोंक-बजाकर देखती रहती है कि मेरे जीवन में सत्य कितना साकार हुआ है। यह मेरी परीक्षक है जो परीक्षा लेकर मेरे अंदर की अपूर्णता को पूर्ण करने की प्रेरणा देती रहती है।'' सुकरात ने समझाया, ''यही तप है मेरे शिष्यों! जीवन की कसौटी पर ही पता चलता है कि कितनी शुद्धता है और कितनी मिलावट है।''

इसी तपी की सहनशीलता और तप का यह असर हुआ कि सन्त सुकरात की पत्नी ने जब संत पति की यह विनम्र वाणी सुनी और अपने कुकर्म पर ध्यान गया तो उनके चरण पकड़ लिए और उन्हें अब तक न समझ पाने के लिए बिलख-बिलख कर क्षमायाचना करने लगी।

तप जन्म-जन्मान्तर की मलिन वासनाओं को तपाकर जलाता है और साधक को खरा स्वर्ण बनाता है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा था, ''सुन्दर आभूषण बनाने के लिए स्वर्ण को पहले तपाना पड़ता है, तभी उसके खोट मिटते हैं और तब ही उसके आभूषण बनते हैं, तभी वह प्रभु का कंठाहार होने योग्य बनता है।''

तप की सार्थकताः

सत्य की ओर दृढ़-संकल्प से बढ़ना तप है। सत्य की ओर बढ़ना तप क्यों है ? यह मधुर स्पर्श क्यों नहीं है ? कर्णप्रिय संगीत क्यों नहीं है ? इसलिए कि जन्म-जन्मान्तर से मलिनता की ओर बढ़ना जीव का स्वभाव हो जाता है और स्वभाव ही सहजता है। चाहे वह कठिन और दुःखदायी ही क्यों न हो, चमगादड़ के लिए उल्टा लटकना सहजता है, सूकर के लिए मल में रहना सहजता है क्योंकि वह उनका स्वभाव है। इसी प्रकार मलिनता और असत्य की ओर बढ़ना तप नहीं है, सत्य की ओर बढ़ना तप है।

नीम न मीठो होय, सींच चाहे गुड़ घी से,
छाँड़त नाँही सुभाव, चाहें जायेगें जी से।

तप का अर्थ है तपना, आँच सहना, कष्ट सहना। आदर्श जीवन के लिए तपने की सिद्धता जरूरी है। पुरानी आदतों को छोड़ना कठिन होता है। हम अपनी एक छोटी सी आदत सरलता से नहीं छोड़ पाते, चाहे उससे सुख मिले या दुःख। हम उसके गुलाम बन जाते हैं। सब जानते हैं कि धूम्रपान, मदिरापान और अन्य मादक पेय शरीर के लिए विषतुल्य हैं परन्तु यह जानने वाले भी इन्हें बड़ी कठिनाई से ही छोड़ पाते हैं।

फिर जन्म-जन्मान्तर से पीछे लगी इन्द्रिय लोलुपता की कामनाएँ सरलता से कैसे छूटेंगी ? इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने तप को दैवी संपत्ति बताते हुए कहा है कि तप के द्वारा ही जन्म-जन्मान्तर की वासनाओं का क्षय होता है। अभ्यास की निरंतरता ही तप है। तप की आग से समस्त वासनाएं जलती हैं और अन्त में वह दुर्दमनीय अहम् भी जल जाता है जिसके पीछे स्वयं भगवान है, उसका दिव्य दर्शन है।

जीवन यात्रा ही तप हैः

यों तप की जरूरत जीवन की छोटी-से-छोटी सफलता के लिए वांछित है। छात्र को उच्च अंक प्राप्त करने के लिए जो कठोर परिश्रम करना पड़ता है, वह उसका तप है, सैनिक को युद्धभूमि में पराक्रम के लिए जो दक्षता चाहिए वह तप से ही आती है। कृषक को जीवनदायी अन्न उपजाने के लिए तप ही करना पड़ता है। धन, सत्ता अथवा पद किसी भी भौतिक पदार्थ को पाने के लिए जो कठोर श्रम करना पड़ता है, वह तप ही है। इसी प्रकार

साधना में सर्वोच्चता पाने के लिए जो सतत् जागरूक कष्ट, सहिष्णुता चाहिए वह तप है।

तप ही शुद्धिः

तप का अंतिम उद्देश्य है अहम् का विसर्जन। इसलिए कोई भी तपना तप नहीं है। दैवी ढंग से पवित्र उद्देश्य के लिए तपना ही तप है, आसुरी ढंग से दुष्ट कर्मों के लिए परिश्रम करना तप नहीं है। तप दोनों ही करते हैं, देव भी असुर भी। चोरी, लूटपाट, डकैती जैसे कर्मों में घोर परिश्रम की जरूरत पड़ती है, काफी खतरे हैं और अनेक कष्ट भी सहने पड़ते हैं, किन्तु इन्हें तप नहीं कहा जा सकता। आसुरी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कठोरतम परिश्रम भी तप नहीं है।

परिश्रम और कष्ट सहने का एक और प्रकार भी है- दूसरों को आकर्षित करने के लिए कोई विशिष्टता प्रदर्शित करना, अपने को अन्य लोगों से बड़ा, शक्तिशाली या श्रेष्ठ दिखाने के लिए कष्ट सहना। लेकिन यह तप नहीं है। आसुरी नहीं होते हुए यह क्षुद्र अहम् की तुष्टि का प्रयत्न मात्र है। इससे चेतना की शुद्धि का कोई संबंध नहीं है।

जान खतरे में डालकर सर्कस में विचित्र करतब दिखाने जैसे कामों को तप नहीं कह सकते क्योंकि ऐसे चमत्कारी कार्य जानवरों से भी करा लिए जाते हैं। किसी भी क्षेत्र में प्रतिमान (रिकार्ड) स्थापित करने के लिए कठोर परिश्रम करना, अपने मूल अस्तित्व को जानने के लिए कष्ट सहना ही तप है।

इस प्रकार के तप में कष्ट की अनुभूति नहीं होती, इस तप में आनंद आता है क्योंकि इस तप के द्वारा साधक का हर कदम दिव्यता की ओर बढ़ता है जब कि नश्वर भौतिक पदार्थों को पाने के लिए किए जाने वाले परिश्रम से थकान होती है, संघर्षों में होने वाली जय-पराजय से दुःख होता है क्योंकि यहां उद्देश्य ही वह सब पाना होता है जो नश्वर है।

किन्तु साधक को हर तपन आनंद देती है, ऊंचा उठाती है और उमंग से उसके मन को महका देती है।

तप का आलोकः

छत्रपति शिवाजी के पथदर्शक और महान गुरु, समर्थ गुरु रामदास को भला क्या अभाव हो सकता था किन्तु वह अपने अहम् विसर्जन के लिए ही संन्यास धर्म के अनुसार भिक्षा मांग कर निर्वाह करते थे। एक दिन भिक्षा के लिए निकले और एक गृहस्थ के द्वार पर गुहार लगाई ''भिक्षां देहि''। गृहिणी किसी कार्य में व्यस्त थी, उसने उत्तर दिया, ''फिर लौट कर आना, मैं जरा काम कर रही हूँ।'' समर्थ गुरु अपने ध्यान में मग्न थे। गृहिणी की बात सुन नहीं पाए और द्वार पर खड़े अभंग (ईश्वर भक्ति के गीत) गाते रहे। गृहिणी को बड़ा क्रोध आया वह घर के चूल्हे पर मिट्टी से पोत रही थी। उसने वही उठाया और क्रोध आवेश में समर्थ गुरु के मुख पर दे मारा। उनका मुख कीचड़ से लथपथ हो गया। उन्होंने

पोता उठाया और विनम्रता पूर्वक अपनी कुटी पर चले आए। जब गृहिणी को पता चला कि संन्यासी समर्थ गुरु रामदास थे, कोई साधारण फकीर नहीं, तो वह ग्लानि से पीड़ित हो दौड़ी हुई उनके पास पहुँची और उनके चरणों में गिरकर क्षमा याचना करते हुए बोली, ''गुरुदेव मुझ पापिनी को क्षमा कर दीजिए, मुझे पता नहीं था कि आप महान गुरु रामदास है, मैं घर के काम में इतनी व्यस्त थी कि क्रोध में आकर आपके ऊपर पोतना फेंक बैठी।''

समर्थ गुरु विनम्रता से मुस्कराते हुए बोले, ''माँ, आपने तो मुझे बड़ी अच्छी भिक्षा दी थी। मैंने उस पोतने को धोकर साफ किया और उसकी बत्तियां बनाई। अब देखो, वही बत्तियां पूजा के दीपकों को जलाकर प्रकाश फैला रही हैं।'' यह थी तप की पराकाष्ठा। एक साम्राज्य के निर्माता समर्थ गुरु भिक्षा याचना करते हैं और मुख पर फेंके जाने वाली वस्तु की बत्तियां बना लेते हैं।

यह जीवन-सत्य है, तप ही वह बल है जिसके द्वारा संसार के कीचड़ की सने पोतने से भी पूजा की बत्तियां बना ली जाती हैं।

तप जीवन के शुद्धिकरण की साधना है। इंद्रियों और मन को विषयों से हटाना ही तप है। जिसे हम सत्य समझते हैं, जो प्रकृति के नियमों और शास्त्रों की कसौटी पर अनुकरणीय है, उस पथ पर दृढ़तापूर्वक चलना ही तप है। इसके लिए घर-परिवार छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती।

तीन प्रकार का तपः

गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार का तप बताया गया है। वह है शरीर, मन और वाणी का तप। देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों की पूजा (आदर करना) एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा- यह शरीर संबंधी तप है। प्रिय एवं कल्याणकारी शब्द बोलना तथा वेदशास्त्रों तथा ईश्वर के नामस्मरण में संलग्न रहना वाणी का तप कहा गया है।

मन को प्रसन्न, शान्त और पवित्र रखते हुए भगवत् चिंतन में निमग्न रहना मन संबंधी तप कहा गया है।

स्पष्ट है कि तप शारीरिक परिश्रम की सात्विकता ही नहीं है, बल्कि तप निरन्तर जागरुकतापूर्वक करनेवाला ऐसा कर्मयज्ञ है जिसमें मन के चिंतन और वाणी से निकलने वाले प्रत्येक शब्द पर ध्यान रखना जरूरी है। जिस प्रकार, मन, वाणी और शरीर द्वारा संपन्न होने वाला हर कर्म अपने कर्मजाल में फँसाकर हमारे लिए जन्ममरण का कारण बनता है, उसी प्रकार मन, वाणी और शरीर द्वारा जागरुकता पूर्वक किया जाने वाला हर कर्म हमारा तप बनकर हमें शुद्ध कर उत्तरोत्तर भगवान की ओर ले जाता है।

इसलिए तप वह दैवी संपत्ति है जो तपन में समस्त मलिनताओं को भस्म कर जीवात्मा को परिशुद्ध स्वर्ण के समान निर्मल बनाता है।

(९)

सरलता का स्वरूप

(आर्जवम)

महर्षि रमण के निकट अनेक भक्त-साधक बैठे उनकी स्निग्ध मुस्कराहट का पान कर रहे थे। महर्षि के घुटने में दर्द था इसलिए वह पैर मोड़ कर नहीं बैठ पाते थे। ऐसी ही कोई व्याधि एक विदेशी महिला को भी थी जो वह पैर फैला कर बैठी थी। अकस्मात् उस महिला के पास आश्रम के एक प्रबंधक आए और महिला से कहा कि इस तरह पैर फैलाकर बैठना महर्षि का अपमान है, इसलिए आप घुटने मोड़कर बैठें। आखिर पीड़ा के बावजूद महिला ने घुटने मोड़कर बैठने की कोशिश की परन्तु उसे बहुत तकलीफ होने लगी। दर्द की वेदना उसके चेहरे पर उभर आयी। महर्षि की पारदर्शी नजरों से भला क्या छिपता? उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा और अपने घुटने में पीड़ा होने के बावजूद घुटने मोड़कर बैठने लगे। शिष्य, भक्तगण उनके समीप दौड़े आए। महर्षि यह क्या कर रहे हैं? महर्षि स्निग्ध मुस्कराहट के साथ उस महिला की ओर अंगुली से संकेत करतें हुए इतना ही कहा "वहाँ माँ भी तो दर्द से परेशान इसी तरह बैठी है।" प्रबंधकों ने तुरन्त भूल सुधारी। उक्त विदेशी महिला से सुविधापूर्वक पैर फैलाकर बैठने की प्रार्थना की। जब महर्षि ने देखा कि महिला आराम से बैठ गई है तब वह भी उसी स्निग्ध मुस्कान के साथ पैर फैलाकर बैठ गए।

महर्षि की यह सरलता अनेक लम्बे प्रवचनों से प्रभावशाली थी। सरलता (ऋजुता) का अर्थ सीधा होना, अन्दर-बाहर से एक रस दीखना है। सरलता का विपरीत अर्थ है टेढ़ापन। जो एकरस नहीं है, अन्दर-बाहर से समान नहीं है, जिसके मन, वचन और कर्म में समता नहीं है वह टेढ़ा है। सरलता सहज स्वभाव है, टेड़ापन श्रमसाध्य है। सरल हमें बनना नहीं है, हम मूलतः सरल तो हैं ही, जबकि टेढ़ा बनना होता है। टेढ़ा बनने के लिए प्रयास करना होता है, सरल बनने के लिए कुछ नहीं करना है, बस, प्रयत्न और परिश्रम छोड़ देने है तब जो स्वभाव हमारा बचा रहेगा वही सरलता है।

सरलता में मैत्री है, प्रेम है, जोड़ने की शक्ति है। यही जोड़ने की शक्ति व्यष्टि से लेकर समष्टि तक को जोड़ते हुए हमें परमेष्टि यानी परमात्मा तक से जोड़ देती है। इसलिए ऋजुता को भगवान ने दैवी संपत्ति की गुणसूची में स्थान दिया है।

सरलता संयोजक है तो टेढ़ापन भंजक है। सरलता जीवन को सरस बनाती है, जीवन को जगत से जोड़ती है जबकि टेढ़ापन जीवन और जगत में बिखराव लाता है, तोड़ता है इसलिए दुःख का कारण है। सरलता में दर्प, दंभ, श्रेष्ठता के अहम् आदि दुर्गुणों की

दीवारों का अभाव है जबकि टेढ़ापन के यही सब दुर्गुण आभूषण हैं। सरलता बल है और टेढ़ापन कमजोरी।

सरलता कठिन क्यों ?

प्रश्न है जब सरलता उपादेय है, जीवन को जगत से जोड़ने वाली है, और सहज स्वभाव है तो हम परिश्रमपूर्वक टेढ़ापन क्यों लादते हैं अपने व्यक्तित्व पर? इस कीचड़ को क्यों लपेटते हैं देह पर? इसलिए कि टेढ़ापन कमजोरियों को ढंकने के लिए वक्रता के पर्दे टांगने पड़ते हैं। जिस प्रकार किसी बिखरे अव्यवस्थित या अरुचिकर दृश्य को नजरों से ओझल करने के लिए पर्दा टांग दिया जाता है और उसके पीछे सब कुछ छिप जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति की हजारों दुर्बलताएं वक्रता के पीछे छिप जाती हैं। जो कमज़ोर होता है टेढ़ेपन का सहारा लेना उसकी विवशता होती है। उसे दर्प, दंभ और श्रेष्ठता के भाव के टेढ़े पर्दों से अपने व्यक्तित्व को ढंकना पड़ता है ताकि कोई उसकी कमजोरियों के निकट आ जाए और उसका मूल्य कम न हो जाए। लेकिन जो सबल है, सुन्दर है, गुण समृद्ध है, उसे वक्रता के पर्दे नहीं टांगने पड़ते, उसे वक्र होने का श्रम नहीं करना पड़ता क्योंकि उसकी ऋजुता के पार जो व्यक्तित्व है उसमें कमजोरी नहीं है, उसमें कुछ ऐसा नहीं है जिसे छिपाने की जरूरत है, वह सहज दर्शनीय है।

सरल होने के लिए कुछ करना नहीं होता किन्तु सरल होना कठिन इसलिए है क्योंकि निरावरण व्यक्तित्व से हमें स्वयं डर लगता है। जैसे कान्तिहीन रूखी-सूखी देह को प्रसाधनों से ढंकना- संवारना पड़ता है, उसी तरह गुणहीन आभाहीन व्यक्तित्व को दर्प, दंभ के अनेक आवरणों से ढकना सजाना पड़ता है।

परन्तु क्या यह ढकने वाला वक्रता का रास्ता अधिक उलझन भरा नहीं होता जाता? विकृत को ढकने से वह कुछ देर भले ही ढक जाए परन्तु उसकी नियति सड़ना ही है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि दुर्गुणों को निकाल फेंको और सरल हो जाओ। निरहंकार और सरल ही भगवान को प्रिय है।

ज्ञानी को दिखावे की जरूरत नहीं होतीः

एक राजा को एक सुयोग्य राज पुरोहित की जरूरत थी। उसने घोषणा कराई कि अपने पांडित्य के प्रमाणपत्र लेकर पंडितजन उपस्थित हों और अपनी विद्वता का प्रत्यक्ष प्रमाणपत्र दें। परीक्षा में खरे उतरने वाले पंडित को राजपुरोहित नियुक्त किया जाएगा। निश्चित दिन अनेक पंडित पहुंचे। महाराज प्रधान अमात्य के साथ महल के विशेष कक्ष में बैठे एक-एक पंडित से चर्चा करते जाते। जैसे ही राजकर्मचारी महाराज को सूचित करता कि अमुक विख्यात पंडित पधारने वाले हैं, महाराज स्वयं उठकर द्वार तक जाते और पंडित को पूर्ण सम्मान के साथ अंदर ले जाकर बैठाते। लेकिन किसी को द्वार तक वापस न छोड़ने

जाते। अंत में बारी आई एक अनाम पंडित की। राजसेवक ने कहा, ''राजन् एक पंडित और शेष रहे हैं, न तो उनकी कुल परम्परा है, न लोकख्याति, न वह कोई प्रमाणपत्र ही लाए हैं और न किसी का संस्तुति (सिफारिश) पत्र। वस्त्र मैले-कुचैले और फटे हुए हैं परन्तु स्वयं को राजपुरोहित बनने का दावेदार अवश्य कहते हैं।''

सेवक ने प्रश्न-दृष्टि से राजा की ओर देखा जिसमें निहितार्थ था कि इस पंडित को उपस्थित किया जाए या वापस लौटा दिया जाए?

राजा ने एक क्षण सोचा और फिर अनमने भाव से पंडित को ले आने की अनुमति दे दी किंतु महाराज स्वयं द्वार तक पंडित को लेने नहीं गए।

पंडित आए तो उनसे विशद चर्चा हुई। महाराज उनके पांडित्य से विस्मय-विमुग्ध रह गए। सारे राज्य में ऐसा पंडित नहीं था। अंत में महाराज ने उन्हें स्वयं जाकर द्वार तक विदा किया और शुभ मुहूर्त में राजपुरोहित पद ग्रहण करने की याचना की।

समारोह की समाप्ति के पश्चात राजरानी ने पूछा'हे राजन, कृपया मेरी एक जिज्ञासा का समाधान कीजिए। आप सुंदर वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित ख्यातिपूर्ण पंडितों के स्वागतार्थ उन्हें द्वार तक लेने गए लेकिन विदाई के समय उन्हें द्वार तक छोड़ने नहीं गए। इसके विपरीत आज साधारण वस्त्र वाले अनाम ख्यातिहीन पंडित को लेने द्वार तक नहीं गए पर विदाई के समय केवल उन्हें ही द्वार तक छोड़ने गए। आपके इस व्यवहार का क्या रहस्य है?''

विद्वान राजा मुस्कराये और बोले, देवि! बाह्य उपाधियां, श्रम से अर्जित ख्याति, सुन्दर वस्त्राभूषण व्यक्ति के गुण होने का भ्रम उत्पन्न कर सकती हैं किन्तु यह जरूरी नहीं है कि ऐसे व्यक्ति में गुण भी हों। ये बाह्य आवरण गुणहीनता को ढकने के वक्र साधन भी हो सकते हैं। ये ख्यातिनाम पंडित ऐसे ही थे जिनमें, राज्योचित गुणों का वैभव मुझे नहीं दिखा था। इसलिए मैं इन्हें द्वार तक लेने तो गया परन्तु छोड़ने नहीं गया। किन्तु आडम्बरहीन, सामान्य वेशधारी, ख्यातिहीन पंडित महान गुण सागर थे। उनका हृदय राज्योचित गुणों के वैभव से भरा था इसलिए मैं उन्हें द्वार तक छोड़ने गया।'' राजा ने स्नेह स्वर में रानी को समझाया, ''देवि! गुणों के सागर को किसी आवरण की जरूरत नहीं होती। उसकी ऋजुता के पीछे उसके पारदर्शी गुण उसे आलोकित करते रहते हैं।'' भले ही सरलता के मूल्यांकन में देर लगे किन्तु उसके पीछे स्थायित्व और बल होता है जब कि अपनी चमक-दमक से वक्रता शीघ्र प्रभावित कर लेती है परन्तु उसमें न तो स्थायित्व होता है और न शक्ति।

व्यक्तित्व को पारदर्शी बनाइएः

ऋजुता होगी तो शत्रुता हो ही नहीं सकती। शत्रुता के पहले कुटिलता जरूरी है। गोपनीयता तभी होगी जब कुटिलता होगी। पारदर्शी व्यक्तित्व में सरलता होगी, भोलापन होगा, तब शत्रुता कैसे हो सकती है?

सरलता में अपनी बात मनवाने का आग्रह नहीं रहता बल्कि आत्मसंशोधन और भूल सुधार का ही आग्रह रहता है। फिर सरलता इतनी टेढ़ी चीज क्यों हो गई है? क्योंकि हम टेढ़े हो गए हैं। यदि हम सरल हो जाएंगे तो सरलता हमारे मूल स्वभाव के रूप में स्वयं ही प्रकट हो जाएगी।

इसलिए सरल बनने का प्रयत्न नहीं करना है, सरलता का आडम्बर नहीं करना है, बस वक्रता को छोड़ते जाना है, सरलता स्वयं बची रहेगी।

हमारे कुछ बनने, कुछ हो जाने का भाव ही तो हमें छोटा बनाए रखता है जब कि कुछ भी न रह जाने के बाद तो हम 'वही' रह जाते हैं 'शुद्ध चेतन'। इस प्रकार ऋजुता हमें प्रभु से जोड़ती है। शास्त्रकार ने भी कहा है, 'सन्धते सरला सुई, वक्रा छेदाय कर्तरी'' अर्थात सुई सीधी है इसलिए वह जोड़ती है, जबकि कैंची टेढ़ी है इसलिए वह काटती है।

सरलता का अर्थ भोले बनकर ठगे जाना नहीं है। सरलता में जागरुकता का अभाव नहीं होता। सरलता एक प्रकाश पुंज है। समृद्ध गुणों के भंडार का नाम है सरलता। इसमें पारदर्शी शक्ति होती है। ऐसा व्यक्ति ठगा नहीं जाता। ठगा वह जाता है जो ठगने की प्रकृति या मानसिकता रखता है। सरलता आवरण रहित, मलरहित ज्ञान की साधना है। इसलिए सरल व्यक्ति सहज ही जागरूक रहता है। सरलता बुद्धि को प्रज्ञा बना देती है जबकि वक्रता बुद्धि में भ्रम पैदा करती है इसलिए ठगे जाने के खतरे वक्रता में ही हैं, सरलता में नहीं। सरलता मूर्खता का विपरीत भाव नहीं है। सरलता तो ज्ञान का विस्फोट है- शुद्ध सात्विक ज्ञान का विस्फोट सरलता में ही होता है। ऋजुता में शुद्धि होती है और शुद्धि में ही धर्म टिकता है। सरल बच्चे को सभी प्रेम करते हैं, बड़े होने पर जैसे-जैसे संदेह, अज्ञान, माया और वासना के आवरण चढ़ते जाते हैं वह संसार का स्नेह खोता जाता है क्योंकि तब वह बालक नहीं रह जाता, सरल नहीं रह जाता, दुर्बोध हो जाता है।

हम दूसरों को उनके स्तर पर जानने की कोशिश नहीं करते इसलिए स्वयं भी दुर्बोध बन जाते हैं।

सरल बनें कैसे?

आखिर सरल बनें कैसे? सरलता ही तो कठिन है। कैसी विचित्र बात है कि सरल बनना कठिन है। इसका कारण है कि जटिलता में प्रदर्शन है और अहम् अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रदर्शन चाहता है। इसलिए व्यक्ति जटिलता को चुनता है। पहाड़ों पर चढ़ता है, बने हुए रेकार्डों को तोड़ता है और फिर गर्व की मुस्कान फेंकता है कि उसने सबके रिकार्ड तोड़े हैं, फिर वह रिकार्ड पर्वत शिखर आरोहण में टूटे या अधिक चीखने- चिल्लाते हैं। किसी भी तरह व्यक्ति का अहम् प्रतिष्ठित होना चाहिए और विडम्बना यह है कि हम अपनी भावी पीड़ियों को रेकार्ड तोड़ने की ही प्रेरणा भी देते हैं। जटिल बनने की प्रेरणा देते हैं।

जो जटिलताएं हम नहीं बना सके, वे अपने बच्चों में मूर्त करके देखना चाहते हैं इसलिए कहते हैं कि कुछ विशेष करो जो किसी ने नहीं किया हो ताकि तुम्हारा और हमारा नाम हो।

एक नट रस्सी पर चलता है। यह जटिलता है। सब उसे उत्सुकता से देखते हैं। पर जानते हैं कि यह अस्तित्वहीन क्रिया है, अभ्यास का फल मात्र है, किन्तु ऐसी ही जटिलताओं के द्वारा विशिष्टता का प्रदर्शन क्या किसी सार्थकता का बोधक है? परन्तु यह संसार है। अहम् को तुष्ट करने के लिए व्यक्ति निरर्थक जटिलताओं के पीछे भागता है जबकि ऋजुता के पीछे स्वयं भगवान है, किन्तु व्यक्ति ऋजुता को खोकर जटिल बनता है क्योंकि इससे अहम् संतुष्ट होता है, और यह अहम् ही प्रभुमिलन में बाधक है। इसलिए भगवान ने गीता में ऋजुता का संदेश दिया है। सरलता को दैवी संपत्ति कहा है। सरलता उस अहंकार को गलाती है जिसके पीछे भगवान है।

उल्लासपूर्ण सुख का रहस्यः

सरल होने की साधना कठिन तभी तक है जब तक हम जटिलता की ओर बढ़ रहे हैं। जटिलता की ओर बढ़ना छोड़ दें, सरल को चुनें तो सरल के लिए कोई साधना नहीं करनी पड़ेगी। जटिलता में साहस नहीं है, सरलता में ही साहस है। जटिलता में साहस इसलिए नहीं है कि वह व्यक्ति का स्वभाव बन चुका है, झूठ बोलने, हिंसा करने, धोखा देने में साहस नहीं चाहिए क्योंकि ये स्वभाव बन गए हैं। इसके विपरीत सत्य बोलने, ईमानदार होने, प्रमाणिक होने में साहस और संकल्प चाहिए क्योंकि यह धारा के विपरीत चलना है। यानी सरल होना कठिन हो गया है। इसलिए आज जब कोई व्यक्ति किसी के हजारों रुपयों से भरी अटैची कहीं पाकर उसे लौटा देता है तो वह समाचार बन जाता है और उसकी ईमानदारी अभिनंदनीय बन जाती है जबकि यही सरलता है, इसमें कुछ करना नहीं है बस जैसे है वैसा ही रह जाना है।

सरल बनना जटिल अवश्य है क्योंकि प्रयास नहीं है लेकिन जब हम सरल बनने का अभ्यास कर लेते हैं तो यह बड़ा आनन्ददायक हो जाता है, तब सरल होने में जो सुख है, वह उल्लास से भर देता है। तब जटिल होने में बड़ा कष्ट होता है। तब अपने विरुद्ध असत्य बोलने, हिंसा किए जाने, कटु बोलने जैसी बातों के प्रतिकार में भी यह जटिलता सध नहीं पाती। सरलता जीवन का वरदान बन जाती है, जीवन का अभिन्न अंग बन जाती है।

(१०)

अहिंसा परमो धर्मः

(अहिंसा)

दैवी सम्पत्ति का दसवाँ गुण है अहिंसा। हिंसा के अभाव का अर्थ ही अहिंसा है। हिंसा अर्थात् मारना, पीड़ित करना, कष्ट पहुँचाना। इसके विपरीत किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाना अहिंसा है।

विचारणीय है कि नकारात्मक संकल्पना को दैवी गुण क्यों माना गया है वह इसलिए कि दिव्यता तो गुणातीत है और वह प्राप्त होती है विकार रहित होने से। सद्‌गुण स्वयं में बंधन है किन्तु वे विकारों के उन्मूलन के लिए उस कांटे का काम करते हैं जिससे पैर में गड़े दूसरे कांटे को निकाला जाता है और फिर दोनों कांटों को ही फेंक दिया जाता है।

अब मनोविकारों ने आकर डेरा जमा लिया है। जीवन को बंधन में डाल दिया है अतः उन्हें दूर करने के लिये विधेयात्मक और निषेधात्मक दोनों प्रकार के गुणरूपी काँटों की जरूरत है।

अहिंसा अर्थात हिंसा का अभाव ऐसा ही एक निषेधात्मक गुण है अन्यथा दिव्य जीवन में तो किसी हिंसा की कल्पना ही नहीं की जा सकती, तब वहां अहिंसा की जरूरत ही क्यों होगी?

हम हिंसा के मूल स्रोत को खोजें। इसकी जड़े कहां हैं? यह कहां से जन्म लेती हैं? कैसे पोषित होती हैं? इसे समझें, तब ही इसका उन्मूलन कर सकेंगे। वृत्ति के कारण को समझे बिना प्रवचन, निर्देशन अथवा कोरे नैतिक तर्कों से कभी किसी वृत्ति से छुटकारा नहीं मिलता। यदि इस प्रकार इन विकारों से छुटकारा मिला करता तो अब तक संसार के सभी दुर्गुणों से छुटकारा मिल गया होता क्योकिं सारे धर्म, पंथों में इन दुर्गुणों की निंदा की गई है, हिंसा की भी निंदा की गई है। शिशु को प्रारंभ से अहिंसक होने के नैतिक उपदेश दिए जाते हैं- ''किसी को पीड़ित मत करो'', ''मत सताओ'', ''बुरा मत बोलो'' आदि। कायिक, वाचिक और मानसिक हिंसा के प्रति सचेत रहना सिखाया जाता है। किन्तु हम देखते हैं कि हिंसा बढ़ती ही जा रही है, व्यक्तिगत स्तर ही नहीं सामुदायिक स्तर पर, सामाजिक स्तर पर तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर भयावह हिंसा का ताण्डव हम देख रहे हैं। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी हिंसा की खोज उस मानव-समाज ने ही की है जिसमें प्रखर बुद्धि और मन है और श्रेष्ठतर प्राणी होने का दंभ भरता है। हिंसक कहे जाने वाले पशुओं में ऐसी

भयानक और अकारण हिंसा नहीं है। मानव ने तो मनोरंजन के लिए भी तरह-तरह की हिंसा का आविष्कार किया है।

प्रश्न है, इसका जन्म स्थान कहां हैं ? और मानव में इसका इतना विस्तार क्यों हुआ है ? हिंसक पशुओं से भी अधिक हिंसा का जहर मानव मन में कहां से आ गया ? हिंसा का मूल स्रोत है, राग-द्वेष और मानव की अनियंत्रित वासनाएं। राग और द्वेष का मूल स्रोत भी केवल वासनाएं ही हैं। वासनाएं अर्थात पदार्थ जगत या प्रकृति से सुख पाने की कामनाएं। सुख और परितृप्ति की तलाश प्राणीमात्र का स्वभाव है। सुख के लिए ही उसकी सारी यात्रा है और इस सुख यात्रा परितृप्ति की कामना जितनी अधिक बढ़ती है, उतनी ही मात्रा में प्रवृति से संघर्ष बढ़ता है, दूसरों से छीनने, हरण करने की इच्छा बढ़ती है। पशुओं की वासनाएं सीमित हैं, वे आहार, निद्रा और काम तक सीमित हैं। इनकी पूर्ति के लिए उसे सीमित पदार्थ ही अपेक्षित हैं। अतः उसकी हिंसा की आवश्यकता भी सीमित है। मनुष्य मननशील है। इसने परम आनंद की प्राप्ति के लिए एक ओर वासनाओं को बाधक समझ कर क्रमशः इनका परित्याग किया है तो दूसरी ओर इस चिंतन शक्ति के ही कारण इस अंधे इंद्रिय सुख की आधिकाधिक प्राप्ति के लिए नए-नए उपाय खोजे हैं। इन्हें उत्तेजित किया है और असीम रूप से इंद्रिय भोगों के साधनों का निर्माण कर इन्हें अनन्त विस्तार दिया है।

एक ओर इन्द्रिय भोगों की निरर्थकता का बोध समझ कर दिव्य मानव ने पदार्थ मात्र का परित्याग किया, मात्र कोपीन धारण कर संतोष किया तो दूसरी ओर इन्द्रिय भोगों को ही अंतिम साध्य मान उसने इनका विस्तार किया कि विश्व का समस्त पदार्थ, जगत् की सारी भोग्य वस्तुएं भी उसे अपने लिए कम जान पड़ी और उसमें एकाधिकार की प्रकृति उत्पन्न हुई इसी एकाधिकार की प्रकृति ने ही हिंसा का विस्तार किया।

सत्ता हो या पद, धन हो या कीर्ति, इन सब कामनाओं के विस्तार से ही हिंसा का अनियंत्रित विस्तार हुआ है। इसलिए हिंसा कोई ऐसा विकार नहीं है जिसकी स्वयं में कोई सत्ता हो, जिसका स्वमेव कोई स्वतंत्र अस्तित्व हो, यह तो अनियंत्रित वासनाओं की पूर्ति में व्यवधान की प्रतिक्रिया है।

अतः हिंसा से निस्तार का उपाय है, वासनाओं से मुक्ति, यानी राग और द्वेष का उन्मूलन। वासनाएं ही वह मूल बीज है जो हिंसक प्रवृत्ति को जन्म देती है, वासनाओं के विसर्जन बिना अहिंसा की प्रतिष्ठापना असंभव है।

वासना विहीन अन्तःकरण में केवल प्रेम के सुमन खिलते हैं, वहां प्रेम एक झरने की तरह अविराम बहता है, और प्रेम में कोई विभेद नहीं, विषमता नहीं, यह तो एक सरिता की तरह सबके लिए समान रूप से बहता है। प्रेम केवल देना जानता है, लेना नहीं। और जहां केवल देने का भाव है वहां हिंसा का तो कोई प्रश्न ही नहीं, वहां अहिंसा व्रत का भी कोई औचित्य नहीं रह जाता क्योंकि अहिंसा तो एक प्रतिरोधात्मक हथियार है, हिंसक वृत्तियों से

लड़ने के लिए। जब वासनाओं का स्रोत ही सूख गया हो, तब हिंसा का जन्म कहां से होगा? तब अहिंसा की जरूरत भी कहां रह जाएगी?

अहिंसा की जरूरत तब तक है जब कि हम मनोविकारों से घिरे हैं, जब तक अन्तःकरण में समता और प्रेम की बाढ़ नहीं आती, वासनाओं के दुर्ग नहीं हटते, तब तक हिंसा का स्रोत नहीं सूखता, तब तक अहिंसा की जरूरत बनी रहेगी क्योंकि युद्ध की जरूरत के लिए ही अहिंसा की जरूरत है।

एक सवाल स्वाभाविक है। अहिंसा की जरूरत ही हमें क्यों है? हम हिंसा के उस स्रोत को ही क्यों न सुखा डालें, जिसके विरुद्ध लड़ने के लिए हमें इस शस्त्र की जरूरत पड़ती है। प्रश्न जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही सार्थक है।

जन्म-जन्मांतरों से हमारे इस मन में वासनाओं के जंगल पनपे-बढ़े है। ये असंशय वन इतने घने हैं कि सरलता से काटे नही कटते। इसलिए जब तक वासनाओं का उन्मूलन न हो, संघर्ष जारी रहेगा, मन में राग-द्वेष बना रहेगा। हिंसा का जनक विद्यमान रहेगा तो अहिंसा की जरूरत भी रहेगी। इसी कारण श्रीमद् भगवद् गीता में अहिंसा को दैवी सम्पत्ति से विभूषित किया गया है।

अहिंसा एक जागरुकता है, दूसरों को कष्ट न पहुंचाने के लिए, पर यह एक विचित्र चक्र का निर्माण करती है। अहिंसा का भाव स्थिर होगा तो मन, वचन, कर्म से किसी को पीड़ित करना असंभव होगा। इसके कारण दूसरों से छीनने की, उनके शोषण की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगेगा। वासनाएं स्वयमेव नियंत्रित होंगी और वासनाएं क्षीण होंगी तो चित्त शद्धि का प्रसाद मिलेगा। चित्त शुद्धि ही भगवद् दर्शन का द्वार है। इसीलिए अहिंसा को परम धर्म कहा गया है- ''अहिंसा परमो धर्मः'

परन्तु हिंसा की प्रवृत्ति है बड़ी अद्‌भुत। यह मानव मन में इतनी गहरी जड़े समाए है कि पता भी नहीं चलता कि यह हिंसा है। हिंसा के प्रति यह अज्ञान इसे पोषण देता रहता है। शारीरिक हिंसा तो बड़ी स्थूल हिंसा है। इससे घातक मारक हिंसा है, वाणी की । इतिहास साक्षी है कि कटु शब्दों के प्रहार के कारण ही बड़े-बड़े महायुद्ध हुए हैं। वाणी प्रहार के कारण ही हिंसा की प्रेरणा का जन्म होता है। समाजों, संप्रदायों और राष्ट्रों के संघर्ष होते हैं।

न लड़ते कुरुक्षेत्र में, कुरु पाण्डव के वीर
नहीं द्रौपदी बींधती, कटुक बचन के तीर
नेह, हिया जो काट दे, अस नाहीं असि धार,
जैसी काटै जीभ की, लोचदार तलवार

इससे भी अधिक सुक्ष्म पर मारक हिंसा मन में जन्म लेती है। मन में उत्पन्न विचार में प्रबल शक्ति होती है। मन में उत्पन्न विचार ही समस्त क्रियाओं के प्रेरक हैं। सृष्टि का

यह विराट सृजन–सौन्दर्य एवं विध्वंस मन के विचार–मंथन का ही खेल है। मानसिक चिंतन क्रिया में परिवर्तित न भी हो तो भी चिंतन के स्पंदन संपूर्ण विश्व में प्रवाहित हो जाते हैं। मन में किसी के प्रति हानि के विचार, उसका अशुभ चाहने के विचार स्पंदनों द्वारा उक्त व्यक्ति तक पहुंच कर उसे हानि पहुंचाते हैं, विक्षुब्ध करते हैं और पुनः वहां से प्रत्यावर्तित होकर ऐसे हिंसक विचार भेजने वाले के पास लौट कर उसे भी आहत करते हैं। इस प्रकार एक अज्ञात, अनचाहा मनोयुद्ध शुरू हो जाता है। अज्ञानजन्य यह विचार हिंसा सबसे अधिक घातक है।

विचार का यही नियम यानी प्रत्यावर्तित होकर लौटने का नियम उतना ही कल्याणकारी भी बन सकता है यदि हिंसा के बजाए मैत्री, प्रेम और सौहार्द्र के विचार भेजे जाएं। मैत्री के विचार दूसरों के मन में मैत्री जगाएंगे और फिर वे उधर से वापस लौटकर मैत्री के दर्ग को मजबूत करेंगे। लेकिन हम कैसे अभागे हैं कि अपने चिंतन के अनुभव से स्वयं को ही घायल करते रहते हैं। अपने ऊपर ही आक्रमण करते रहते हैं।

अहिंसा का चरम साधना से अपने अन्तःकरण में से दूसरोंके प्रति वैर का पूर्णतः त्याग हो जाता है, फलतः समस्त प्राणियों के मन में अहिंसा–साधक के प्रति भी वैर का तिरोभाव हो जाता है। महर्षि पतंजलि ने योगशास्त्र में कहा है ''अहिंसा प्रतिष्ठायां वैर त्यागः''

अहिंसा व्रती ऋषियों के आश्रमों में इसी कारण सिंह और मृग, सर्प और नेवले जैसे शत्रु स्वभाव के वनचर मित्रभाव से रहते थे और ऋषियों की तपोभूमि में समस्त वैर त्याग अहिंसक बने रहते थे।

(११)

सत्य का सौरभ-1

(सत्यम्)

सत्य सौरभ है जीवन का...

सत्य सौरभ है, जीवन है। यह सुरभि - सुगंध महका देता है जीवन-उपवन को। जहाँ सत्य की साधना हुई कि इस सुरभि के निकट असत्य फटक भी नहीं पाता। चरम सत्य की साधना से सत्य की ऐसी सिद्धि होती है कि चित्तदर्पण पर असत्य की परछायी भी नहीं पड़ पाती। असत्य स्वयं दूर भाग जाता है। तब यह शिकायत नहीं रह जाती कि लोक व्यवहार में असत्य का ही बोलबाला है।

सूर्य अस्त हो रहा था। साँझ घिर आई थी। महर्षि रमण के सानिध्य में बैठे साधक मौन में डूबे हुए थे। महर्षि का मौन दर्शन ही उनके लिए विलक्षण प्रेरणा थी। बीच में कहीं से छोटी-सी जिज्ञासा उभरती तो महर्षि की मधुर मुस्कान से भीगा छोटा सा उत्तर प्रश्नभूमि पर समाधान की वर्षा और साधक तृप्त हो जाता है।

एक साधक के मन में प्रश्न घुमड़ रहा था। सूत्र नहीं मिल रहा था उसे, कैसे पूछें, दिखने में यह सरल-सा प्रश्न,किन्तु जीवन को जटिल गुत्थी को समेटे हुए। महर्षि तो थे अन्तर्दृष्टा, मौन प्रश्न को ही पढ़ लिया। अंगुली निर्देश किया, ''पूछो,

क्या पूछना चाहते हो?'' महर्षि की स्निग्ध मुस्कान ही ऐसी होती है कि सारे संकोच ढह जाते हैं। महर्षि ने स्पष्ट किया, ''वत्स, अविद्या का जानना ही असत्य है और उसका उच्छेदन कर हमारा जो मूल स्वरूप बच रहता है वही सत्य है।''

सत्य को अच्छादित मत करो।

साधक ने पूछा, ''सत्य को कैसे समझा जाए ऋषिवर?'' महर्षि के अधरों पर प्रेम तरल माधुर्य उभर आया, बोले- ''तुम्हें कुछ नहीं करना है वत्स। बस, उसे भूल जाना है जो तुम जानते हो। तब फिर जो बच रहेगा वही होगा।''

सत्य को आच्छादित मत करोः

सत्य स्वयं साध्य है, असत्य श्रम साध्य, लेकिन हम बड़े यत्न से स्वयं को ढकते चले जाते हैं और तब गढ़ते हैं असत्य की प्रतिमा। एक शिशु को देखें। वह सत्य के अधिक

निकट है। सत्य उसका स्वभाव है, असत्य को ग्रहण करने में उसे बड़ा श्रम करना पड़ता है परन्तु हम उसे बड़े श्रम से असत्य सिखाते हैं। दुनियादार बनाने के लिए असत्य सिखाना जरूरी समझते हैं और तब परत-दर परत उसके अंदर प्रकाशित सूर्य ढकता चला जाता है।

बालक शत्रु-मित्र में भेद नहीं जानता। वह दोनों को देखकर मुस्कान देता है, दोनों के अंक (गोद) में आने के लिए बाँहें फैला देता है, परन्तु हम उसे क्या सिखाते हैं? हम बालक के मन में कुछ इस प्रकार असत्य का लेप भरते हैं। बालक चाचा की गोद में खेलता है। उनसे अभिन्नता मानता है। चाचा के प्रस्थान करते ही पिता समझाते हैं, ''बेटा, यह तेरे चाचा हैं न, यह बड़े स्वार्थी हैं, उनसे जितना दूर रह सको, उतना ही अच्छा है।''

बालक बेचारा हतप्रभ रह जाता है. सत्य क्या है आखिर चाचा-चाची सामने होते हैं तब पिताजी उनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं और पीछे इतनी बुराई। ये हैं वे संस्कार असत्य के, जिनके द्वारा हम बालक के कोमल मन पर असत्य विष की परतें चढ़ाते जाते हैं।

बालक जाति-पाँति नहीं जानता, उसके लिए सारे वर्ण और सारे आकार एक हैं, एक ही ईश्वर के स्वरूप। यह सबसे समान प्रेम पाने के लिए ललकता है। परन्तु हम उसे बहकाते हैं, देखो वह नीच है, छोटी जाति का, उसके साथ मत बैठा करो वे छोटे वर्गों के बच्चे हैं बेटे! उनके साथ मत खेला करो।''

बालक दरिद्र-श्रीसंपन्न, धर्म-संप्रदाय, कुलीन-अकुलीन, स्पृश्य अस्पृश्य में भेद नहीं देखता, सबके साथ घुलना-मिलना, खेलना-बोलना चाहता है परन्तु हम उसके सम्मुख भेदों की असंख्य दीवारें खड़ी कर देते हैं। निषेध और वर्जनाओं की बाधाएँ खड़ी करते हैं। हम उसकी चेतना पर अनेक असत्य बलात् थोपते चले जाते हैं और फिर उसे उपदेश देते हैं, सत्य बोलो, ''सत्य का आचरण करो, यही धर्म है।''

वेद ने कितना सार्थक उपदेश दिया है-

हृदयेन सत्यम्। (यजु. 18, 85) अर्थात् परमात्मा ने हृदय से सत्य को जन्म दिया है। किन्तु, हम हृदय से जन्मे सत्य पर असत्य की परतें चढ़ाने का निंदनीय कर्म करते रहते हैं।

हर व्यक्ति कहता है मुझे असत्य से घोर घृणा है। बच्चों, मित्रों और सहयोगियों, सबसे कहता है, बस मैं असत्य को ही सहन नहीं कर सकता। मुझसे सत्य छिपाया नहीं जाना चाहिए। किन्तु पति-पत्नी से, मित्र-मित्र से, सहयोगी अधिकारी से सत्य को छिपाता है। फिर चाहे उसे नीति का नाम दिया जाए अथवा गोपनीयता का। हमें जीवन और जगत में चारों और असत्य का सामना करना ही पड़ता है। व्यथित होकर हम कह उठते हैं ''ओह! कितना असत्य व्यवहार बढ़ गया है। हमें असत्य से कष्ट होता है किन्तु इसे सहना ही पड़ता है। क्यों? क्योंकि यही प्रकृति का नियम है बिंब - प्रतिबिंब सिद्धांत। हम जो व्यवहार करेंगे, हमें इस जगत में ठीक वहीं व्यवहार मिलेगा।

हम पग-पग पर असत्य की व्यवहार करके असत्य की अपेक्षा करेंगे तो वह कैसे

मिलेगा?

यह समस्या अनादि है। असत्य हमारी रगों में इतना गहरा पैठ गया है कि बड़े-बड़े तत्व -चिंतक भी दोहरी मान्यताएं ढोते रहते हैं और दोहरापन क्या सत्य हो सकता है? सत्य तो अखण्ड और अविभाज्य है।

असत्य से सामना तभी तक होता है जब तक मन का दर्पण सत्य के जल से शुद्ध नहीं हुआ है। और जब सत्य साधना के जल से यह दर्पण शुद्ध हो जाता है तब इसमें बिंब कहीं ठहरता ही नहीं।

कैसे हो सत्य की साधना? सत्य का सौरभ जीवन का अंग कैसे बने? इतने अमूल्य रत्न को पाने के लिए हमें कुछ मूल्य तो चुकाना ही होगा। और फिर वह मूल्य अधिक भी कहां है? असत्य की साधना में हमारा सारा जीवन बीत जाता है और तब भी शून्य ही रहता है हमारे पास, तब फिर सत्य-सौरभ के संघर्ष का मूल्य क्यों न हो?

सत्य का मूलः

वह मूल्य चुकाया था हमारे ऋषि पुत्रों ने। एक ज्वलंत उदाहरण स्मरण करें। चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय की बात है। वह ज्ञान की खोज में भारत आया था। गुरुकुलों और आश्रमों में गया, सत्य की अनवरत खोज की। जब चीन वापस लौटने लगा तो कुलगुरु से निवेदन कर कुछ योग्य शिष्यों को साथ भेजने का आग्रह किया ताकि वह चीन की भूमि पर इस अमर ज्ञान के बीज बिखेर सकें। आचार्य ने दस बारह शिष्यों को जाने की अनुमति दी।

उसने भारतीय वाङ्मय की कुछ पांडुलिपियां भी प्राप्त की। जिनमें साधना का सार था। यात्रा मार्ग में नौका द्वारा एकनदी पार करनी पड़ी। नौका में भार अधिक था। नाविक ने कहा, कुछ पुस्तकें फेंक दी जाएं तो भार हल्का हो अन्यथा नाव डूब सकती है। ह्वेनसांग ने विवश हो कुछ पुस्तकें उठाई और नदी के प्रवाह में फेंकने को उद्य ही हुआ था कि गुरु के शिष्य ने हाथ पकड़ लिया और बोला, "ठहरो यात्री! ये स्याही से लिखे काले-पीले पन्ने मात्र नहीं हैं। ऋषियों के जीवन का तप छिपा है इन पृष्ठों में। इन्हें नदी में मत फेंको। इन पर तो हमारे जैसे सैकड़ों जीवन भी बलि हो जाएं तो कम होंगे।

यह कहते हुए उस शिष्य ने नदी प्रवाह में कूद कर जल- समाधि ले ली। एक के बाद एक शिष्य नाव का भार हल्का करने के लिए नदी में छलांग लगाने लगे। यात्री हतप्रभ था, नाविक के नेत्र विस्फारित थे, सत्य के लिए प्राणोत्सर्ग का ऐसा महोत्सव भला कहां हुआ है? आज तक। यह भारत की धरती पर ही संभव था। सहसा क्रमबद्ध नदी में छलांग लगाने वाले एक शिष्य का हाथ नाविक ने पकड़ लिया, और बोला, "बहुत हुआ बस, भार

आवश्यकता से अधिक ही कम हो चुका, तब और प्राणोत्सर्ग की जरूरत नहीं''

नाविक का कंठ रुद्ध हो गया था। यात्री की आंखों में आँसुओं की बरसात लगी थी। उसने इस देश की धरती को प्रणाम किया जहाँ सत्य की प्राणों से पूजा होती है।

इस प्रकार विश्व में पहुंच सका भारत के सत्य का सूर्य। इस प्रकार के प्राणोत्सर्ग ने बनाया भारत को जगतगुरु। सत्य के लिए प्राणोत्सर्ग जैसे त्याग की तैयारी से जीवन महक उठता है। फूल खिल उठते हैं जीवन के आंगन में।

एक और साधनः

सत्य की साधना एक जापानी संत ने भी की थी। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा जाओ देश भर में, धन संग्रह करो, बुद्ध के संदेशों का संग्रह प्रकाशित करना है। लोक आराध्य संत के आदेश मात्र की देर थी। थोड़े ही समय में पर्याप्त धन एकत्र हो गया। इसी बीच जापान में महामारी फैली। लोग तड़प-तड़प कर मरने लगे। संत ने अपने शिष्यों से कहा, ''जाओ, इस सारे धन से पीड़ितों की सेवा करो, उनके दुःख दूर करो।''

शिष्यों ने ऐसा ही किया। दूसरी बार फिर बुद्ध के संदेशों के लिए धन संग्रह किया गया। संत के प्रति जन समुदाय में अपार श्रद्धा थी इसलिए किसी ने प्रश्न नहीं किया कि धन का क्या हुआ जो इससे पूर्व एकत्र किया गया था।

लेकिन इस बार जापान में विनाशकारी भूकम्प आया। अपार-जन धन की हानि हुई। संत ने आदेश दिया, ''इस धन से भूकम्प पीड़ितों की मदद करो।'' शिष्यों ने फिर आदेश का पालन किया, सारा धन खर्च हो गया।

अब फिर तीसरी बार धन संग्रह किया गया। लोक चकित हुए कि तीसरी बार उसी कार्य के लिए धन संग्रह किया जा रहा है, रहस्य क्या है ? पर श्रद्धावश मौन ही रहे।

इस बार जापान में अकाल पड़ा। संत ने फिर सारा धन जनसेवा में लगा देने का आदेश दिया। चौथी बार फिर धन संग्रह करना पड़ा। संत के प्रति श्रद्धा विभोर लोगों ने फिर धन दिया क्योंकि सत्य के साधक पर अविश्वास तो हो ही नहीं सकता था।

इस बार बुद्ध के संदेशों का प्रकाशन हुआ। बहुत बड़े समारोह में संत ने इस ग्रंथ का विमोचन किया और उत्सुक जनसमुदाय के सम्मुख घोषणा करते हुए कहा, बुद्ध के संदेशों का यह चौथा संस्करण आपके सम्मुख प्रस्तुत है।'' सबकी आंखें आश्चर्य में विस्फारित थीं। प्रश्न था, तीन संस्करण कहां हैं इससे पूर्व के। हम तो यह पहला संस्करण ही देख रहे हैं।

संत ने जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा, पहला संस्करण महामारी से त्रस्त लोगों की साक्षात सेवा थी। दूसरा संस्करण भूकम्प पीड़ितों की सेवा की। और तीसरा संस्करण था

अकाल से ग्रस्त बंधुओं की सहायता। यह चतुर्थ संस्करण आपके सामने है।

सचमुच सत्य का कितना साकार स्वरूप था यह। बुद्ध के उपदेश आखिर किस लिए थे, मानवता के कल्याण के लिए ही तो थे न! उनकी इससे बढ़कर क्या सार्थकता हो सकती थी? उनके उपदेशों के अनुसार पहले पीड़ित मानवता की रक्षा की जाए। अन्यथा सत्य के उपदेशों की सार्थकता ही क्या रहती है? कोरे पुस्तकीय पृष्ठ किस काम के थे।

सत्य की खोज, सत्य का अनुगमन ऐसा ही सत्यधर्मा होता है। सत्य के लिए इतनी जागरूकता और उत्सर्ग भाव सत्य को प्रतिष्ठित करता है जीवन में।

चलो हम भी एक सत्य थामें

यह अग्नि पथ है, सत्य पथ है।
आकाश में लकीर खींचना।
पानी पर चित्र आँकना।
वायु पर प्रहार करना।
अग्नि को थाम सकना
पृथ्वी को बाँध सकना।

सब संभव है

परन्तु यदि मूल सत्यों में से तुमने कोई सत्य थामा है, तो जीवित समिधा बन कर जलना होगा, सत्य को थामे रहो। जीवन यज्ञ में हमारी यह दिव्य आहुति आकाश में 'सत्य मेव जयते' के जयघोष में, पृथ्वी में सहनशिलता के वेष में, वायु में प्राण शक्ति के परिवेश में, जल मे जीवन के जीवान्मेष में सत्यान्वेषी का थामा हुआ सत्य, सत्यस्वरुपी ब्रह्म से, लौ से लौ एकाकार हो जाये।

(१२)

सत्य का सौरभ-२

(अक्रोध)

सत्य कैसा हो? सत्य के नाम पर दूसरों के ऊपर पाषाण वर्षा करने वाले लोग आपने बहुत देखे होंगे। अक्सर वे कहा करते हैं, ''देखिए, हम तो सीधी-सच्ची खरी बात बोलते हैं, चाहे किसी को अच्छी लगे या बुरी।'' ऐसे लोग अच्छी तरह जानते हैं। कि इस प्रकार के तथाकथित सत्य भाषण से वे दूसरों को कष्ट पहुंचाते हैं, अपने शत्रुओं की संख्या बढ़ाते हैं और अपने लिए भी प्रतिकूल परिस्थितियां खड़ी कर लेते हैं। फिर भी इस दुर्गण को छोड़ने के बजाय अपने ही द्वारा आत्मसमर्थन करते हुए घोषणा किया करते हैं कि बस, यही तो हमारी खराब आदत है कि हम सच बोल देते हैं। वे अनुभव करते हैं कि यह खराब आदत है किन्तु कोई अन्य उनकी निंदा करें, इसके पहले ही वह आत्मरक्षा के लिए शब्दकवच पहन लेते हैं।

किन्तु यह सत्य नहीं है, यह तो सत्य की भ्रांति है। सत्य के बारे में नामसझी है। सत्य यथार्थ की अभिव्यक्ति अवश्य है, किन्तु इस यथार्थ की अभिव्यक्ति में दूसरे दैवी गुणों का हनन नहीं होना चाहिए। सत्य कटु और परपीड़क होगा तो यह हिंसा हो जाएगी, तब अहिंसा की दैवी सम्पत्ति का क्षय हो जाएगा। इसलिए शास्त्रकार ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि सत्य का स्वरूप कैसा हो। सत्य प्रिय भी हो और ऐसा हो जो दूसरों को सहज ग्राह्य हो, उनके जीवन का अंग बन सके, वह अप्रिय नहीं होना चाहिए। किसी दृष्टिहीन को अंधा कहकर पुकारना, सत्य भले हो, उसके व्यक्तित्व का अपमान अवश्य है, ऐसा कथन उसके मन को घायल अवश्य करेगा, यह हिंसा होगी इसलिए लोकाचार में उसे सूरदास कह कर सम्मानित करेंगे या फिर उसके नाम से सम्बोधित करेंगे। सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियं, कहकर नीतिकार ने सत्य के स्वरूप को स्पष्ट कर दिया है।

सत्य है एक निरन्तर शोधः

सत्य एक गहन साधना है। सत्यवादी होना जितना सरल दिखता है, उतना ही साधनामय है, इसके लिए निरन्तर जागरूकता की आवश्यकता है। हम सत्य का विश्लेषण कैसे करते हैं जरा देखेंः-हमारी ज्ञानेन्द्रियां दृश्य, श्रवण, स्पर्श, गंध और शब्द द्वारा सूचनाओं का संकलन करती हैं और मन इन सूचनाओं को ग्रहण कर अव्यक्त-अवचेतन के संचित

संस्कारों (अनुभव) के आधार पर इनका विश्लेषण करता है और तब बुद्धि निर्णय करती है कि तथ्य क्या है ? इस तरह मन की शुद्धता, चित्त के संचित संस्कार और बुद्धि की स्थिरता पर हमारा सारा विश्लेषण निर्भर करता है। यही कारण है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाने गये लोगों के अनुभव प्रायः अलग-अलग होते हैं, वहीं उनका सत्य होता है।

सत्य की भ्रांति से बचोः

अनेक विचित्र घटनाएं इन्द्रियगत सत्य की क्षमता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है और व्यक्ति भ्रान्त धारणा को ही सत्य मान बैठता है। सत्य के नाम पर इस तरह जीवन में बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएं घट जाती हैं। एक पति अपनी पत्नी जैसे आकार, प्रकार रंग रूप और वेशभूषा की स्त्री को किसी अवांछित स्थान पर देखकर यह भ्रान्त धारणा बना लेता है कि वह उसकी पत्नी ही थी और उस पर दोषारोपण करता है। यह धारणा उसके प्रत्यक्ष दर्शन से बनी है इसलिए इसे वह असत्य कैसे कहे ? वह आवेश में है, पत्नी के प्रति मन में दुर्भाव और आक्रोश भरा है लेकिन घर जाकर देखता है तो पत्नी घर पर उपस्थित है। वह हतप्रभ है, सोचता है, फिर वह कौन थी ? यह भी समरूपता की भ्रान्ति प्रत्यक्ष दर्शन के बावजूद असत्य ही थी।

राष्ट्र भी भूल करते हैंः

इन्द्रिय-जन्य ज्ञान पर निर्भर रहने से अनेक अनर्थ हुए हैं। निरपराधिओं को दंड मिले हैं। इसी प्रकार की भ्रान्ति के कारण एक राष्ट्र ने अपने एक वैज्ञानिक दंपत्ति को मृत्युदंड दे दिया था। वह भी उस दंपत्ति को जिसने इस राष्ट्र की महान सेवा की थी। कालचक्र ने पलटा खाया तो नए तथ्य सामने आए कि वैज्ञानिक दंपत्ति निर्दोष थे। वैज्ञानिक रहस्यों को प्रकट करने को दोषी वे नहीं कोई अन्य था। लेकिन तब क्या हो सकता था, सारा राष्ट्र महान हो उठा, और उस राष्ट्र की संसद ने सारे राष्ट्र की ओर से दिवंगत दंपत्ति से क्षमा याचना की।

हमने देखा कि एक समूचा राष्ट्र भ्रान्त धारणा को सत्य मान बैठा है। 'गैलीलियो' ने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि पृथ्वी घूमती है, यह स्थिर नहीं है। तत्कालीन धर्मप्रचारकों ने कहा यह झूठ है, धर्म विरुद्ध है और धर्मग्रंथ में जो लिखा है वही सत्य है धर्मग्रंथ में जो लिखा था, वह उस समय तक के अनुभवों पर आधारित था लेकिन 'गैलीलियो' ने नए प्रयोग किए तो देखा कि पृथ्वी घूमती है। उस पर धर्मद्रोह और राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उससे कहा कि वह अपने धर्म विरोधी असत्य प्रचार के लिए क्षमा मांगें अन्यथा उसे दंड मिलेगा।

प्राणभय से 'गैलीलियो' ने क्षमा मांग ली कि मेरी बात असत्य है, धर्मग्रंथ ही सत्य है किंतु अदालत से बाहर निकलते ही वह धरती पर पैर पटकते हुए धीरे से बड़बड़ाया, ''लेकिन यह धरती किसी के कहने से भी, रुकने वाली नहीं है यह अब भी घूम रही है और यह घूमती रहेगी।''

तब फिर हम क्या करें ? सत्य को कैसे जानें ?

ज्ञानेन्द्रियों पर भरोसा न करें तो क्या करें? इन्द्रियायतीत ज्ञान कहाँ से लायें? इन्द्रियायतीत ज्ञान प्राप्त करने तक प्रतीक्षा करें? इसका उत्तर महर्षि दयानन्द ने दिया था। सत्य की खोज जारी रखो, रुको मत। सत्य निरन्तर शोध का विषय है, इन्द्रिय ज्ञान से परे गहन तर्कों और तथ्यों तक पहुंचो। सत्य की यात्रा अनन्त है।

सत्य की कसौटी

यह मानव स्वभाव है कि उसे जो शारीरिक सुख देता है, उसके मानसिक आवेगों को संतुष्ट करता है, वह उसे ही सत्य मान बैठता है। यही प्रेम मार्ग है। प्रिय को पाने की ललक उसे जिस दिशा में प्रवृत्त करती है, वह उसे ही सत्य मानता है, इसे ही प्रवृत्ति मार्ग भी कहते हैं। अग्निशिखा बड़ी सुन्दर दिखती है। नन्हा बच्चा आग की लपटों को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता है किन्तु माँ हाथ पकड़ कर उसे रोक देती है। आखिर क्यों? बच्चा केवल प्रिय और मोहक वस्तु को देख रहा है, उसे यही सत्य प्रतीत हो रहा है। परन्तु माँ अनुभव से जानती है कि यह अग्नि दाहक है और इससे बच्चे के हाथ जल जाएंगे। क्या सत्य की खोज में यह भी जीवन भर बालक ही नहीं बने रहते, जो प्रिय को कल्याणकारी सत्य समझने की भूल कर उसके पीछे भागते रहते हैं और जब वह प्रिय लगने वाला असत्य दुःखदायी परिणाम देता है तब हम बिलख उठते हैं कि देखने में सत्य प्रतीत होने वाले इस फल में विष कहाँ से आ गया?

भूल हमारी दृष्टि में ही है. सत्य का निर्णायक प्रियता का बोध नहीं है। अंग्रेजी में एक सुन्दर कहावत है, "ALL THAT GLITTERS ARE NOT GOLD" अर्थात् "चमकने वाली हर वस्तु सोना नहीं होती।" तो फिर सत्य की कसौटी क्या है? कैसे परखें सत्य को?

तमसो मा ज्योतिर्गमय

हमारे शास्त्रों में स्पष्ट दिशा निर्देश दिया है कि प्रिय के पीछे मत भागो, देखो कि वह कल्याणकारी है अथवा नहीं। उसके दूरगामी फल की ओर देखो। अब इन्द्रियों द्वारा तो हम प्रियता का बोध ही कर सकते हैं, फिर कल्याण का बोध कैसे हो? इसी के लिए प्रभु से प्रकाश की याचना की गई है- "तमसो मा ज्योतिर्गमय।" हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने की प्रार्थना इसीलिए की गयी है ताकि हम कल्याण और अकल्याण में भेद कर सकें। अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी हमें सर्प दिखती है और हम यथार्थ सर्प मानकर भय से चीख उठते हैं। अंधेरे मार्ग में चलते हुए यात्री को एक झाड़ी भयंकर हिंसक जानवर दीखता है और उसके पत्तों की हलचल उस पशु की गति का भ्रम पैदा कर देती है पर उसे याद आती है कि उसके झोले में तो एक टार्च है। वह उस दिशा में टार्च की रोशनी फेंकता है। तो अपनी मूर्खता पर हंस पड़ता है। और उसके भय समाप्त हो जाता है। टार्च की रोशनी में देखता है कि यह तो झाड़ी है जिसके पत्ते हिलकर हिंसक पशु के अस्तित्व का भ्रम पैदा कर रहे थे। प्रकाश उसे सत्य का दर्शन कराता है और सत्य देता है अभय।

तो यह प्रकाश कहां से मिले? इसे अपनी अन्तरात्मा में से खोजें। फिर भी न मिले तो शास्त्र वाणी सुनें। कहा जाता है, ''महाजनो येन गतः स पन्थः'' अर्थात् तुमसे पहले श्रेष्ठ पुरुष लोग जिस रास्ते पर चले हैं उस पर चलो। उनके द्वारा दिखाया गया मार्ग स्वयं प्रकाशित है। श्रेष्ठ लोग किस रास्ते पर चले हैं, यही बताने के लिए शास्त्र हमारे मार्गदर्शक हैं। इसे श्रेय मार्ग कहते हैं- कल्याण का रास्ता। यही सत्य की कसौटी है।

सत्य प्रवंचना नहीं है :

मन के सुख की सुविधा के अनुसार राह बनाने का नाम सत्य नहीं है। अपनी सत्ता को मजबूत करने के लिए कभी कोई शासक विशिष्ट धर्म का सहारा लेता है तो उसे ही सत्य घोषित करता है और जनमानस में वही सत्य प्रतीत होने लगता है, तो कभी धर्म का विरोध करने लगता है। पर सत्य न तो विशिष्ट मत ही है और मत-पंथ धर्म का विरोध ही है। सत्य तो निरपेक्ष है। स्वार्थ के लिए प्रवंचना पूर्ण प्रचार सत्य नहीं होता। जन सूमह भले ही उस प्रचार से प्रभावित हो जाए पर सत्य का आग्रही विवेकी पुरुष इस असत्य और प्रवंचना के विरुद्ध खड़ा हो जाता है।

सत्य गर्जना

भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल 'लार्ड नाथ ब्रुक' ने महर्षि दयानन्द की बड़ी ख्याति सुनी कि उनका जनमानस पर बड़ा प्रभाव है। उसने स्वामीजी से भेंट कर कहा, 'स्वामी जी, अंग्रेजी शासन में सुख-सुविधाएं बढ़ी हैं, सुरक्षा बढ़ी है। आपकी देखरेख की पूरी व्यवस्था है। आप 'महारानी विक्टोरिया' के अंग्रेजी शासन की प्रशंसा में कुछ शब्द कह दें तो अच्छा रहे।'

इस पर निर्भीक दयानन्द ने जो उत्तर दिया, वह प्रवंचना रहित सत्य का उज्जवल स्वरूप प्रस्तुत करता है। उन्होंने कहा, 'माना कि अंग्रेजी राज्य में सुख-सुविधाएं बढ़ी हैं। यह राज्य का कर्तव्य है कि जो शासक शासन करे वह प्रजा की चिन्ता करे। किन्तु मैं विदेशी शासन की कभी प्रशंसा नहीं कर सकता। विदेशी गुलामी के हजारों सुखों में स्वदेशी निकृष्ट शासन भी अच्छा होता है।

प्रवंचना या आत्मप्रवंचना की ओट में गढ़े गए शब्द जाल को सत्य नहीं कह सकते।

व्यावहारिक जीवन में सत्य :

सबसे ज्वलंत प्रश्न है, व्यावहारिक जीवन में सत्य का पालन कैसे हो? लोग कहते हैं, सत्य एक आदर्श मात्र है, पर व्यावहारिक जीवन में सत्य का पालन असंभव है। भला छल, प्रपंच और असत्य वातावरण में सत्य बोलने से काम कैसे चलेगा? जीवन निर्वाह कैसे होगा?

एक दुकानदार कहता है, चारों तरफ वस्तुओं के कई गुने दाम बोलकर कम करने की होड़ है, फिर हम सही दाम ही बताएं तो व्यापार कैसे चले? हमारे पास कौन आएगा? किन्तु यह असत्य मार्ग का सुविधाभोगी अन्धानुकरण मात्र है। असत्य व्यवहार के कारण ग्राहक एक बार भले ही आए परन्तु असत्य पर आधारित सौदेबाजी के कारण दुकानदार के प्रति वह अविश्वास करने लगता है कि यह तो असत्य बोलता है। इसके विपरीत उचित और सही तथा निश्चित मूल्य लेने वाले दुकानदार को विश्वास जमाने में कुछ समय भले ही लग जाए परन्तु बाद में उसका व्यापार खूब चलता है। ऐसा प्रत्यक्ष देखा गया है। इसके साथ ही असत्य व्यवहार करने वाला व्यक्ति तनावयुक्त रहता है जब कि सत्यवता को अपनी ईमानदारी पर एक संतोष रहता है। असत्यवादी दुकानदार को हर ग्राहक को फंसाने में मेहनत करनी पड़ती है, तनाव झेलना पड़ता है और इसके कारण मनोरोग पनपते हैं।

एक इंजीनियर मित्र ने कहा, ''आजकल रिश्वत लिए बिना काम नहीं चलता और उसके लिए झूठ के बिना काम कैसे चले? वाह कैसी विडम्बना है, असत्य आचरण के लिए बहाना है कि हम बाल-बच्चे बाले हैं, असत्य के बिना काम कैसे चले? जबकि हमारे पूर्व पुरुष कहते थे। अरे साहब, हम झूठ कैसे बोल सकते हैं? बाल-बच्चे वाले हैं। कारण एक ही है, परिस्थिति एक ही है किन्तु मानसिक वृत्तियां बदलने से सब कुछ बदल जाता है। पहले जिन बच्चों के कारण असत्य नहीं बोला जाता था, आज उन्हीं बच्चों को दुहाई देकर असत्य बोला जाता है।

झूठ के पाँव नहीं होते :

आखिर ऐसा क्यों होता है? यह अन्धानुकरण के कारण है। लोकव्यवहार के कारण हम असत्य आचरण को सुविधाजनक और सुख का मार्ग समझ बैठते हैं जबकि यह वास्तविकता नहीं है। सच तो यह है कि असत्य का मार्ग ही कठिन है। एक असत्यभाषी व्यक्ति अनेक असत्यों की दलदल में फंसता चला जाता है फिर भी असत्य छिप नहीं पाता और जब असत्य पकड़ा जाता है तब फिर उस व्यक्ति के सारे सद्‌गुण एक रेत के महल की तरह भरभरा कर गिर जाते हैं और बच रहता है एक अविश्वसनीय विखण्डित अप्रमाणिक व्यक्तित्व, जिसका अन्त असफलता और निराशा में होता है।

आज असत्य तो पुरस्कृत किया जाता है क्योंकि यह हमारा स्वभाव नहीं रहा है भले ही सत्य कुछ समय के लिए पराजित दिखाई देता हो परन्तु एक दिन वह मंदिर के शुभ कलश की तरह चमकता है और सत्य से मण्डित व्यक्तित्व हजारों लोगों की आस्था का केन्द्र बन जाता है। कहावत भी है कि झूठ के पाँव नहीं होते यानी झूठ कहीं ठहर नहीं सकता।

सत्य का सौरभ बटोरो :

तो फिर आओ, मृगमरीचिका में जीना छोड़ें। असत्य का पथ एक मृग मरीचिका है। यह एक ऐसा रेगिस्तान है जिसमें तुम व्यर्थ ही स्वर्ण की तलाश कर रहे हो। पर याद रखें

जीवन भर भी दौड़ते रहेंगे तो इस मरुस्थल में स्वर्ण नहीं मिलेगा। केवल स्वर्ण की भ्रान्ति ही बनी रहेगी।

सत्य की साधना में जुट जाएं, इस दैवी संपत्ति का अर्जन कर लें फिर देखेंगे, सारा जीवन ही सौरभ से भर जाएगा। जीवन की सुगंध से चारों दिशाएं महक उठेंगी। आओ। हम संकल्प करें कि सत्य हमारा जीवन मंत्र बनेगा।

''ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः।''

यजुर्वेद 21-16

रक्षक (प्रभु) हमारे ऋतु (सत्य) की रक्षा करें।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्

पातञ्जल योग दर्शन २/३६

सत्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर क्रियाफल के आश्रय का भाव आ जाता है।

(१३)

शांति की सुगन्ध

(शान्तिः)

कोलाहल से भरे विश्व में शान्ति प्रकाश का दीप स्तभ है। शान्त मन में ही ज्ञान का अवतरण होता है। शान्त, स्थिर, तालाब में हम अपना प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। अस्थिर और अशान्त पानी में तो लहरें उत्पन्न होने से उसमें प्रतिबिम्ब नहीं बन सकता।

बुद्ध के परम शिष्य आनन्द ने एक बार भगवान बुद्ध से प्रश्न पूछा था। ''भन्ते, ज्ञान का मार्ग इतना कठिन क्यों है? दुःखी संसार ज्ञान को क्यों नहीं ग्रहण कर सकता?

थोड़े समय तक भगवान बुद्ध ने मौन रहकर आनन्द से कहा, ''आनन्द जाओ और सामने के नाले में से थोड़ा सा साफ पानी ले आओ।''

आनन्द खाली हाथ वापस आया तब बुद्ध ने खाली हाथ वापस लौटने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया, ''गुरुदेव! अभी-अभी पानी में से बैलगाड़ी उस नाले में से होकर गयी है। इसलिए पानी में कीचड़ मिल गया है। थोड़ी देर बाद साफ पानी मिल सकेगा।''

थोड़ी देर बाद फिर से बुद्ध ने आनन्द को पानी लाने के लिए कहा। अब कीचड़ बैठ गया था। इसलिए 'आनन्द' स्वच्छ पानी लेकर वापस आया।

बुद्ध ने समझाया, ''देखो आनन्द! नाले में से गाड़ी निकल जाने के बाद पानी में शान्ति आयी, इसके बाद कीचड़ बैठ गया और साफ पानी मिल सका।'' बुद्ध ने सारांश के रूप में समझाया कि मानव मन की भी यही स्थिति है। जब मन अस्थिर और अशान्त होता है उस समय उसमें आत्मज्ञान का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता। परन्तु जब मन को इन विषयों में से अलग किया जाता है। तब वृत्तियां स्थिर हो जाती है। शान्ति के इन क्षणों में ही ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है।

सारे संसार का यही नियम है। यहां चारों तरफ विक्षिप्तता, कोलाहल आदि चलते ही रहेंगे। व्यावहारिक जगत् में मानव मन अपूर्णता, दंभ, गुस्सा, राग, द्वेष अथवा अधीरता से घिरा ही रहेगा। ऐसे में सांसारिक मार्ग पर यात्रा करनी है। शान्ति के लिए इस स्थिति को बदला नहीं जा सकता, परन्तु शान्ति इस स्थिति से सकुशल बाहर निकलने का एक कवच है। याद रखें संसार तो यथावत् चलता ही रहेगा। स्थितियाँ भी यथावत रहेंगी। कारण कि त्रिगुणात्मक प्रकृति से बना मानवमन अपूर्णता में से पूर्णता को अचानक प्राप्त नहीं कर सकता।

तो फिर शान्ति किस तरह प्राप्त होगी ? सांसारिक मार्गों पर यह भीड़ और विक्षोभ से भरे मानवजगत् में आगे बढ़ने का क्या उपाय हैं ?

उपाय है पारदर्शी दृष्टिकोण। जो जैसा है उसे उसी रूप में स्वीकार करो। उसके साथ टकराओ नहीं । उसके उसी स्वरूप के साथ समन्वय करें। उसे बदलने की जिद्द न करें। यह आवश्यक नहीं है कि आप सांसारिक मार्ग की सारी बाधाओं को दूर करें। उन्हें सुधारने में समय और शक्ति को नष्ट न करें।

थोड़ी सी जागृति रहेगी तो हमारे मन में शान्ति की सुगन्ध व्याप्त होगी। इस संसार में इस तरह प्रत्येक दृष्टि से समायोजन करना सीखें। शान्ति यह कोई शर्त नहीं है परन्तु हमारा रक्षा कवच बनना चाहिए।

कुछ बदलना ही है तो बाहरी प्रतिज्ञासे नहीं,
आन्तरिक प्रज्ञा से बदलो।
प्रतिज्ञा बर्हिगामी है।
प्रज्ञा अन्र्तगामी है।
प्रतिज्ञा टूटती है।
प्रज्ञा जोड़ती है।
प्रतिज्ञा प्रयास पूर्ण बन्धन है।
प्रज्ञा सहयोग पूर्ण नियमन है।

(१४)

आनंद–अक्षयकोष

(अलोतुष्टम)

‘मा गृधः’ ‘लालच मत करो’।

ईशावास्योपनिषद १/१

अलोलुपता अर्थात् विषयों की ओर लालच की दृष्टि न रखना दैवी सम्पत्ति का विशिष्ट गुण है किन्तु जीव कि निरन्तर विषयों की ओर प्रवृत्ति है, कीट–पतंगों से लेकर महान सर्वशक्तिमान मानव तक इन्द्रिय वासनाओं की ओर प्रवृत्त है। अन्तर है तो यही कि क्षुद्र जीवों की वासनाएं एकेन्द्रिय वासनाओं की ओर प्रवृत्त है, जबकि मनुष्य ने अपनी वासनाओं को असीमित रूप से बढ़ा लिया है। उन्हीं के लिए हिंसा, मारकाट और युद्धों में घिरा रहता है। सारे संघर्षों का कारण है व्यक्ति की अदम्य कामनाएं, विषयों के प्रति लोलुपता, विषय लोलुपता संघर्षों की जनक है, जबकि अलोलुपता आनन्द और शान्ति का स्रोत है।

किन्तु विषयों में क्या आनन्द है? इनमें सुख की भ्रान्तिमात्र ही है। उपनिषद्कार ऋषियों का दर्शन है कि यह भ्रान्ति ही है, आनन्द विषयों में नहीं है, इसका स्त्रोत ब्रह्म ही है, उस स्त्रोत को ही पकड़ो। जिस ब्रह्म में रूप, रस, शब्द, स्पर्श और रति के आनन्द निहित हैं, वह ब्रह्म ही हमारा अभीष्ट हो।

विषय अच्छे लगते हैं क्योंकि उनमें रस मिलता है, प्राणिमात्र रस की खोज में भाग रहा है, नीरस जीवन किसी को अच्छा नहीं लगता। रसहीन बातें, रसहीन जीवन, रसहीन मित्रता और रसहीन कार्य व्यापार किसी को नहीं भाता। नीरसता जीवन का भार है। वह इस रस की खोज में ही इन्द्रियों के माध्यम से विषय वस्तुओं में भ्रमण करता है किन्तु जितना ही वह इन विषय वस्तुओं और रूपों में रस की तलाश करता है, उतना ही दुःख पाता है, संयोग के साथ वियोग, यश के साथ अपयश, लाभ के साथ हानि और जीवन के साथ मरण का योग अनिवार्य है। विषय रस के रूप में वह जिस किसी को पकड़ने की कोशिश करता है, देखता है कि उसके एक नहीं बल्कि दो पहलू हैं– सुख और दुःख। कोई आज तक एक पहलू का विषय रूपी सुख खोज नहीं सकता क्योंकि विषयानन्द है ही भ्रान्ति, यह माया है, मूर्छा की यात्रा है। उपनिषद् कहता है ‘‘रसो वै ब्रह्मा–’’ परिपूर्ण रस ही ब्रह्म है अथवा ब्रह्म ही रस का केन्द्र है। संत कबीर ने कहा–‘‘जिस प्रकार मृग व्यर्थ ही वन में भटक कर कस्तूरी को ढूंढता फिरता है, जबकि कस्तूरी उसकी नाभि में ही है, उसी प्रकार आनन्द रूपी कस्तूरी तो अन्दर ही है, उसे विषयों में यों खोज कर जीवन नष्ट कर रहे हो–‘‘कस्तूरी कुंडलि बसे, मृग ढूंढ़े बन माँहि।’’

विषयों का मिथ्यात्वः

विषयों की यात्रा एक भ्रान्ति है, इसे सरलता से समझा जा सकता है। यह इन्द्रिय अनुभूति-सापेक्ष है और इन्द्रियों की अनुभूति सीमित तथा अपूर्ण है। अतः यह भ्रान्ति ही है। सत्य नहीं। उदाहरण के लिए प्राणी जगत को देखें-सूकर को मल ही प्रिय है, गुबरैले को गोबर का आहार स्वादिष्ट लगता है, मक्खियों को घोर गंदगी रुचिकर लगती है, लेकिन मधुमक्खी को यह सब प्रिय नहीं लगता, उसे पुष्प पराग में ही रुचि है। हर प्राणी की इन्द्रिय अनुभूति पृथक है इसलिए उन्हें अलग-अलग पदार्थ प्रिय लगते हैं जो एक के लिए अप्रिय हैं, वे दूसरे के लिए प्रिय हैं, यह मायाधीन सृष्टि चक्र है ताकि इस चक्र में भिन्न प्रियता का बोझ इस चक्र को गतिशील रख सकें, इसमें संन्तुलन स्थापित रहे। मानव शिशु को ही लें। नन्हां शिशु मिट्टी से खेलता है, उसे मिट्टी खाना रुचिकर लगता है, जब वह शिशु बालक रूप में विकसित हो जाए तब उसे मिट्टी खाने को दीजिए, वह क्रोध प्रकट करेगा, कहेगा क्या मैं पागल हूं जो मिट्टी खाऊंगा। बाल्यकाल में वह खिलौनों से खेलता है, उसे ये प्रिय हैं। तरुण होने पर उसे खिलौने खेलने के लिए दीजिए तो फिर उसका यही उत्तर होगा। क्या मैं पागल हूं या कोई बच्चा हूं जो खिलौने से खेलूंगा? आयु विकास यात्रा के साथ इन्द्रियबोध बदलता जाता है और तब कल जो सत्य और प्रिय था, आज वही असत्य और अप्रिय प्रतीत होने लगता है। प्रश्न है, क्या इन्द्रियों के अंतिम बोध को सत्य मान लिया जाए? क्या इस इंद्रिय बोध में भी अपूर्णता नहीं है? हम देखते हैं कि दैहिक चेतना से ऊपर उठे व्यक्ति तथा मनःप्राण की चेतना में जागे लोगों की दैहिक वासनाएँ घट जाती हैं और तब मन-प्राण की वासनाएं ही उन्हें प्रिय लगती हैं, तब उन्हें यश, कीर्ति, सत्ता की भूख लगती है और दैहिक सुख क्षीण हो जाती है, उसमें मन नहीं रमता। किन्तु यह भी तो अन्तिम सत्य नहीं ।

"अन्तिम सत्य"

मन और प्राण से ऊपर का अस्तित्व है विशुद्ध चेतना-यह इन्द्रियातीत है, इन्द्रियों से परे। चेतना स्वयं आनन्द का सागर है और चेतना की यात्रा पूर्ण होने पर पता चलता है कि विषयों में सुख खोजता है तो भ्रान्ति थी, आनन्द का सम्राट तो स्वयं मैं ही हूं, मेरी शुद्ध चेतना ही है। तब ये विषय स्वयं ही मिट्टी के तुल्य लगते हैं।

यह विषयलोलुपता है अज्ञान के कारण, इस अज्ञान के कारण ही आनन्द का स्रोत बाहर से है, अपने अन्दर नहीं है, जीव विषयों की ओर भागता रहता है और विषयों की अनन्त यात्रा में भी उसकी पकड़ में कभी सुख आ नहीं पाता।

श्री कृष्ण कहते हैं अलोलुप बनो, हे अर्जुन! यहां अर्जुन प्रत्येक भक्त है, हर साधक अर्जुन है जिसे भगवान श्री कृष्ण अलोलुप होने का उपदेश देते हैं क्योंकि विषय लोलुपता में सुख नहीं है, सुखाभास की भ्रान्ति मात्र है।

सही यात्रा

सही यात्रा है ईश्वर की ओर। जीव ईश्वर के गुणानुरूप ही है, वह सच्चिदानंद का अंश है, वह सत + चित् और आनन्द ही है। सत् अर्थात वह जिस देह की शाश्वता के लिए प्रयत्न कर रहा है, वह यह देह नहीं है बल्कि आत्मस्वरूप शाश्वत ही है, जब वह दैहिक विषयों से मुक्त होकर इस चित्त सत्य को पा लेता है तब शाश्वत ही हो जाता है वह निरन्तर और सत्ता की खोज में है, चित्त स्वरूप ज्ञान पूर्णसत्ता ही है। जब वह चित्त शुद्धि का प्रसाद पा लेता है तब देखता है कि वह तो स्वयं ही सब सत्ताओं का अधिपति है। वह विषयों में सुखों की खोज छोड़कर जब आत्मसत्ता की खोज करता है। तब देखता है कि वह स्वयं ही आनन्द का भण्डार है। आनन्द का अक्षय कोश है। इसलिए भगवान श्री कृष्ण ने विषयों के प्रति अलोलुप हो जाने के लिए कहा है– सारे कर्मों की दौड़ विषयों की आकांक्षाओं के कारण ही है, चिर विश्रान्ति तो प्रभु चरणों में ही है इसलिए भगवान कहते हैं– ''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज'' प्रभु की शरण में ही विषयों की परिसमाप्ति है, अलोलुपता की साधना हमें सहज ही आत्मबोध की ओर ले जाती है।

(१५)

अद्रोह प्रेमसागर

(अद्रोह)

अद्रोह है दैवी सम्पत्ति का पच्चीसवाँ गुण। द्रोह का अर्थ है प्रतिशोध की भावना रखना, बदले की भावना से ग्रस्त रहना। द्रोहरहित स्थिति का नाम है अद्रोह। अद्रोह की मनः स्थिति बनाए रखना मन की एक स्वाभाविक महाक्रान्ति है क्योंकि किसी के अप्रिय आचरण पर प्रतिक्रिया होना एक स्वाभाविक स्थिति है। प्रियता की कामना से बचना अत्यधिक कठिन है। अतः जहां से अप्रिय व्यवहार मिलता है वहां प्रतिक्रिया होती है उसे हटा देने की, अप्रियता की स्थिति को बदल देने की। प्रियता के प्रति राग होता है तो अप्रियता के प्रति द्वेष, द्वेष यानी यह हमारे सम्मुख न रहे, इस स्थिति या व्यक्ति का उन्मूलन हो जाए और जब यही द्वेष भाव अधिक दृढ़तर होता है तो उसे व्यक्ति के प्रति शत्रु भाव हो जाता है। यह द्रोह भाव कोई सामान्य बात नहीं है, यह व्यक्ति के मन को क्षुब्ध करता है, उसे अशाान्त बनाए रहता है कि किस तरह जिसके प्रति द्रोह भर गया है उसे दण्डित किया जाए, उसे क्षति पहुंचायी जाए।

जिसने कष्ट पहुंचाया है, उसे बदले में कष्ट पहुंचाने की भावना साधक के लिए सबसे घातक विषय है। प्रतिशोध संभव होगा कि नहीं , कष्ट देने वाले को दण्डित किया जा सकेगा या नहीं , यह तो बाद की बात है, परन्तु साधक इस द्रोह भाव के कारण निरंतर कष्ट भोगता रहेगा। उसकी सारी ऊर्जा निरर्थक ही प्रतिपक्षों के प्रति शत्रुभाव में लगी रहेगी उसके मन में रचा-पचा यह द्रोहभाव उसके सारे स्नायुतंत्र और देह कोषों का संग बनाए रखेगा।

कैसी विचित्र बात है, प्रतिशोधी मन प्रतिपक्षी को दण्ड देने की इच्छा तो करता है, परन्तु दण्ड वह स्वयं ही भोगता रहता है। द्रोह विष निरन्तर उसे दुःखी बनाये रखता है और वह स्वयं ही शत्रु भाव के कारण तिल-तिल जलता रहता है।

अद्रोह इसलिए एक कवच है दैवी सम्पत्ति का, जिसने अद्रोह का कवच पहना उसे कोई क्षुब्ध नहीं कर सकता। वह अजेय हो जाता है। अद्रोह की सिद्धि जिसे भी हो जाए, सम्पूर्ण प्रकृति ही उसकी मित्र हो जाती है।

यह एक विचित्र टकराहट है कि जिन्हें हम पराक्रमी गुण मान बैठते हैं वे हमारे घोर दुर्गुण हैं। चिड़िया को देखिए। सामने दर्पण रखा है और वहां दाना चुग रही है। दर्पण की गौरैया पर नजर है तो क्षुब्ध हो जाती है कि क्यों उसका हिस्सा बटाने आ गई और फिर दर्पण में चोंच मार-मारकर स्वयं को ही चोट पहुँचाती रहती है, स्वयं ही घायल होती रहती

है। द्रोह भरा मन गौरैया की तरह स्वयं को ही आहत करता रहता है।

अद्रोह सध जाए तो बुद्ध के सम्मुख अंगुलीमाल भी अपनी तलवार फेंक देता है। अद्रोह साधे ऋषियों के आश्रमों में हिंसक सिंह–व्याघ्र और मृगशावक एक साथ खेलते रहते हैं।

महर्षि विश्वामित्र का मन द्रोह से भरा था, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के प्रति। वे महर्षि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि की मान्यता नहीं दे रहे थे। एक दिन गुप्त रूप से विश्वामित्र महर्षि वशिष्ठ की हत्या करने जा पहुँचे, सोचा इस समस्या की जड़ को ही काट दिया जाए। पूर्णिमा की चाँदनी फैली थी उस रात्रि के आकाश में, ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने अपनी पत्नी को संबोधित किया, ''देखो! चन्द्रमा के प्रकाश में कैसी शीतलता और धवलता है महर्षि विश्वामित्र की कीर्ति की तरह।''

महर्षि विश्वामित्र भावविह्वल हो उठे, ब्रहर्षि वशिष्ठ की महत्ता से अभिभूत होकर। वह उनके सम्मुख आए और नतमस्तक हो गए। द्रोह की शिला अद्रोह के भाव के सम्मुख पिघल गई और द्रोह भी बन गया अद्रोह की सरिता। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने महर्षि विश्वामित्र को उठाया और 'ब्रह्मर्षि' की उपाधि से विभूषित कर दिया।

अद्रोह कोई नकारात्मक गुण नहीं है। यह है सर्व मैत्री, सब में निजात्म स्वरूप दर्शन। अद्रोह सधेगा तभी सब में निजता दिखाई देती। तब अद्रोह ऐसा कवच बन जाएगा कि शत्रुता के बाण भी उस पर असर नहीं कर पाएंगे।

(१६)

मान–सम्मान की अधिक स्पृहा

(नातिमानिता)

मान–सम्मान की चाह है अहंकार की पूजा। धन, पद, सत्ता की चाह छूटना सरल है किन्तु मान–सम्मान की चाह बड़े–बड़े साधकों को भ्रष्ट कर देती है। कारण अहंकार के पास स्वयं को जीवित रहने का यही एक अन्तिम अमोघ शस्त्र है। जब तक मान की चाह है, समझिए, अहंकार का सर्प जीवित है और मान–सम्मान की चाह जितनी ही अधिक है, जानो कि अहंकार उतना ही प्रबल है। जबकि अहंकार का उन्मूलन ही सारी साधनाओं का मूल है।

अहंकार को सिंहासन से पदच्युत करेंगे तभी भगवान इस सिंहासन पर बिराजेंगे। अहंकार को विदा करना है तो इसे भूखों मारना होगा। इसे इसकी खुराक मान–सम्मान से वंचित करना होगा। इसीलिए श्रीमद भगवत् गीता में मान के प्रति अनिच्छा को दैवी गुण बताया है।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने मान की चाह को पूर्णतः ध्वस्त करने के लिए डोम के घर जाकर अपने लंबे केशों से उसके शौचालय को पोंछा था। मान के प्रति विरक्ति का उदाहरण भगवान श्रीकृष्ण के जीवन में ही स्वयंमेव पल–पल पर देखा जा सकता है। योगेश्वर श्री कृष्ण सबके पूज्य, मान्य और आराध्य थे किन्तु उन्होंने पाण्डवों का दूत बनना स्वीकार किया, अर्जुन के रथ का सारथी बनने जैसा लघुत्तम कार्य स्वयं ही चुना। यही नहीं, जब विजयोपरान्त पाण्डवों ने राजसूययज्ञ किया तो श्री कृष्ण ने स्वेच्छा से भोजनोपरान्त अतिथियों की जूठी पतलें उठाने का दायित्व ग्रहण किया। अमानित्व का ऐसा उदाहरण भला कहाँ मिलेगा?

'अमानित्व' का परिचय दिया था संत 'दादू' ने। वे चुपचाप सड़क के किनारे झोपड़ियां साफ करते रहे, दम्भी शहर कोतवाल उनसे पूछता रहा है कि संत दादू की कुटीर कहाँ है? संत कहाँ मिलेंगे? लेकिन संत मौन ही रहे। दंभी कोतवाल के सम्मुख उन्होंने मौन ही रहना उचित समझा। कोतवाल ने उन्हें पीट–पीट कर लहूलुहान कर डाला, परन्तु दादू, जिससे वह कोतवाल मिलना चाहता था, वे दम्भ और मौन के आग्रही कोतवाल का दंभ समाप्त करना चाहते थे और यह अमानित्व के प्रत्यक्ष उदाहरण से ही संभव था। जब कोतवाल को अपनी भूल का पता चला तो बहुत पछताया और उसका सारा दंभ बर्फ की शिला की तरह पिघलकर बह गया। अमानित्व में भी एक ज्वाला होती है जो दंभ की शिला को भी पिघला सकती है क्योंकि अमानित्व के बाद जो बचता है वह क्षुद्र अहम् नहीं होता बल्कि विराट ही शेष रह जाता है, तब वह शक्ति पुंज परमात्मा ही शेष बचा रहता है।

जब अहम् विसर्जन के बाद सर्व शक्तिमान प्रभु ही बचे रहते हैं, तथा वही मन के सिंहासन पर आ विराजते हैं तो फिर पागल मन भीख माँग-माँग कर दुष्ट अहंकार का पोषण क्यों करता रहता है भला। यह मन इसको बैठाये रख कर भगवान को सिंहासन से दूर क्यों रखता है ? यह ज्वलन्त प्रश्न है।

यह एक सहज बोधगम्य बात है कि कोई मेहमान बहुत लम्बे समय तक कहीं ठहर जाए और उसका खूब मान-सम्मान हो तो वह वहाँ से जाना नहीं चाहता। उसे निकालना भी चाहेंगे तो वह बहाने बनाकर टालना ही चाहेगा। फिर अहंकार कैसे जाए? इसे तो असंख्य जन्मों से पाला पोसा गया है, इसका मान-सम्मान किया गया है।

मान की चाह सचमुच क्या कोई अर्थ रखती है ? इसका कोई प्रयोजन है ? यह तो प्रकृति के रंग-गुलाल की तरह है। यदि नीला गहरे रंग का गुलाल अपयश की तरह बदरंग है तो यश और मान का लाल गुलाल भी एक उड़ता निस्सार रंग है, ये हमारे अस्तित्व में कोई परिवर्तन नहीं लाते, बस एक खेल मात्र है। ज्ञानी, साधक रंग-गुलाल के इस खेल में मुग्ध नहीं होता।

एक संत था, बहुत लोकप्रिय, उदार, ख्याति प्राप्त। नगरवासी उसे बड़ा मान देते, उनका जयगान करते रहते थे। वहाँ बाहर एक पर्णकुटी में एक दिन नगरवासियों ने उस सन्त का और अधिक सामूहिक अभिनन्दन करने का निर्णय किया। सन्त को किसी ने बताया कि अमुक दिन नगर के सभी श्रेष्ठ जन पुष्प मालाओं और धन-धान्य से उनका भरपूर सम्मान करेंगे क्योंकि नगरवासी उसके गुणों से अभिभूत हैं। सन्त ने सोचा, यह तो व्यर्थ भार है, प्रपञ्च है, कर्म का अनामंत्रित फल है। इसे नष्ट करना ही उचित है। सन्त ने एक फटा कंबल लिया और चेहरे पर भली भाँति लपेट लिया ताकि पहचाना न जा सके और उस मार्ग में सड़क किनारे जा बैठा जहाँ से नगरवासियों को संत के स्वागत के लिए जाना था। जब नगरवासियों की स्वागती भीड़ उधर से गुजरी तो छद्‌म वेश में छिपे संत ने उनसे कहा, ''कहाँ जा रहे हो, उस पाखंडी सन्त का स्वागत करने ? खैर, मैं उसे जानता हूँ वह तो बड़ा दुष्ट-पापी है, उसका प्रातःकाल नाम लेना भी पाप है और तुम जा रहे हो उसका सम्मान करने!'' ''सन्त के श्रद्धालुओं की भीड़ ने उनके विरुद्ध ये दुर्वचन सुने तो वे आगबबूला हो उठे। ऐसे वचन कहने वाले व्यक्ति की खूब मरम्मत की उसे लहूलुहान कर डाला और बड़बड़ाते हुए आगे बढ़ गए। सन्त की कुटी पर पहुँचे तो देखा सन्त उन सबसे पहले एक संकरे छोटे रास्ते से उसी वेश में लहूलुहान अपनी कुटी पर जा बिराजे हैं। श्रद्धालु जनों ने जब सारी घटनाओं को सूत्रबद्ध जोड़ा तो मर्मांहत हो उठे। एक स्वर से बोल उठे, ''अरे! ये तो पूज्य महन्त ही थे जिन्होंने मार्ग में स्वयं ही छद्‌म वेश में अपनी निंदा की थी और हम उन्हें कोई अन्य निन्दक समझ बैठे थे। यह तो घोर पाप हो गया, जिसका सम्मान करना था, उसी पर हम प्रहार कर बैठे।''

''परन्तु ऐसा किया क्यों गुरुदेव ये आपने? बाबा, यह भ्रान्ति का खेल क्यों रचाया?'' एक श्रद्धालु ने साहस से पूछा।

सन्त ने मृदु मुस्कान से उत्तर दिया, ''भगवदभक्तों! मैं जानता हूँ कि मैं किसी भी कर्म का कर्ता नहीं हूँ और यह भी जानता था कि वह जो कर्ता है व्यर्थ ही इस आकार को सम्मान दिला कर अहम को मुग्ध करना चाहता है। लेकिन जो जाग चुका है भला इस खेल में क्यों फँसे? सो मैंने सच ही कह दिया कि यह सन्त तो पाखण्डी है, कुछ नहीं करता है, इसका उचित पुरस्कार मिल गया, जिसका यह हकदार था। इसके दुर्धर्ष अहंकार का यही इलाज है, ताकि यह कभी सर न उठा सके।''

मान-सम्मान की यह भूख एक बाल खेल ही है, भगवान का सच्चा भक्त यह जानता है। क्योंकि मान देने वाला यह कौन है? हम मान किससे चाहते हैं? उस संसार से ही न, जो उस परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र है, उसकी लीला मात्र है? तब भला भक्त क्या भगवान से सम्मान चाहेगा? वह तो केवल उसकी कृपा चाहता है, उसका प्रेम चाहता है और उसकी भक्ति चाहता है। ऐसे अमानी भक्त को ही भगवान आश्वासन देते हैं- ''न मे भक्तः प्रणश्यति'' मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

''न मे भक्तः प्रणश्यति''
(श्रीमद् भगवद् गीता अ. 9-श्लो. 31)

(१७)

मामेकं शरणं व्रज

मन्मना भव मद् भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥34॥

श्रीमद् भगवत गीता अ. 9-34

जीवन का अंतिम लक्ष्य यह होना चाहिए कि हम योगी बन सकें। हम अपने घर में रोज सबेरे माला जपते हैं, शाम को माला जपते हैं लेकिन और क्या करें कि हमारा सारा दिन ठाकुर को समर्पित हो जाए। चलते-फिरते, उठते-बैठते कैसे पूरा जीवन ठाकुर को समर्पित करें? कैसे हमें विश्वास हो कि हम जो कुछ कर रहे हैं उसमें हमें ठाकुर प्राप्त हो जाएंगे, हम ठाकुर को प्राप्त हो जाएंगे- ठाकुर हमारे हो जाएंगे यह बहुत आसान हैः यह नजर, यह अदा बहुत आसान है पर बहुतों की समझ में नहीं आती। ठाकुर ने गीता में जगह-जगह इस बात की घोषणा की है, प्रतिज्ञा की है। नवें अध्याय में भगवान कृष्ण स्वयं कहते हैं कि कैसे तूँ मुझे प्राप्त हो जाएगा? कैसे तूँ मेरा हो जाएगा? इसके लिए पाँच रास्ते बताये हैं।

(१) मन्मना भव- मुझे जान लो, ज्ञान के मार्ग से तथा जो मार्ग जिसको पसंद हो उससे मुझे पा ले।

(२) मद्भक्तो भव- मेरे भक्त बनो। यह है भक्ति मार्ग। संसार से तो प्यार करते ही हो लेकिन मुझसे प्रेम करो।

(3) मद्याजी भव- जो कुछ भी करो मुझे समर्पित करो। यह है कर्म मार्ग। मेरे लिए ही सब कुछ करो। ज्ञान-मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग इन तीनों ही मार्गों से तू मुझे प्राप्त कर सकता है। अगर ये तीनों ही मार्ग तुझे कठिन प्रतीत होते हैं तोः-

(४) मां नमस्कुरु- केवल मुझे नमस्कार करो।

(५) मत्परायणः- मेरा हो जा, यह सब करते हुए केवल मेरे परायण हो जा। तब तू मुझे प्राप्त हो जाएगा।

यह तो सरल अर्थ हुआ- अब हम उस पर थोड़ी चर्चा करें, मन्मना भव, मद्भक्तो भव, ज्ञान और भक्ति मार्ग की बात आयी। सन्त दूसरा भी अर्थ करते हैं, ये जो मन है, मेरा मन, तेरा मन ये अलग न रहे एक हो जाए। तू भक्तिपूर्वक कह सके कि-

''अब हमारे इष्ट का कुछ और ही अंदाज है
उसको मुझ पर नाज है और मुझको उस पर नाज है''
''ऐसा मन हो जाए कि कुछ अलग रहे ही नहीं।''
''जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए''

जैसी भी परिस्थिति आए जो भी तेरे सामने आए तू उसे स्वीकार कर ले, शिकायत नास्तिकता है। ठाकुर कहता है जो भी तू सोचे इस तरह से सोच जो ठाकुर की ओर से आ रहा है बस वही प्रसाद बन जाएगा। मेरा मन तेरा मन बन जाए। मुझसे अलग कुछ रह न जाए। मेरी इच्छा ही तेरी इच्छा हो जाये।

''महलों में राखे चाहे, झोंपड़ी में वास दे'' कैसी भी परिस्थिति आए उसमें अपनी मुस्कान को बनाए रख सके यह है मन्मना भव, अक्सर क्या होता है कि हम चाहते हैं मेरे मन की चले। हम हमेशा कहते हैं ठाकुर! अब की बार मुझे कुछ नहीँ चाहिए बस इतना ही कर दो। अगर ऐसा हो जाए तो मेरी बात बन जाएगी। नहीं तो मेरी इज्जत चली जाएगी। लगता तो ऐसा है जो आज तक होता रहा वह गलत होता रहा है। अब जैसा मैं चाहता हूं ठाकुर वैसा कर दो। तो सब ठीक हो जाएगा। काश! हमें पता होता कि क्या ठीक है क्या गलत है? जब हमारी कुछ नहीं बनती तब अंत में कहते हैं कि ''होता वही है जो मंजूरे खुदा होता है'' यह कब कहते हैं जब हम हार जाते हैं। टूट जाते हैं तब, लेकिन ठाकुर कहता है शुरू में ही मन्मना भव हो जा। शुरू में ही ऐसा समझ ले कि ठाकुर, तू जो भी करेगा मुझे पसंद होगा, जैसा ठाकुर चाहेंगे वही होगा। धीरे-धीरे वैसा ही होने लगेगा। अभी तो होता क्या है कि जो हम चाहते हैँ वह होता ही नहीं है। ठाकुर की आवाज को हम सुन नहीं पाते हैं। अपने मन को उनसे मिला नहीं पाते हैं तो होता क्या है? न अपनी चल पाती है न ठाकुरवाली हो पाती है। फिर हम परेशान होते हैं। तनाव में आ जाते हैं। अगर जवानी में हलचल हो तो समझ सकते हैं लेकिन बुढ़ापा नजदीक है बचपन से पचपन तक आयु पहुँच गई है तो फिर आज लगता है कि कुछ रास्ता बताओ कि मेरे मन को कुछ शान्ति मिले। तो क्या करना है?

(१) मन्मना भव-

बस सौंप दे मुझको

''जिसने अपनी सौंप दी मेरे हाथों डोर
कभी उलझती ही नहीं उसकी नंदकिशोर''

और ये सच बात है कि-

''जब तुझसे न सुलझे तेरे उलझे हुए धंधे,
भगवान के इन्साफ पे बस। छोड़ दे बंदे।''

वो खुद ही तेरी मुश्कीलें आसान करेगा। जो तू नहीं कर पाया वो भगवान करेगा। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि जब मन्मना भव हो जाते हैं तो धीरे-धीरे ठाकुर की इच्छा हमारी इच्छा हो जाती है। अगर कोई गलत काम भी आपसे हो रहा है तो ठाकुर आके बचाते हैं। धीरे-धीरे मन्मना भव से कोई गलत काम हो ही नहीं सकता।

मैं अपने जीवन की एक घटना सुनाता हूँ आपको- पैतीस साल पहले की बात है हमारे पू. गुरुदेव स्वामी धर्मानंदजी महाराज को पान खाने का बहुत शौक था हम लोग इलाहाबाद जा रहे थे। रास्ते में गाड़ी खड़ी करवाई, ड्राइवर को कहा पान बनवाओ। मुझे भी लगा कि एक पान खाना है। मैंने भी एक पान बनवाया। मैंने अपने मुँह में रखा और पान लेकर मैं उनके पास गया। उन्होंने पान तो ले लिया लेकिन जैसे ही मुझे देखा कहा बेटा। तुम भी पान खाते हो, मैंने कहा जी! कभी-कभी ले लेता हूँ स्वामी जी बोले यह एक अच्छी आदत नहीं है। मेरा क्या कर्तव्य है यहाँ पर? मेरा कर्तव्य है कि वो क्या कर रहे हैं वो मैं न देखूँ। उनकी दृष्टि अलग हो सकती है। मेरा कर्तव्य ये है कि "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।"

उन्होंने जो कहा वे ही मेरे लिए वेद वचन है। उन्होंने जो कहा वे ही मेरे लिए आज्ञा है। तो ये चिंतन न करें कि स्वयं तो ऐसा कर रहे हैं और मुझे आदेश दे रहे हैं नहीं करने का। यह अच्छी शिष्यभक्ति नहीं है। गुरु भक्ति तो यह है कि जो उन्होंने कहा मुझे उस पर चलना है बाकी तो उनका काम है देखना कि वे क्या करते हैं। और सच्ची बात तो ये है यदि शिष्य पक्का हो तो गुरु को भी ठीक होना पड़ता है। ये मेरा अनुभव है। तो पान मुँह में रखा उनके सामने गया। उन्होंने कहा-ये अच्छी बात नहीं है मुझे बड़ी शर्म आयी। मैं वापस गाड़ी की ओर गया और ड्राइवर को कहा पानी लाओ। पानी ले के मैंने कुल्ला कर दिया। तब ड्राइवर ने पूछा अगर आपको बुरा न लगे तो एक बात कहूँ। स्वामीजी लोगों के पास पैसा बहुत फोकट है। मुझे उसकी बात बुरी नहीं लगी। आज भी उससे, मुझे संदेश मिलता है। मैंने पूछा क्यों? कहता है आपने अभी-अभी पान लिया और अभी फेंक दिया (उस वक्त 1 रु. का पान और पच्चीस पैसे की चाय मिलती थी 1974 में)

मुझे अगर 1 रु. मिलता तो मेरी चार चाय बन जाती, मैं गरीब आदमी हूँ। उसने मेरी आँखें खोली, ड्राइवर भी यदि कोई अच्छी बात कहे, बच्चा भी यदि कोई अच्छी बात कहे तो हम उसे धारण करें, समाज के हर व्यक्ति के अंदर ठाकुर बैठा है। वहां से यदि कोई भी बात आए तो उसका चिंतन करें। चिंतन करने के बाद यदि लगे कि उसमें दम है तो उसको स्वीकार करें। प्रणाम करें। और ये समझें की ठाकुर से ही ये बात मिली है। जैसे ही मैंने उसकी बात सुनी मैंने जल लिया और संकल्प किया कि प्राण चले जाएंगे अब पान नहीं खायेंगे। उस दिन के बाद आज तक नहीं खाया। लेकिन देखिए ठाकुर कैसे उसमें से बचाते हैं। वहाँ के एक इंस्पेक्टर जनरल एक दिन आए। उनको पान खाने का बहुत शौक था। उन्होंने कहा आज हम पान खायेंगे। स्वामी जी खुद खाते थे, पान आ गया। उन्होंने मेरे

लिए भी मंगवा लिया। मैंने कहा मैं पान नहीं खाता हूँ। उनकी पत्नी ने कहा नहीं नहीं आप भी हमारे साथ लेंगे। मैंने सोचा ठीक है इतने प्यार से कहते हैं तो इनका मन रखने के लिए ले ही लेते हैं। उनका मन रखने के लिए नहीं लेकिन अपना मन जब कमजोर होता है तो हम दूसरों के मन रखने के लिए बहाने ढूँढ़ते हैं। आप कितने भी कमजोर हो जाएं यदि ठाकुर खुद आके बचाते हैं। मेरे मन में आया चलो ले ही लेते हैं। लेकिन तुरन्त सामने वाले कमरे में से लड़का आ कर कहता है आपके लिए फोन है। मैं फोन लेने गया। वापस आया। पान लेने लगा तुरन्त सामने किसी ने घंटी बजाई फिर जाना पड़ा। वह एक क्षण होता है जिस समय आप गलती करने जा रहे होते हैं उस समय अगर आप चाहे घंटी के रूप में या फोन के रूप में बच जाते हैं वास्तव में न ही फोन होता है ना ही घंटी बजती है। ये तो ठाकुर स्वयं घंटी के रूप में या फोन के रूप में आते हैं। सच्ची बात तो ये है ठाकुर बार-बार आकर जगाते हैं, बचाते हैं। तो ये है मन्मना भव, मदभक्तो भव।

(3) मद्याजी भव-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥27॥

श्री मद्‌भगवद् गीता अ. - 9 - 27

What ever you do, whatever you eat, whatever you perform, whatever you offer as sacrifice, whatever you give as cherity, whatever you perform as austerity, all you do is offer to me. जो कुछ भी करो मुझे समर्पित कर दो। ये सारे कर्मों को करने से मैं तुम्हें सारे बंधनों से मुक्त कर दूँगा। कर्म के जितने बँधन हैं जिसकी वजह से...

'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनं,
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया पारे पाहि मुरारे।'

ये जो चक्र है उससे छूटने का और कोई उपाय नहीं है। समर्पित कर दो मुझे।

(४) माँ नमस्कुरु

ऊपर बताए हुए चारों मार्ग यदि कठिन हैं और तू असमर्थ है, तथा समर्पण के लिए भूल जाता है तो 'मां नमस्कुरु'। -केवल नमस्कार करो। लोग नमस्कार तो करते हैं लेकिन नमस्कार कर छोड़ते हैं। जब लोगों के घरों में जाते हैं तो देखते हैं कि खुद नमस्कार नहीं करते और बच्चों को कहते हैं बेटा! पगे लागो। खुद नहीं करते लेकिन बच्चों को गरदन पकड़ कर जबरदस्ती कराते हैं वह बेचारा रोने लगता है, छटपटाने लगता है काश। ये छटपटाहट जो उस बच्चे में पैदा करते हैं सो अपने में होती। हम उस वक्त दंडवत कर पाते तो बच्चे की जबरदस्ती गरदन पकड़ने की जरूरत नहीं है। बल्कि अपनी गर्दन झुकाने की जरूरत है। हम

स्वयं को झुकाना सीखें। लोग चमत्कारों को बहुत नमस्कार कर लेते हैं। जहाँ चमत्कार दिखाई पड़ता है। वहाँ कितनी भी दूर हो पैसा खर्च करके लोग वहाँ जायेंगे, और वहाँ जाके नमस्कार करेंगे। अगर हम नमस्कार को केवल चमत्कार समझ लें तो निश्चित रूपेण जीवन में चमत्कार के पीछे भटकना पड़ेगा, ऐसा मेरा विश्वास है, हम चमत्कार के पीछे नहीं भागें बल्कि हम नमस्कार को जीवन में अपनायें। यजुर्वेद संहिता तो कहती हैं 'न मे मनः इति नमः'–

पाणिनि कहते हैं ''नमन इति नमा''

नमन की इतनी बड़ी लंबी परिभाषा है कि कैसे हम नमित हों, कैसे हम ठाकुर के चरणों में झुकें।

(५) मत्परायणः

मेरे हो जाओ। मेरे परायण हो जाओ। कैसे हम अपने आपको जोड़ें? किस तरह से हम अपने आपको जोड़ें? किसको वरण करूं? जिंदगी निकल जाती है। हम लोग ''वरण'' नहीं कर पाते है। यह समस्या हल करना आ जाए कि हम किसका ध्यान करें? किसको ''वरें'' गायत्री मंत्र का वरेण्यं कौन है?

''तत्सवितुर्वरेण्यम'' किसको हम वरें कि जिसको वरने से मेरा चुडलो अमर हो जाए। हम चाहे ज्ञान मार्ग के पथिक हों, चाहे भक्तिमार्ग के पथिक हों या चाहे कर्म मार्ग के पथिक हों, हम किसी भी मार्ग के पथिक हों, अगर कुछ न कर पाते तो सिर्फ सबेरे उठ कर ठाकुर को एक नमस्कार करें– प्रार्थना करें कि ''ठाकुर आज जो भी करूं तुझे समर्पित हो। मैं अपना मन, अपनी बुद्धि सब आपको समर्पित करता हूँ। मैं जीव तू ठाकुर, तुम बड़े मैं छोटा'', और जब हम ठाकुर की शरण में जाते हैं तो ठाकुर उठा लेते हैं। ठाकुर गले लगा लेते हैं। मंदिर में जाते हैं तीन परिक्रमा करके ठाकुर से यही प्रार्थना करते हैं। ठाकुर! मैं संसार में काम करने जाऊँ बस एक ही बात का मैं ध्यान रखूँ कि you be my center खुद को नहीं खुदा को सेन्टर में रखूँ जब खुदा हमारे जीवन का ध्येय बन जाता है तब संसार में कोई भी चोट नहीं खायेंगे। हर चोट पर ठाकुर स्वयं आकर आपको उठा लेगा। संसार की ठोकरों से बचाने वाला यदि कोई है तो ठाकुर है।

आइए हम ठाकुर का ध्यान करें। ठाकुर को नमस्कार करें, और हर पल चलते, फिरते, बैठते, उठते यह भी चिंता न करें कि कहीं अपवित्रता तो नहीं हो जाएगी। कहीं पाप तो नहीं लग जाएगा। ठाकुर का स्मरण करते रहें। जैसे हम किसी को प्यार करते हैं। तो उसकी याद हर समय आती है वैसे हम उसका स्मरण करते रहें। ठाकुर हमको याद इस तरह से आये कि ठाकुर स्वयं हमको याद करने लगे।

''प्रभु तमे छो मारा जीवन रथना सारथी।''

(१८)
योगेश्वर कृष्ण की शरण में

नष्टो मोहःस्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

श्री मद्‌भगवद् गीता- अ. 18 श्लो.73

ठाकुर तो अर्जुन के जीवन मैं भी हर समय अंग-संग थे फिर भी अर्जुन को मति विभ्रम हो गया। युद्ध के क्षेत्र में अर्जुन दोनों सेनाओं के बीच में जब अपने रथ को खड़ा करवाता है, उस समय चारो ओर अपने सगे संबंधियों को देखता है तो उसे मोह होता है। अर्जुन विषाद को प्राप्त होता है। और सोचता है कि जो मेरे अपने हैं जिनके साथ में बड़ा हुआ, खेला, खाया, जिनसे मैंने शिक्षा प्राप्त की ऐसे गुरुओं को क्या मैं मारूं? यह सोचते ही उसकी विचित्र दशा हो जाती है। और वह विषाद को प्राप्त होता है। ठीक यही परिस्थिति हमारे जीवन में भी जब आ जाती है। उस समय जीवन में, जीवन के हर क्षेंत्र में कुरुक्षेत्र सा दिखाई देता है। इस कुरुक्षेत्र में जब अपने आपको असहाय पाते हैं, कमजोर पाते हैं, निर्बल पाते हैं, कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता है इसी समय हम भी उसी विषाद के शिकार बन जाते हैं। धन्यभागी है वह अर्जुन जिसने इस विषाद में भी ठाकुर की शरण ली। आज हम गाते रहते हैं "Do not worry, Be happy"

और बाद में क्या होता है? The man who gave this song. क्या हुआ उसके बाद? He committed suicide. गीता का संदेश है कि Do not just sing the song. Be the song जब हम ऐसे गीतों को केवल गाने लगते हैं तो ये गीत होठों तक रहते हैं। लेकिन जब हम स्वयं गीत ही बन जाते हैं। जीने लगते हैं। तब जीवन में गीता प्रकट होती है। वही हुआ अर्जुन के साथ, अर्जुन का कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र बना, हर व्यक्ति के भीतर, हर व्यक्ति के घर में एक कुरुक्षेत्र है। हर व्यक्ति का हृदय एक कुरुक्षेत्र है और हर बार हर दिन उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और विचार उठता है कि उस समस्या से कैसे हम जूझें? कैसे हम ऊपर उठें? उसी का संदेश देती है गीता। यदि हम इस धाम में, ज्ञान यज्ञ में बैठकर ठीक उसी तरह से, गीता सुन सकें जैसे अर्जुन ने सुनी थी तो हम भी अर्जुन की तरह कह सकेंगे कि-

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।'

आश्चर्य की बात तो यह है कि अर्जुन ने युद्ध के क्षेत्र में, उस कोलाहल में एकाग्र हो कर गीता सुनी और कह सका कि-

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा।'

बस आज हम भी यहां गीता श्रवण करने के लिए बैठे हैं, वह गीता जो जीवन का संदेश देती है, वह गीता जब चारों ओर निराशा छा जाती है, वह गीता जो उस विषाद से प्रसाद के रास्ते का निर्माण करती है उसको सुनने के लिए हम यहां बैठे है्। इसी गीता ज्ञान यज्ञ के बाद हम भी कह सकेंगे मेरा मोह नष्ट हुआ। मुझे भी प्रसाद प्राप्त हुआ तो धन्यता होगी। उसके लिए एक ही शर्त है हम अर्जुन बनें। जिनको ये ज्ञान प्राप्त हुआ वह अर्जुन कैसा था। ये देखने से पहले हम देखें कि गीता किसके लिए गायी गई? कहां गायी गई? और क्यों गाई गई? गाय जब दूध देती है तो वह खुद नहीं पीती बल्कि औरों को वह पिलाती है। कौन है वो दूध पीने वाला? क्या है वह दूध? तो शास्त्र कहता है-

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थों वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं मेहत् ॥4॥

सारे उपनिषद ही गौ है। उस गौ को दुहने वाला, उपनिषद को दोहने वाला, उस उपनिषदों का सार रूप अमृत को देने वाला है गोपालानंदन। जो हमारे जीवन का सारथी है कृष्ण, ये सारे उपनिषदों का अमृत दिया किसको? किसके लिए दिया।

'पार्थो वत्सः सुधीभोंक्ता दुग्धं गीतामृत् महत् ॥4॥

पार्थ जो गौ का बछड़ा है। जो सुधी है। सुधी माने जिसकी बुद्धि दिव्य हो। जिसकी बुद्धि परिष्कृत हो उसी को ये दूध पान करने का अवसर मिलता है। आज ठाकुर से हम भी प्रार्थना करें-

''धियो यो नः प्रचोदयात्''

इसके अतिरिक्त और कुछ न माँगे ठाकुर से। हमारी बुद्धि परिष्कृत हो। हमारी बुद्धि उस धर्म को पहचान सके। इस जीवन के कुरुक्षेत्र में आप ऐसी प्रेरणा दे, बस एक ही प्रार्थना करें कि हे भगवान्! हम सही मार्ग पर चल सकें। इस जीवन के कुरुक्षेत्र में तेरे संदेश को सुन सकें। बस और कुछ भी न मांगें। आज यहाँ बैठकर जब हम इस ज्ञान में हिस्सा लेने जा रहे हैं तो सबसे पहले यह प्रार्थना हो कि इसको हम ठीक से श्रवण कर सकें। ठाकुर हमें अर्जुन बनाएं। अर्जुन के पास जो दिव्य बुद्धि थी वैसी ही दिव्य बुद्धि हमें प्रदान करें तथा जहाँ चारो ओर कोलाहल हो रहा है उसी बीच में गीता कही गई। जहां एक ओर धर्म की शक्ति है और दूसरी ओर अधर्म की शक्ति है। धर्म और अधर्म के चौराहे पर जब व्यक्ति खड़ा होता है तो भ्रमित होता है। उसकी आँखों में अंधकार छा जाता है। उसको कोई रास्ता नहीं दिखाई देता है। उस समय यदि अर्जुन की तरह हम भी कह सकें कि

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।7।।

हम भी अर्जुन की तरह शिष्य हो सकें। शरणागत हो सकें। अपने आपको समर्पित

कर सकें तो निश्चित रूप से जीवन में गीता प्रकट होगी। तो पहली बात अर्जुन की तरह हम बुद्धि मांगें। हमारे पास अर्जुन सी बुद्धि हो। दूसरी बात हम अर्जुन की तरह शरणागत हो सकें। बन सकें ऐसा शिष्य जो शूरवीर था फिर भी विषाद से शून्य हो गया था। उस शून्य में से जब वह शरणागत शिष्य बना तो ठाकुर ने वह गीता उसे दी जिससे वह कह सका–

'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा'

अर्जुन कोई साधारण नहीं था। उसने विषाद में प्रसाद पाने की क्षमता प्राप्त की थी। यह कोई साधारण बात नहीं है। आप सोचिये महाभारत जिस विषाद की नींव पर खड़ा हुआ, और उस विषाद योग से प्रारंभ करके संन्यासयोग तक इस पूरी गीता को ठाकुर ने पहुचांया। विषाद जहाँ बीज है संन्यास वहाँ फूल है। विषाद जहाँ एक नींव है। संन्यास वहाँ पर एक अचल और अडिग भवन खड़ा हुआ है। पाँच हजार साल के बाद महाभारत की यह ''भगवद् गीता'' जिसका ये विशाल भवन आज भी अडिग है, आज भी अचल है। आज भी आने वाली पीढ़ियों के लिए एक संदेश है। ठाकुर ने संसार के कुरुक्षेत्र में अर्जुन के लिए जो संदेश दिया वह सिर्फ अर्जुन के लिए नहीं बल्कि हम सबके लिए है। वह विषादयोग जो संन्यासयोग तक पहुँचा। विषादयोग जो प्रसादयोग बना। अर्जुन की यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। उसकी निष्ठा की परीक्षा हुई। उसके शौर्य की परीक्षा हुई। यह चिंतन का विषय है कि विषाद के क्षणों में हम बह न जाएं। विषाद के क्षणों में हम टूट न जाएं। क्या करें उन विषाद के क्षणों में ? बस शरणागत हो जाएं। उस विषाद योग से ही उसने अनन्य शरणागति का रास्ता पाया। उसी तरह हम भी जीवन में जब भी विषाद से घिरे हुए हों तब टूटे नहीं । चले आएँ उस मंदिर में, चले आयें उस ठाकुर की शरण में। जब–जब ऐसा लगने लगे कि–

''हर ओर निराशा छा जाए
जब दुःख से मन घबरा जाए
प्रार्थना कर, प्रभु से प्रार्थना कर।''

प्रार्थना व्यक्ति के जीवन में इतनी बड़ी शक्ति प्रदान करती है। जो संसार में कहीं और नहीं मिल सकती। लेकिन उसमें एक शर्त है कि अर्जुन की तरह जब अनन्य शरणागत होते हैं तो हम ठाकुर से संबंध जोड़ पाते हैं। ठाकुर आप मेरे हैं You are my sunshine. संसार में हम कितने को अपना sunshine बनाते रहते हैं। जब हम ठाकुर को अपने sunshine बनाते हैं, तो एक ऐसा भी रिश्ता बनता है कि ठाकुर खुद कह उठे कि तुम मेरे हो। अर्जुन का कृष्ण के साथ कुछ ऐसा ही रिश्ता था। हम तो कहते ही रहते हैं। प्रार्थना करते ही रहते हैं लेकिन जब ठाकुर खुद कहें कि ''मैं तेरा हूँ'' तभी कुछ बात बन सकती है। कृष्ण बार–बार यह कहते हैं। प्रतिज्ञा करते हैं। प्रत्येक अध्याय में देखें कृष्ण बार–बार कहते हैं। ''पार्थ मैं तुम्हारा हूँ। अर्जुन में तुम्हारा हूँ।'' कैसा होगा वह अर्जुन? कैसा रहा होगा वह रिश्ता? जिसको ठाकुर कह उठे ''मैं तुम्हारा हूं।''

''तू अपने दिल में ऐसा दर्द पैदा कर, ऐसी आह पैदा कर,
तुझे मिलने को वो दिलवर, खुद मजबूर हो जाए।''

यह हो सकता है। हम अपने दिल में एक ऐसी आह पैदा करें। एक ऐसा दर्द पैदा करें कि ठाकुर खुद ढूँढ़ते फिरे कि गजेन्द्र तुम कहाँ बैठो हो? प्रहलाद के सामने जब ठाकुर आके खड़े होते हैं। कहते हैं 'क्षमा करो तात। मुझे देर हुई आने में' ठाकुर खुद भक्त के सामने खड़ा हो और क्षमा माँग रहा है-

''हम भक्तन के भक्त हमारे सुन अर्जुन
प्रतिज्ञा मोरी ये व्रत टले न टाले।''

प्रतिज्ञा करते हैं अर्जुन के सामने- मैं तुम्हारा हूँ। यह बड़ी अद्‌भुत बात है। स्वामी श्री अखंडानंदजी महाराज ने बहुत पहले एक बात सुनाई थी। मुझे आज इस प्रसंग पर याद आ गई। खांडव वन में जब आग लगी तो देवराज इंद्र वहां पधारते है। वे देखते हैं कि उनका मित्र उस आग में फँसा है। तो इंद्र आकर कृष्ण से प्रार्थना करते हैं, ''हे कृष्ण मेरी एक ही प्रार्थना है कि इस खांडव दाह में से मेरे एक मित्र को बचा दीजिए। भगवान ने अर्जुन को आदेश दिया कि अर्जुन उसके मित्र को सुरक्षित वापस ले आओ। अर्जुन इन्द्र के मित्र को बचा लेते हैं। देवराज इन्द्र कृष्ण से कहते हैं इसके लिए एक वरदान मांगो। आपने मेरे मित्र को बचाया मैं आपका ऋणी हूँ। कृष्ण ने उस वक्त बहुत प्यारी बात कही। कृष्ण ने कहा देवराज इन्द्र। यदि तुम वरदान देना ही चाहते हो तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए। बस मेरी और अर्जुन की मित्रता सदैव बनी रहे।

यह महाभारत का सबसे बड़ा प्रसंग है। कृष्ण ने कहा मैं अर्जुन से अलग नहीं हूँ, अर्जुन मुझसे अलग नहीं है। यह देखिए कितनी दिव्य बात है। ठाकुर स्वयं कह रहे हैं यह बात! यह बात हम इस गीता यज्ञ से सीखकर अपने भीतर लाएँ।

महाभारत के युद्ध की दूसरी घटना है। एक दिन एकांत के क्षणों में भगवान कृष्ण और अर्जुन बैठे थे। दो - तीन दिन युद्ध हो चुका है। भगवान कृष्ण से अर्जुन ने कहा, प्रभु! युद्ध तो युद्ध है। ऐसा हो सकता है कि मेरी मौत हो जाए। मुझे कोई बाण लगे और मुझे मरना पड़े। यदि मैं युद्ध में मारा गया तो आप क्या करेंगे? ठीक यही प्रश्न कर्ण भी शल्य से करता तो? कृष्ण अर्जुन के सारथी हैं और इधर शल्य कर्ण का सारथी है। कर्ण अगर शल्य से पूछता तो जवाब होगा आप यदि युद्ध में मारे गए तो मैं अपने नगर में चला जाऊँगा। लेकिन देखिए कि कृष्ण क्या कहते हैं। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन! देखो पहले तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि जिसका मैं सारथी हूँ उसका कोई बाल बाँका कर सके। यदि कभी ऐसा हुआ भी कि कोई ब्रह्मास्त्र से तुम्हें चोट लगी और तुम्हें वीरगति को प्राप्त होना पड़े तो अर्जुन मैं अपने सुदर्शन चक्र से ब्रह्माण्ड में प्रलय मचा दूंगा। और सारी कौरव सेना को नष्ट कर दूंगा।

अर्जुन, मैं निश्चित रूप से सबका विनाश कर दूंगा। मैं अपने अर्जुन का वियोग एक क्षण के लिए भी नहीं सह सकूँगा। ये प्रसंग मैं आपको इसलिए सुना रहा हूँ कि देखिए कि कृष्ण और अर्जुन का कैसा दिव्य सम्बन्ध है। इस गीता के ज्ञान यज्ञ से हम भी ऐसा सम्बन्ध ठाकुर से जोड़ सकें कि जहाँ ठाकुर कहते हैं–

''कृष्णस्यात्मा धनंजयः''

कृष्ण अर्जुन की आत्मा है और अर्जुन कृष्ण की आत्मा है। यह कितनी बड़ी बात है। महाभारत के इस प्रसंग से कितने दावे से यह बात सिद्ध की जाती है। क्योंकि अर्जुन सरल था। अर्जुन का अर्थ ही यह है जो सरल हो, शुद्ध हो, निष्कलंक हो। जो शुभ्र हो, उज्जवल हो अर्थात जिसके भीतर कोई कपट नहीं है। जो भीतर से और बाहर से निष्कपट हो, शुद्ध हो। अर्जुन ऐसा ही था। इसलिए ऐसे हृदय में ही गीता प्रकट होती है। गीता का सार इतना ही है।

''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।।1।।''

श्री मद्‌भगवद् गीता अ. 1– श्लोक–1

शुरुआत ही हुई।

''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे , क्षेत्रेक्षेत्रे धर्म कुरु''

पहले ही उसमें सार दिया गया कि क्या करें। क्या संदेश है गीता का? तो कृष्ण ने कहा ''क्षेत्रे क्षेत्रे धर्म कुरु'' जीवन के हर क्षेत्र में चाहे कोई भी समस्या आए लेकिन धर्म का परित्याग न करें।

''जिन मुश्किलों में मुस्कराना हो मना
उन मुश्किलों में मुस्कराना धर्म है
जिस वक्त जीना गैर मुमकीन सा लगे
उस वक्त जीना फर्ज है इन्सान का''

जैसी भी घड़ी आए, कितनी भी कठिनाइयां आएं जीवन में, उस वक्त में भी व्यक्ति–

''जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।''

यह कहता हुआ मुस्करा सके वही धर्म है और उस धर्म की पहचान कराती है यह गीता जो हमें राह भी दिखाती है। सच तो यह है कि इस धर्म के पथ पर अंगुली पकड़ कर जो चला ले जाए उसका नाम है ''भगवद् गीता''। इसको सुनने के लिए हमें अर्जुन बनना पड़ेगा। इसलिए हम जब भी सत्संग में बैठे तो जिस तरह अर्जुन ने युद्ध के मैदान में इतना कोलाहल के बीच में भी एकाग्र होकर गीता सुनी, हम भी ऐसे एकाग्र होकर सत्संग में बैठें।

क्योंकि यहाँ बैठकर भी मन घर पहुँच जाता है। बच्चे घर आ गए होंगे, क्या खाया होगा ? वैसे विचार मन में आते रहते हैं। यहाँ भी कोलाहल जारी ही रहता है, हम भी अर्जुन बनते हुए मन के इस कोलाहल को शान्त करते हुए सत्संग प्रवचन सुनें। सत्संग का सौभाग्य बहुत जन्मों के पुण्य का फल है। तब जाके ये सत्संग की घड़ी मिलती है। ऐसी घड़ियां जीवन में बार-बार नहीं आती हैं। अंत में प्रभु आप सभी को शक्ति दें।

एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी से पुनि आध
सांधु संग संगति बढ़ी कोटि कटे अपराध

(१९)

प्रभु को समर्पित जीवन ही सच्ची पूजा

''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।''

श्री मद्‌भगवद् गीता अ. 1- श्लोक-1

गीता का सबसे पहला श्लोक जो प्रारंभ होता है उसका पहला अक्षर है ''ध'' और गीता जब पूर्ण होती है तो अंतिम शब्द है ''म'' -''धर्म''। पूरी गीता में धर्म के अलावा कुछ और है ही नहीं । तो धर्म क्या है? हम समझते हैं कि मंदिर जाना, तिलक लगाना, शास्त्रों का पठन करना ये सब धर्म के बाह्य अंग हैं। ये सभी चीजें हमें हमारे धर्म के पालन में मजबूती प्रदान करती हैं। स्थिरता प्रदान करती हैं। चाहें हम किसी भी क्षेत्र में हों, यदि मैं पति हूँ तो पति का धर्म पालन करूँ, यहाँ धर्म का अर्थ कर्तव्य है। यही पूरी गीता का संदेश है। इसी से ठाकुर अर्जुन को खड़े होकर संदेश देते हैं कि तुम क्षत्रिय हो और क्षत्रिय का धर्म है- लड़ना। लड़ना किससे? अन्याय के प्रति, अधर्म के प्रति, दुष्ट वृत्तियों के प्रति और अपनी कमजोरियों के प्रति। व्यक्ति लड़ता रहता है लेकिन अपनी कमजोरियों से नहीं लड़ पाता। धर्म का दूसरा अर्थ यह है:

''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्''

जो भी व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता वह मैं दूसरे से न करूँ। मुझे अच्छा नहीं लगता है कि मेरी पीठ के पीछे मेरी कोई निंदा करे। मुझे अच्छा नहीं लगता है कि मैं किसी का घृणा पात्र बनूँ। मुझे अच्छा नहीं लगता है कि मेरे लिए कोई बुराई करे तो मैं भी किसी की बुराई न करूँ बहुत सीधी-सीधी बात है। मैं जापान में गया तो When you go thru immigration. There is one line written under the counter "Follow the rules and enjoy your stay" इस देश में आए हैं इस देश के नियमों का पालन करें तो कोई आपको छू नहीं सकता है। जब-जब हम नियमों के साथ छेड़छाड़ करते हैं तो हम दुःखी होते हैं। फिर चाहे सड़क पे चलते हैं वहां भी नियम बना हुआ है:- Red light- stop, yellow light-prepare to stop otherwise you are going to hit the car. यह अपने को देखना हैं कि हम जहाँ हैं वहां के नियमों को अपनाना है। घर में रहते हैं तो घर के नियमों का पालन करें। कैसे-कैसे दूसरे के साथ रहें? कैसे एक दूसरे के साथ जीयें यह हमें देखना है। इसी का सारा सार इस गीता में दिया गया है।

''धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, क्षेत्रेक्षेत्रे धर्म कुरु''

धर्म कहता है सच बोलें, मीठे बनें, अच्छे काम करें, बुराइयों से दूर रहें, क्योंकि यह बुराई अपने पर ही वापस आती है। इसलिए–

''नेकी पर चले बदी से टले
ताकि हँसते हुए निकले दम''

हँसते हुए दम उन्हीं का निकलता है जो लोग नेकी पर चलते हैं और बदी से दूर रहे। यदि पूरे परिवार का यही मंत्र बन जाए कि जो भी हम खेत में बोयेंगे वही हमें वापस मिलेगा।

''इंद शरीरं कौन्तय क्षेत्रमित्यामिधीयते''

यह शरीर भी एक खेत के समान है। एक भूमि का टुकड़ा है। यहाँ पर आप आश्रम बनाते हैं तो लोग आयेंगे, सत्संग करेंगे, अगर उसी जमीन पे श्मशान गृह बनाओ तो लोग मुर्दे लाने लगेंगे। मकान बनाओ तो लोग रहने लगेंगे। जो भी चाहे आप उसके ऊपर बना सकते हैं। वैसा होने लगता है। ठीक उसी तरह से इस शरीर में भी आप जो कर्म शरीर के द्वारा करना चाहते हैं इस शरीर के द्वारा कर सकते हैं। ठाकुर ने हमें पूरी स्वतंत्रता दी है। अगर हम धर्म का ठीक अर्थ जान लें और उसकी निषेध मर्यादा को ठीक-ठाक समझ लें कि किस रास्ते पे चलना है? किस रास्ते पे नहीं चलना है, कौन सी वृत्ति आसुरी है, कौन सी वृत्ति दैवी है यह इस गीता में समझाया है। कौरवों और पाण्डवों दोनों के बीच में युद्ध है। दोनों सेनाएं खड़ी हैं। उसी तरह जीवन के चौराहे पर भी जब हम खड़े होते हैं। हर समय महसूस करते हैं कि हमारे भीतर अच्छाई भी है और बुराई भी है। सद्वृत्ति भी है और असद्वृत्ति भी है।

''शुभा शुभाभ्यां परिमार्गिताभ्यां
वहन्ति वासना सरिताः''

शुभ और अशुभ ये दो तरह की वासनाओं का जल हमारी जीवन की नदी में बहता है।

''वहन्ति वासना सरिताः''

हमें उसमें क्या करना चाहिए? तो कहते हैं–

''पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभेपथि''

अगर चाहते हैं कि जीवन की डगर पर हम ठीक-ठाक चलते रहें, हमारे जीवन की गाड़ी ठीक-ठाक चलती रहे तो प्रयत्नपूर्वक हम अपने जीवन को सदवृत्तियों की ओर मोड़ें, शुभ की ओर ले जाएं और अशुभ प्रवृत्तियों से अपने आपको अलग रखें। क्या करें उसके लिए? कौन सा मार्ग है कि हम अपने आपको अशुभ से शुभ की ओर ले जाएं? प्रकाश की ओर ले जाएं और असत्य की ओर से मुंह को मोड़ें? गीता इसके लिए बहुत अच्छी बात कहती है। गीता कहती है कि जीवन में यदि ऐसा करना चाहते हो तो सबसे ज्यादा सरल तरीका यह है कि ठाकुर को सारथी बना लो। यही अर्जुन ने किया। अर्जुन और दुर्योधन की पहचान यही है। पाण्डवी वृत्ति और कौरवी वृत्ति की पहचान यही है कि मेरे भीतर

अर्जुन है या दुर्योधन। इसमें आप किसको चुनते हैं। युद्ध शुरू होने से पहले दुर्योधन और अर्जुन दोनों विचार करते हैं । युद्ध तो शुरू होने वाला है। कृष्ण के पास सब कुछ है। चलें कृष्ण की शरण में।

ये बड़ी विचित्र बात है कि आसुरी वृत्ति अपने आपको शक्तिशाली बनाने के लिये यज्ञ करती है। जितने भी बड़े-बड़े असुर हैं सबने तप किए, साधना की, ये बात अलग है कि साधना का उन्होंने दुरुपयोग किया। इस यज्ञ से जो शक्ति प्राप्त होती है उस शक्ति का दुरुपयोग असुर ही करते हैं। रावण भी यज्ञ करता है। मेघनाद भी तप करता है। लेकिन उनके तप की फलश्रुति दूसरों को दुःख देने के लिए है। भारतीय संस्कृति किसी को मिटाने के लिए नहीं बल्कि बनाने के लिए है।

रावण मारीच को हिरण बनाकर श्रीराम के पास भेजता है। जो संस्कृति मनुष्य को भी जानवर बना दे वह आसुरी संस्कृति है, उधर राम को देखो कि राम उस राक्षस को भी दिव्य बनाते हैं। महाभारत के प्रारंभ में अर्जुन और दुर्योधन दोनों जाते हैं कृष्ण के पास। देखिए दोनों का अन्तर। क्या चुनते हैं दोनों? बस उसी दिन निर्णय हो जाता है महाभारत के युद्ध के अंत का। "यतोधर्मस्ततोजयः" उसी वक्त निर्णय हुआ कि धर्म जितेगा। जब अर्जुन पहुँचते हैं कृष्ण के पास तब ठाकुर विश्राम कर रहे हैं। जाकर ठाकुर के चरणों की ओर बैठ जाते हैं। दुर्योधन भी आता है वह ठाकुर के सिर की ओर बैठ जाता है। यह पहचान है अहंकारी व्यक्ति की, तमस से भरे हुए व्यक्ति की। जब किसी को मिलने भी जाएगा तो अपने अहं को ऊपर रखेगा। दुर्योधन सिर की ओर बैठा है। ठाकुर ने उठकर देखा तो दुर्योधन भी बैठा है। दुर्योधन ने कहा कृष्ण में पहले आया हूं। ठाकुर ने पूछा क्या चाहिए? कैसे आए हो? सारी बात बताई। युद्ध सामने है बस आपका आशीर्वाद चाहिए। आपसे मांगने के लिए आए हैं। भगवान कृष्ण ने कहा माँग लो। अब दुर्योधन को लगा कि अगर अर्जुन ने पहले माँग लिया तो जो मैं चाहता हूं वह अर्जुन ने ले लिया तो हमारा खेल ही बिगड़ जाएगा। भगवान ने पहले अर्जुन को कहा अर्जुन तुम छोटे हो। पहले तुम बताओ। तुम्हें क्या चाहिए? अर्जुन ने कहा प्रभु मुझे कुछ भी नहीं चाहिए मुझे तो केवल आप चाहिए। भगवान ने कहा अर्जुन इस युद्ध में मैं केवल निहत्था रहूँगा। मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा। एक तरफ मेरी अट्ढारह अक्षौहिणी सेना है और एक तरफ मैं अकेला हूँ। चुन लो तुम्हें क्या चुनना है। अर्जुन ने कहा ठाकुर बस मुझे आप चाहिए। "सबसे ऊँची प्रेम सगाई, प्रेम के वश अर्जुन रथ हाँक्यो भूल गये ठकुराई" मुझे और कुछ नहीं चाहिए। दुर्योधन तो सोच रहा था कि कहीं अर्जुन अट्ढारह अक्षौहिणी सेना न मांग ले। अब वह खुश हुआ। दोनों का काम बन गया। लेकिन दुर्योधन सारी सेना को पाकर भी उसी दिन हार गया। यही निर्णय है आसुरी वृत्ति का और दैवी वृत्ति का। हम ठाकुर से चाहते हैं या ठाकुर को चाहते हैं। सारी जिंदगी हम साधना करते हैं। हमारी पूजा, हमारा मंदिर, हनुमान चालीसा सब केवल

एक ही बात का निर्देश करता है कि हमें ठाकुर से कुछ चाहिए। अगर ठाकुर से कुछ चाहिए तो हम दुर्योधन हैं। ठाकुर चाहिए तो हम अर्जुन हैं। बस यही निर्णय करना है हमको। गीता यही निर्णय कराती है। यही संदेश देती है। कि हम ठाकुर से चाहते हैं या ठाकुर को चाहते हैं। जो ठाकुर को चाहते हैं ठाकुर उनका हो जाता है। ठाकुर के साथ-साथ सारी सृष्टि भी उनके लिए नतमस्तक हो जाती है और सेवा करती है।

पहली बात कि हम यह निर्णय करें कि "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" में कुरु कौन है और पांडव कौन है? आसुरी वृत्ति क्या है और दैवी वृत्ति क्या है? जो ठाकुर को चुनती है वह दैवी वृत्ति है जो अन्य संपत्तियों के पीछे भागती-फिरती है वह दुर्योधन वृत्ति है। दुर्योधन जिंदगी भर युद्ध तो हारा ही लेकिन संसार भी गया हाथ से। सब कुछ खोया। आइए आज हम इस ज्ञान यज्ञ में, सत्संग में बैठे हैं तो कम से कम हम यह निर्णय कर सकें कि हमें ठाकुर चाहिए या ठाकुर से चाहिए।

दूसरी बात ये वृत्ति बनी कैसे? इतना आसान नहीं है कि हम इस वृत्ति से मुक्त हो सकें। इस आसुरी वृत्ति से मुक्त होने का गीता में बड़ा ही सुन्दर उपाय बताया गया है। कौन हो सकता है सुखी? कौन हो सकता है शांत? कौन हो सकता है मुक्त? भगवद गीता कहती है-

"विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः"

तीन चीजें हैं जो व्यक्ति को सुखी कर सकती है। जो इच्छा से रहित हो जाए। जो भय से रहित हो जाए और जो क्रोध से रहित हो जाए। इच्छा, भय और क्रोध, ये तीनों ही चीजें बड़ी महत्वपूर्ण हैं। आज हम थोड़ी सी बात इच्छा की करें। इच्छा कभी किसी की पूर्ण नहीं होती है। कारण क्या है? इच्छा इसी तरह से है जैसे मन मेरा और तन किसी और का। हम चाहते हैं कि मेरी जो इच्छायें हैं वह सामने वाला पूरी करे। पर जब इच्छा पूरी नहीं होती तब मुक्त नहीं हो पाता है।

स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज एक कथा सुनाया करते थे। बड़ी सुन्दर बात है। जब भगवद गीता की चर्चा आती है तो उनका नाम हमें जरूर याद आता रहता है। हर साल गंगा के किनारे आकर गीता जी के विषय पर चर्चा करते थे। छोटी -छोटी कहानियों के रूप में वे उदाहरण देते थे। एक बार उन्होंने सुनायाः

एक बड़ा प्यारा बगीचा था। रोज सबेरे बगीचे में प्यारे-प्यारे पक्षी घूम रहे थे। एक दिन छोटा सा मोर का बेटा अपनी माँ से बोल रहा था। माँ मैं बहुत उदास हूँ। मुझे बहुत दुःख हो रहा है। अपने पड़ोस में जो कोयल का बच्चा है न, वह इतना सुन्दर गाता है। उसको जब भी सुनता हूँ। मेरा मन करता है मैं भी गाऊं। मेरी भी आवाज ऐसी होती तो मैं भी गा सकता। तुम मुझे उसके पास ले चलो। मैं उससे सीखूंगा। माँ ने समझाने की कोशिश की, लेकिन पक्षियों के बच्चे भी जिद करते हैं। माँ बच्चों को ले चली। सामने पड़ोसी के घोंसले के पास गई तो

सुना कि अंदर वहाँ भी झगड़ा चल रहा था। वहाँ कोयल का बेटा अपनी माँ से कह रहा था कि जब मैं खेलने के लिये जाता हूँ तो सारे पक्षी मेरा मजाक उड़ाते हैं। लेकिन सामने वाला जो मोर है न, सब उस मोर के बच्चों की प्रशंसा करते हैं। उसके पंख इतने प्यारे -प्यारे हैं। उनके रंग कितने सुन्दर हैं। सब उसकी प्रशंसा करते हैं। तो मुझे अंदर से बड़ा गुस्सा आता है। मैं क्यों नहीं सुंदर हूँ? मुझे भी ऐसे चार-पाँच सुन्दर पंख लगा दो। अब ये बात दोनों माँ बेटे बाहर से सुन रहे थे। मोर और मोर का बेटा दोनों ने ये सुना। वापस लौट आए। सोचा अरे इतना सुंदर कंठ फिर भी खुद ही परेशान हैं। देखिये आप भी मोर बन जाएं या कोयल बन जाएं कुछ भी बन जाएं तब भी जीवन में कुछ न कुछ कमी खटकती ही रहेगी।

मैंने देखा है कि एक बार Hollywood मे मुझे एक पार्टी में जाना पड़ा वहाँ Miss Universe आई थीं। उसने थोड़ी देर के बाद अपने Host से कहा मुझे स्वामीजी से बात करनी है। उसने मुझसे पांच मिनट बात की लेकिन पांच मिनट में पति के लिए क्या-क्या कहा। फिर उसके पति भी बात करने आये। उसके पति ने कहा, न जाने कौन से जन्म में क्या पाप किया था कि मेरी इससे शादी हो गई। मैंने सोचा देवता। जब ये T.V. पे आयी थी। जब ये Miss Universe बनी तो न जाने कितने लोगों ने सोचा होगा कि मेरी इससे शादी हो जाए और तेरी शादी हो गई। अब तू कहता है कि कौन से पाप की ये सजा? सच्ची बात तो यह है कि जो भी है अपने पास, उसको Miss Universe मान लो। अपनी गृहस्थी ठीक-ठीक चलेगी। अपने पास जो है उसमें हम सुखी नहीं हैं और पता नहीं क्या-क्या सपने देखते रहते हैं। जो भी हमें मिला है। जैसा भी मिला है। बस उसी में संतुष्ट रहते हुए हम अपने जीवन को आगे बढ़ायें। इच्छा से मुक्त हो ही नहीं पाते क्योंकि अपनी इच्छाएं कभी पूरी नहीं हो सकती है।

इच्छा जर्जर होत कब, जर्जर होत शरीर,
ज्यों-ज्यों जर्जर देहनिज, त्यों-त्यों अधिक अधीर

जो कश्मीर में है वह बंबई जाने को सोच रहा है और जो बंबई में बैठा है वह कश्मीर जाने की सोच रहा है। ऐसा हुआ एक बार, हमारे स्वामी धर्मानन्दजी महाराज एक महीना अमरनाथ की यात्रा करके आए। हम लोग रोज शिकारे में जाते और शिकारे में सत्संग होता था। एक महीना पूरा हुआ तो जो व्यक्ति शिकारा चला रहा था उसने कहा स्वामीजी मेरी एक इच्छा है। आपका आशीर्वाद मिल जाए तो ये इच्छा पूर्ण हो जाएगी। स्वामीजी ने पूछा क्या इच्छा है तुम्हारी? वह बोला मैंने इतने दिन शिकारा चलाया उसका पैसा मुझे नहीं चाहिए। लेकिन जिंदगी बीत गई यहाँ काश्मीर में रहते-रहते। मेरी एक इच्छा है कि किसी भी तरह बंबई पहुँच जाऊं। यह व्यक्ति की वास्तविकता है। अब देखो इंडिया में बैठे हुए लोग किसी भी तरह से अमेरिका जाने का रास्ता ढूंढ़ते रहते हैं। ये क्यों होता है। क्योंकि हम जहां हैं, जिस परिस्थिति में हैं, जो हमको मिला है उसमें हम संतुष्ट नहीं हैं। इच्छाओं की कहीं कोई

पूर्ति नहीं है इसलिए जो भी हमें मिला है उसमें हम दुःखी रहते हैं। जो सामने वाले के पास है उसको देख-देख के हम दुःखी होते हैं। मेरे पास क्यों नहीं ? सच्ची बात तो ये है कि-

''विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः''

गीता का सार यही है। सारे मंत्र समग्र मानव जाति के लिए हैं। सारे विश्व के लिए हैं। सबकी दवा है। कोई भी आए, जहाँ भी हैं, जैसे भी हैं। उससे अपने आपको ऊपर उठायें और ठाकुर की शरण लें। जहाँ सुख है ही नहीं वहाँ सुख की तलाश करेंगे तो कैसे मिलेगा। जो सुख का सागर है उसकी शरण में चलें। उसको अपना ड्राइवर बना के पीछे की सीट में बैठकर जीवन की गाड़ी को चलने दें। यही इस गीता ग्रंथ का सार है। आइए हम भी कृष्ण को अपने जीवन का सारथी बनाएं और अपनी सारी इच्छाएं उसके चरणों में समर्पित करें तथा अपने जीवन को धन्य बनायें और अपने जीवन को दिव्य बनायें।

(२०)

जीवन में सुगन्धित सुमन खिलें

"न दुश्मन है कोई अपना
न सज्जन ही हमारे हैं
हमारे ख्याल करने से
बने ये गुल व तारे"

World is nothing except angle of vision:

जैसी द्दष्टि, वैसी सृष्टि

सचमुच संसार हमारी ही दृष्टि का खेल है। जब चाहें, जिस तरह चाहें हम अपनी सृष्टि कर सकते हैं। लोग कई बार कहते हैं कि परमात्मा ने कितनी बड़ी अव्यवस्था की है, किसी को दुःखी बनाया, तो किसी को सुखी। संसार हमारी ही दृष्टि का परिणाम है। जैसा हम देखते हैं वैसा ही संसार हम पर असर बना लेता हैं। परमात्मा की बनायी हुई सृष्टि कभी भी पीड़ा नहीं देती, कभी भी दुःख नहीं देती। अगर आप ध्यान से सोचेंगे तो लगेगा कि परमात्मा ने जो कुछ बनाया है, वह हमारे लिए ही तो है। लेकिन हम अपनी सृष्टि करते हैं। अपने विचारों के अनुकूल हम अपना संसार रच लेते हैं। जैसा मैं सोचूँ, बस दुनिया वैसी ही हो। व्यक्ति अपनी ओर ही देखने लगे तो न कभी संसार से भागना पड़ेगा, और न ही उसे कभी किसी बात की पीड़ा होगी। संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है, गेरूए रंग के कपड़े पहनने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो कहता हूँ कि ऋषिकेश में आने की भी आवश्यकता नहीं है। यह बात अलग है कि ऋषिकेश, बृंदावन, मथुरा, बद्रीनाथ में आप आएं, लेकिन आप अपनी बैटरी चार्ज करके जाएँ क्योंकि संसार का वातावरण बड़ा ही विचित्र है। व्यक्ति जब यहां आकर बैठता है तो उसे सब कुछ अच्छा लगने लगता है। यहाँ की भूमि ही ऐसी है कि मन अपने - आप शान्त हो जाता है। हम घर बार छोड़ कर जरूर चले आये लेकिन उसके साथ हमारे पूर्वाग्रह, हमारा जीने का ढंग नहीं बदलता, किन्तु यहाँ आने के बाद वह ढंग भी बदलने लगता है। जिससे हम अपने जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकते हैं। इन थोड़े-से दिनों में हम अपने जीवन को बदलने के लिए ऐसा संकल्प लें कि जब हम यहाँ से अपने घर जाएँ तो वहाँ पर हमें ऋषिकेश मिले, बद्रीनाथ मिले, स्वर्गाश्रम का निर्माण कर सकें, वहाँ पर एक परमार्थ निकेतन का निर्माण कर सकें। घर बैठकर ही हम अपनी कल्पना से यह सब कुछ कर सकें। प्रबल मानसिक कल्पना से हमारे घर में स्वर्गाश्रम खड़ा हो जाएगा। इसके

लिए पहले अपने घर में आप स्वयं से शुरू कीजिए। इस बात की चिन्ता मत कीजिए, अपना सोचिए। लेकिन तकलीफ इस बात में है कि व्यक्ति अपने को न देखकर दूसरों को देखता है, वह चाहता है कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसे दूसरों को भी करना चाहिए। मैं जो कर रहा हूँ वही सही है। किन्तु याद रखिए कि सामने वाले के पास भी अपनी इच्छाएँ हैं, अपनी स्वतंत्र बुद्धि है, विचार हैं। दूसरों के विचारों का इतना आदर करना चाहिए जितना कि आप स्वयं अपने विचारों का करते हैं। व्यक्ति अपनी नजर से सब कुछ देखता है, दूसरे का विचार नहीं करता, दूसरे को सुखी देख उसे व्यथा होती है। हम जब अपने आप को 'सुपीरियर' समझने लगते हैं तब दूसरे को 'इनफीरियर' समझते हैं। हमारी छोटी-सी इच्छा भी अगर पूरी नहीं होती तो तुरन्त क्रोध आने लगता है और क्रोध में आगे पीछे कुछ नहीं देखते। जो हमें नहीं करना चाहिए वह करते हैं और कहते हैं। क्षणिक क्रोध में हम अपना तो सुख-शान्ति गँवाते ही हैं किन्तु साथ में दूसरे के भी सुख-शान्ति को ग्रस लेते हैं। क्रोध का प्रभाव पूरे परिवार पर भी पड़ता है, बच्चों पर तो यह और अधिक होता है। बच्चों के लिए संस्कारों का अत्यंत महत्व होता है, उसे बचपन से ही यह विरासत के रूप में मिलने चाहिए। आप अगर वसीयत में उसे धन-दौलत नहीं देते हैं तो कोई चिन्ता नहीं किन्तु उसे संस्कार अवश्य दीजिये। मन की छोटी - मोटी स्वार्थों की, अहंकार की गाँठों को खोल दीजिए, छोड़ दीजिए सारे झगड़ों को, बुराइयों को जिससे आप के मन में पीड़ा होती है।

आप की आने वाली पीढ़ी आप से क्या शिक्षा लेगी? क्या सोचेगी? आज की युवा पीढ़ी सब कुछ देख रही है, समझ रही है। आपकी सारी अच्छाइयों-बुराइयों से वाकिफ है। अतः कहना चाहूँगा कि अपने मन पर संयम रखें, गुस्से पर काबू रखें। इसलिए मैं बार - बार कहा करता हूँ कि *"Expectation is the mother of frustration. Do not expect but accept."* जीवन में दूसरे से कुछ पाने की चाह न करें। आप जब भी दूसरे से कुछ पाने की आशा करेंगे तभी आप टूट जाएंगे। आशा तोड़ती है, निराशा लाती है। जो आशा से रहित जीवन जीता है वह सब कुछ पाता है। परमात्मा से भी क्या माँगनाः-

'तू अपने दिल में ऐसी आह पैदा कर
तुझे मिलने को दिलवर मजबूर हो जाए।'

क्या जरूरत है परमात्मा से माँगने की, बता दे उसको भी एकबार कि मुझे भी कोई मिला था। छोटी - छोटी बातों में माँगने खड़े हो जाते हैं। प्रभु के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे कि तूने मुझे जो दिया है, वही बहुत है। परमात्मा ने बहुत कुछ दिया है तो फिर उसके आगे भिखारी क्यों बनें? पूछिए उन लोगों को जो सड़क पर पड़े हैं, पूछिए उन लोगों को जो अस्पताल में पड़े हैं, जिनको देखने वाला कोई नहीं है। पूछिए उन धनवानों से जिनके पास अपार दौलत तो है किन्तु संतानों के स्नेह की दौलत नहीं है। 'पेरेन्ट्स डे' आया और भेज दिया फूलों का गुलदस्ता, बात खत्म। आप बड़े भाग्यशाली हैं कि आपने भारत में जन्म

लिया है। भारतीय संस्कृति में पले हैं लेकिन उसके गौरव को बनाए रखना हमारा कर्तव्य है। अपने क्रोध को, आवेश को, इच्छाओं को, अपनी भूलों को, अपनी वासनाओं पर काबू पाइए और एक आदर्श जीवन जीने का प्रयास कीजिए। सिर्फ एक गलत कदम जिंदगी भर का रोना बन सकता है-

''एक भूल काफी है जिन्दगी भर रुलाने को,
लाख फूल कम है गला अपना सजाने को।''

व्यक्ति को चाहे लाखों मालाएँ पहनायी जाएँ उसकी सम्मान पाने की भूख कभी नहीं मिट सकती, बढ़ती ही चली जाती है। यही तो लोकेष्णा है। अपने जीवन का निरीक्षण कीजिए।

अपने बच्चों के सामने, अपने परिवार के सामने कभी भी झगड़ा मत कीजिए, क्रोध मत कीजिए। मैं बार - बार कहा करता हूँ कि आप अगर रामायण नहीं पढ़ सकते, भागवत् नहीं पढ़ सकते तो कोई बात नहीं, आप चार बार सत्संग करते हैं कि नहीं यह महवपूर्ण नहीं हैं, महत्व इस बात का है जो जीवन आप जी रहे हैं वह आदर्श होना चाहिए। इसे देखकर बच्चे भी आप का अनुसरण करेंगे।

हम स्वयं ईमानदार बनें:

आप चाहते हैं कि आपका किसी से झगड़ा न हो, आपको क्रोध करना ही न पड़े तो आप अपनी भाषा में मिठास लाइए। दूसरों को सम्मान दें। किसी का अपमान करने से, झगड़ा करने से आप समाज की नजरों से गिर जाते हैं, आप कहीं पर चले जाएँ, संतों के पास जाएँ या वन में चले जाएँ, कुछ मिलने वाला नहीं है अगर आप अपने आपको नहीं बदल सके तो कुछ होने वाला नहीं है। सबेरे-सबेरे एक कौआ जंगल की ओर भागा जा रहा था, कोयल ने देखा, पूछा, ''कौआ, तू कहाँ जा रहा है ?'' कौए ने कहा कि ''क्या बताऊं ?'' मेरा यह शास्त्रीय संगीत है, जो किसी की समझ में नहीं आ रहा है। वहाँ बैठकर गाऊंगा जहाँ लोग संगीत के सच्चे पारखी हैं।'' कोयल ने कहा कि ''भैया, एक बात सुनते जाओ। तुम जहाँ भी जाओगे लोग एक समान ही मिलेंगे। तुम अपने संगीत को शास्त्रीय संगीत मत समझो।'' आज यही मुसीबत है। हम अपने आप के लिए इतनी ऊंची राय बना लेते हैं कि सामने वाला इसको स्वीकार करें या न करें हम स्वीकार करवाने की कोशिश किया करते हैं। यही गलत है। सच्चे साधु पुरुष का जीवन ऐसा ही होता है। उसे न सम्मान की परवाह है न अपमान की, अपनी मस्ती में मस्त। आज हमारा जीवन अधिकतर दूसरों के सर्टीफिकेट पर चलता रहता है। अगर लोगों ने कह दिया कि हम कुछ नहीं है, तो इसको स्वीकार कर लो। अगर आप के चरित्र में बल है, आपके व्यक्तित्व में ओज है, आपके जीवन में संयम का तप है तब लोगों के सर्टीफिकेट की चिन्ता करने की आवश्यकता ही नहीं है। आप निश्चिंत होकर अपना जीवन पूरी ईमानदारी के साथ जीते रहिए। अगर आप अपने अंतरात्मा के प्रति ईमानदार नहीं हैं तो परमात्मा कभी भी आप को मिलेगा नहीं। हम अपने आप के

प्रति भी ईमानदार नहीं बनते तो किसी भी प्रकार की कोई साधना हमें स्वर्ग का दर्शन नहीं करा सकेगी। सबसे पहली शर्त है हम स्वयं ईमानदार बनें। स्वयं को बदल सकेंगे तो यह दुनिया भी हमारे लिए बदल जाएगी।

घर में आप अनाप-शनाप बोलते रहते हैं किन्तु रास्ते पर मिलने वाले लोगों से पूर्ण शिष्टता से पेश आते हैं। अमेरिका में मुझे इस बात का अनुभव हो चुका है। सभी जगहों पर क्यों प्यार से नहीं बोल पाते? सभी जगह हमें मीठा बोलना चाहिए, प्यार से बोलना चाहिए। हम मंदिर में भगवान की पत्थर की मूर्ति के आगे आदर से खड़े रहते हैं, उनके आगे झुकते हैं किन्तु समाज में हम झुक कर नहीं चलते। जब हम झुकना सीख जाएंगे, हमारे जीवन में मधुरता आएगी, हमारा जीवन स-रस बनेगा। यहाँ एक दिन के लिए रहे या दस दिन के लिए किन्तु जब जाएँ तब एक नियम लेकर जाइए। आज से हम अपने जीवन को बदलेंगे। घर जाकर 'नो प्रोब्लेम' वाला मंत्र सीख जाइए। बीबी कुछ कहे, कुछ शिकायत करे, बोले- नो प्रोब्लेम। गंभीर बात भी सरल रूप ले लेगी। आज हम यहां से संकल्प लेकर जाएँ कि जीवन में चाहे जो भी मुसीबत आए हम उसमें दुराग्रह नहीं रखेंगे। **"Do not expect but accept"** जीवन में जो भी आता है, उसको स्वीकार करते हुए अपने जीवन को आनंदित बनाइए। सुखी बनाइए। आप अपनी व्यथा खुद सुनिए। कहाँ-कहाँ अपनी व्यथा बाँटते फिरेंगे? खुद जागिए और दूसरों को भी जगाइए। यदि ऐसा कर सकें तो जीवन स्वर्ग बन सकता है।

"You are what you think" आप वही हैं जैसा आप सोचते हैं। हमारे शास्त्रों ने, हमारे संतों ने, ऋषियों-मुनियों ने, महापुरुषों ने न जाने कब से यह बात बता रखी है कि जैसा आप सोचते हैं वैसा आपका चिंतन होगा। अपने जीवन में दृढ़ बनिए। पति-पति के कर्तव्य का पालन करें, पत्नी- पत्नी धर्म का पालन करें। अगर ये दोनों अपने - अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते तो? दूसरा क्या कर रहा है यह देखे बिना सिर्फ अपने कर्तव्य का पालन कीजिए, और आगे बढ़ो। आपको अपने जीवन को करीब से देखना चाहिए। गीता और रामायण का यही संदेश है। आप में संयम होगा तो आप सम्मान भी पाएंगे। हमें व्यवहारिक बनना होगा अन्यथा जीवन की यह गंगोत्री जिससे गंगा प्रकट हुई है, हमारे जीवन को आनंदित नहीं कर सकेगी। हम गंगा जल में डुबकी तो लगा लेते हैं किन्तु इससे क्या होता है? गंगा की महिमा और गौरव के बारे में नहीं सोचते।

व्यक्ति का जीवन उसका है, उसे स्वयं इसको सजाना है, सँवारना है। हम दूसरों का अनुकरण करके नहीं जी सकते। समाज में हमें कुछ क्षण दूसरों के साथ में रहना पड़ता है किन्तु जब अपने घर में होते हैं, तब हमारे साथ सिर्फ हमारा मन होता है उस वक्त हमें अपनी साधना का ही साथ मिलता है। जब हमें अपने मन की साधना के साथ जीना है तो क्यों न हम अपने मन को ऐसा कल्पवृक्ष बनाएँ, ऐसी कामधेनु बनाएँ जिससे हमारे जीवन का चिंतन कल्पवृक्ष बन सके। विदेश में अभी-अभी नयी पद्धति चल पड़ी है- **"You are what you think"** किन्तु यह तो हमारे देश में युगों पुरानी है।

(२१)

भावभूमि वृन्दावन

निःसर्ग की अनन्त विभूषित भारत की अर्चना जगद्‌गुरु श्री शंकराचार्य ने अपने संगीतमय स्तोत्र 'सौंदर्य लहरी' में की है। संपूर्ण भारतीय काव्य इसी अनुपम सौन्दर्य की विभूति और अनुभूति से भरपूर है। भगवान कृष्ण ने इसे अपरिमेय शोभा से सभूत श्रीमयी विभूति की अभिव्यक्ति कहा है। इसी का पुञ्जीभूत केन्द्र है, श्री वृन्दावन धाम, जिसे धरती का बैकुण्ठ माना जाता है। यह एक अगोचर, सनातन आध्यात्मिक प्रतीक बन गया है। इसके दर्शन से बहिर्चक्षु पुलकित और अन्तर्चक्षु रसप्लावित हो उठते हैं। यह भगवान कृष्ण का प्राकृतिक संपदा से सम्पन्न शोभामय विग्रह ही है। अतः धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि समस्त भारतीय वाङ्गमय इसके संगीत और लीलागायन से निनादित हैं।

तीर्थ किसे कहते हैं ?

ऋषि और भक्तगण संपूर्ण सृष्टि को भगवान की ही अभिव्यक्ति मानते हैं। इस दृष्टि से यह सारा संसार ही एक तीर्थ है, जिसको तैरकर पार करने वाले तीर्थंकर बन जाता है। यह दिव्य दृष्टि सबको प्राप्त नहीं होगी। अतः भगवान कुछ विशिष्ट स्थलों पर विशिष्ट समय में अपनी लीला के द्वारा अपने को अभिव्यत करते हैं, जिसे अवतार कहते हैं। ये स्थल उनके लीला- धाम कहलाते हैं और भक्तों के लिए पूज्य तीर्थ बन जाते हैं। इनका स्थान साधारण नगरों और ग्रामों से पृथक और विशिष्ट हो जाता है, जैसे अयोध्या, प्रयाग, काशी, मथुरा, वृन्दावन, चित्रकूट आदि। इनके अतिरिक्त कुछ स्थान पौराणिक कथाओं और ऐतिहासिक चरित्रों के द्वारा महिमाशाली बन जाते हैं, जहां पर्वों, त्योहारों एवं समारोहों का आयोजन किया जाता है। ऐसे महान स्थल महापुरुषों के महान कार्यों के स्मारक चिन्ह भी होते हैं। इनमें से यदि कुछ स्थान नदी के तट, वन-खण्ड या पर्वत उपत्यका में अवस्थित होते हैं तो वे और अधिक आकर्षक बन जाते हैं, क्योंकि पर्यटक की दृष्टि से भी वे महत्वपूर्ण हो जाते हैं। श्री वृन्दावन-धाम ऐसा ही महान तीर्थ है। जन-समागम का, जनार्दन-पूजन का, प्राकृतिक सौंदर्य का तथा स्थापत्य और देव शिल्प का अतुलित भण्डार।

प्राकृतिक परिवेशः

प्राकृतिक शोभा की दृष्टि से व्रज प्रदेश का श्रेष्ठ सौन्दर्य - निकेतन है। 'ब्रज' का अर्थ होता है 'व्रजन्ति गावो यत्र' अर्थात् गौएँ चरती हैं। इस गोचारण प्रदेश का और भी अधिक सुरम्य शोभा-धाम है वृन्दावन, जहाँ सरिता, वन और पर्वत, इन तीनों प्राकृतिक विभूतियों का संगम है। गंगा को हिमालय की पुत्री होने का गौरव प्राप्त है, तो यमुना को सूर्य की पुत्री

और जीवन के नियंता यमराज की बहिन होने का। हिमालय यदि वनस्पतियों और मणियों का भण्डार है तो गोवर्धन पर्वत श्यामल दूर्वा-दल के भरपूर गो-चारण भूमियों का अभिराम प्रांङ्गण है। विन्ध्याचल के वन यदि अपनी गहनता के लिए प्रसिद्ध हैं तो वृन्दावन अपने सघन कुंजों और लताओं के लिए विख्यात है। यहाँ की यमुना की श्यामलता निराली है, उसके कमल अनुपम हैं और कमलों के भ्रमर तथा उन भ्रमरों का गुंजन बड़ा सांकेतिक है। इस महिमा को महाकवि सूरदास और नन्ददास जैसे कवि ही जान सकते हैं।

वट वृक्ष भारत का पुरातन पूज्य वृक्ष है इसलिए यहाँ अनेक वट प्रसिद्ध हैं। पर वृन्दावन के वंशी- वट का नामोच्चारण मात्र अभक्तों को भी रोमांचित कर देता है, भक्तों का तो कहना ही क्या है? वृक्षों, लताओं, कुञ्जों और शाद्वलों की जितनी जातियाँ, प्रजातियाँ और रूप-रंग तथा रेखाएँ यहाँ हैं, उन्हें कौन चित्रकार अपनी तूलिका में भर पाया है? वट, कदंब और तमाल यहाँ के तरुराज हैं। मालती, मल्लिका, जूथिका और केतकी की लताएँ यहाँ की पुष्प -साम्राज्ञी हैं। चन्द्रमा सबका है, चांदनी सर्वत्र फैलती है, पूर्णिमा सब जगह प्रसारित होती है, पर शरद-पूर्णिमा की जैसे जुन्हाई वृन्दावन में विभाजित हुई, वैसे कहीं नहीं हो पायी। तभी तो भगवान ने महारास के लिए वृन्दावन की ही भूमि और शरद-पूर्णिमा की रात्रि का चयन किया :

''दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररंजितम्।
यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभित्तम्''

(श्रीमद् भागवत-90-26-29)

''चित्रकूट की महिमा भगवान राम की चरण रज से बढ़ी है, तो वृन्दावन को गरिमा भगवान कृष्ण, भगवती राधा और कृष्ण के नृत्य की सहयोगिनी गोपिकाओं की नूपुर-ध्वनि से सदैव गुंजायमान है।

गोप-जीवन की रामणीयता :

इस ब्रज-प्रदेश को इतिहास में आभीर जाति की निवास-स्थली माना जाता है। यहाँ की ब्रज भाषा यहां की रूप-माधुरी से ही मुखर बनी है। इस जाति का व्यवसाय गौ-पालन और दूध, दही, मखन, छाछ आदि का विक्रय था, जिसकी प्रमुख मण्डी मथुरा नगर था। गोपाल-गण-गौ चरण करते थे और गोपिका समुदाय गोरस के विक्रय के लिए मथुरा जाता था। गौ-चरण किशोरों की क्रीड़ा थी और यमुना जल से गागरें भर-भर कर ले जाना गोप-किशोरियों का मनोरंजन था। ज्येष्ठ गोप-गण सामाजिक व्यवस्था करते थे। और गोप महिलायें गृह-व्यवस्था, रसोई, तीज-त्योहार आदि का आयोजन करती थीं । गोप जीवन की इस बस्ती का नाम था गोकुल, जिसके अंतर्गत उप वस्तियां थी-नन्दगांव, बरसाना आदि। नन्दगांव कन्हैया की क्रीड़ा-स्थली थी और बरसाना राधा की। इनके प्रधान नन्द महर और वृषभानु तत्कालीन आभीर जाति के प्रधान थे और युवक नेता थे कृष्ण, बलराम, सुदामा, मनसुख

आदि। इस प्रकार यह छोटी सी बस्ती अपने में मग्न थी। इसकी आत्ममग्नता भी कन्हैया-मग्नता ही थी।

यह गोप - जीवन भगवान कृष्ण की लीलाओं के लिए प्रस्तावना-स्वरूप था। उसके व्यक्तित्व का नटनागर वाला प्रारंभिक पक्ष बाल-लीलाओं के रूप में यहीं से आरंभ हुआ था। इसकी रसमय स्मृतियों को वे जीवन भर भुला नहीं सके-

''ऊधौ मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुन्दर कगरी, अरुकुंजन की छाहीं ।।''

(सूरसागर)

इस शैशव-काल में भी उन्होंने लीलाएँ तो अनेक प्रकार की थीं , यथा असुर वध, दुष्ट-दमन, कालिय-नाग को नाथना, गोवर्धन-धारण आदि पराक्रम संबन्धी लीलाएँ तथा चीर हरण, कुञ्ज-विहार और महारास आदि आध्यात्मिक शृंगार लीलाएँ। परन्तु उनकी सबसे अधिक अभिराम लीलाएँ थीं गोकुल की गलियों की बाल-लीलाएँ, वृंदावन की गोचारण-लीलाएँ, माखन-लीलाएँ, यमुना तट की कंदुक क्रीड़ा, वृक्षारोहण, आँख-मिचौली आदि किशोर लीलाएँ। इन्हीं षोडष कलाओं के रसावतार पूर्ण ब्रह्म का शैशव चन्द्रोदय के रूप में विचित्र है। यह श्रेय वृन्दावन का ही है। इन लीलाओं के कारण ही उसका महात्म्य सब तीर्थों से बढ़ गया है। इस प्रकार वृन्दावन में परब्रह्म का शैशव रस-प्लावित हो उठा है, जिसकी अनुभूति 'रसखान' आदि अनेक कवियों ने की है...

''मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौं पसु हौं तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।।''

भगवान, उनके गोप-सखाओं, उनकी सहचरी गोपिकाओं और गायों के चरण-रज ने वृन्दावन के कण-कण को सुवर्ण बना दिया है। उनका वंशीनाद एक-एक वृक्ष में प्रत्येक कुञ्ज में, यमुना की लहरों में, धरती और आकाश में, ऋतुओं और प्रहरों में इस प्रकार समा गया है कि वृन्दावन भूतल का नश्वर खण्ड नहीं , वरन बैकुण्ठ लोक का अमर प्रतीक बन गया है।

गोकुल का प्रतीकार्यः

'गौ' शब्द अत्यंत ध्वन्यात्मक, अपार अर्थगीत तथा ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक संदर्भों से जुड़ा है। अतः वह बीज मन्त्र की गरिमा से उपर उठा है और अनेकानेक उपसर्गों एवं प्रत्ययों से जुड़कर अपार ज्ञान-राशि का वाचक बन गया है। परिणामतः वह एक प्रतीक बन गया है, क्योंकि गहन दार्शनिक और धार्मिक तत्व प्रतीक-भाषा में ही व्यक्त किए जा सकते हैं। शब्द की प्रतीकात्मकता अनाहद नाद की सीमाओं को छूती है। 'गो' शब्द की प्रतीकात्मकता अनाहद नाद की सीमाओं को छूती है। 'गो' शब्द भी ऐसा ही है और उसके संयोग से विनिर्मित 'गोकुल' एवं गोलोक शब्द भी आध्यात्मिक प्रतीक बन गए है।

'गो' शब्द के पाँच प्रमुख अर्थ हैं- आत्मा, इन्द्रिय, वाक् (वाणी), धरती और पशु विशेष । इन पाँचो में आन्तरिक संबंध भी हैं। पशु 'गो' दान, तप, क्षमा, दुग्धता, मातृत्व आदि के प्रतीक हैं, अर्थात वह एक साधिका हैं। धरती में भी इस पशु के और इस पशु में धरती के ये सभी गुण विद्यमान हैं। अतः दोनों में तादात्म्य है। पुराणों के अनुसार धरती गौ के श्रंगों पर अवस्थित है। वाक् (वाणी) गौ के समान ही दुग्धप्रवाही-मधुर, तरल, उज्वल और अमृतमय। इन्द्रियां भौतिक दृश्यों और पदार्थों को पचाकर विशिष्ट मनो-रस प्रदान करती है। उनकी सम्यक् साधना के द्वारा ही आत्मोपलब्धि होती है।

वृन्दावन की गोपियों ने भगवान कृष्ण के सानिध्य में कामोन्नयन करके यही आत्मोपलब्धि की थी। गो (इन्द्रियां) की (पालक) का यही अर्थ है। अतः गोप, गोपाल, गोकुल, गोरस आदि का यह जनपद आत्मोपलब्धि की महायात्रा का मार्ग ही है, जिसकी सिद्धि महारास की लीला में हुई थी। अन्ततः शरीर में स्थित आत्मा रूपी 'गो' का गोविन्द के साथ तादात्म्य, अंश का अंशी में विलीन हो जाना ही गोकुल की सार्थकता है। यह सिद्धि वृन्दावन के बिना असंभव थी, जो महारास का लीला-स्थल था, जहां के वंशी-नाद से जड़ -चेतन-मानवादि संपूर्ण जगत् चुंबक की तरह खिंचा चला आता था।

अतः गोकुल धरती पर उस गोलोक का ही अवतार माना जाता है, जिसे भगवान कृष्ण अपनी सार्वभौम सनातन लीला के लिए अपने साथ लाए हैं। इस गोकुल मे उसी अविनाशी गोलोक का दर्शन प्रेमोपजीवी पुष्टिमार्गीय भक्तों को हुआ करता है। यह लोक अनश्वर है, अमर है, दिगदिगन्तव्यापी है। यहां नित्य यमुना बहती है, नित्य गाएं चरती हैं अनाहद वंशी बजती है और एक स्वर गूंजता रहता है-

"छबीले मुरली नैंकु बजाऊं।"

यहां की जलवायु ने मथुरा-नरेश कृष्ण के सखा परम ज्ञानी-पंडित उद्धव के दरस-परस मात्र से समस्त, ज्ञानाभिमान खण्डित कर दिया गया था। गोपिकाओं के मूक दर्शन मात्र से वे विनयी, शरणागत और भक्त बनकर भगवान कृष्ण के पास यह कहते हुए पहुंचे थेः

"छावते कुटीर कहूं रम्य जमुना के तीर।
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं॥"

(उद्धवशतक रत्नाकर)

यही है भारत के सुरम्य स्थलों की तीर्थता। प्रकाश (भा) की खोज में संलग्न (रत) यह देश ऐसे अनेक तीर्थों का संगम ही है। यहां का प्रत्येक तीर्थ देवालय, प्रत्येक देवालय तीर्थ है। देवालय में प्रभु- प्रतिमा दृश्य होती है, तीर्थ में वह अदृश्य रूप से आभासित होती है। जो मन को पवित्र कर दे, मलिनताओं को मिटा दे, प्रत्येक प्रकार के अहंकार को दूर कर दे, रज और तम से सत् तक पहुंचा दे वही सच्चा तीर्थ है, और वही सच्चा महात्मा। अतः तीर्थ, देवालय और संत धरती पर भगवान के प्रतिनिधि ही हैं।

(२२)

हरि का पत्र तुम्हारे हाथ

एक है बाहर की मिठास, एक है भीतर की मिठास। बाहर की मिठास के लिए गन्ने हैं, लेकिन भीतर की मिठास के लिए अपने जीवन को, शरीर को गन्ने बनाने होंगे। कितने ही दर्द के साथ निचोड़ना पड़े, कैसी ही परीक्षा देनी पड़े लेकिन आपका जीवन मधुरता ही बाँटे। हमारे व्यवहार में, हमारे जीवन में जो होता है वह बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

एक है जीवन और एक है परमार्थ। परमार्थ कभी किसी का कुछ भी बिगाड़ता नहीं है। परमार्थ में यदि कोई स्पर्धा करे तो क्या करे? आप चार माला फेरते हैं तो मैं आठ फेरूँगा। आपने एक अस्पताल बनाया तो हम दो अस्पताल बनायेंगे। अतः स्पर्धाभी है तो अच्छे कार्य के लिए। परमार्थ व्यक्ति को भीतर की ओर मोड़ सकता है। यदि स्पर्धा करेंगे तो भी व्यक्ति भीतर की ओर ही मुड़ेंगे। दूसरा यदि स्पर्धा करेगा तो वह भीतर की ओर मुड़ेगा। यात्रा भीतर की ओर ही होगी और जब यात्रा भीतर की ओर मोड़ लेती है तो जीवन तीर्थ बन जाता है।

इसके अतिरिक्त दूसरा है व्यवहार। हम व्यवहार में जीते हैं, जो जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण है। परमार्थ कभी किसी का कुछ बिगाड़ता नहीं है यदि कुछ बिगड़ता है तो व्यवहार बिगड़ता है। व्यवहार हमारी भाषा से, हमारे आचार-विचार से बिगड़ता है। शब्दो, वचनों और भाषा से व्यक्ति की पहचान होती है, डिग्रियों से नहीं। मैंने सुना भी है और देखा भी है कि कोयल और कौआ दोनों काले होते हैं। कोयल जब बोलती है तो लोग कितनी मधुरता से सुनते है लेकिन कौआ जब बोलता है तो लोग हाथ में पत्थर उठाकर उसे मारते हैं। क्यों? बोले -

कौआ किसका धन हरे, कोयल किसको देत।
अपनी अपनी बोली से दोनों सुख दुःख लेत।।

कौआ किसी का धन नहीं हरता और कोयल किसी को धन नहीं दे देती केवल वाणी, वाणी की मिठास लोगों को अपनी ओर खींच लेती है। वाणी की कड़ुवाहट, वाणी का जहर लोगों को, दूसरों से तो क्या, अपनों से भी दूर कर देती है।

कटुक वचन विषधर लगैं, मृदुल वचन मृदु धार
जिस रसना में रस नहीं, वे धरनीपर भार

अतः वाणी बड़ी ही महत्वपूर्ण है। कल पू. भाईश्री ने कहा था कि द्रौपदी की वाणी से ही सारा महाभारत खड़ा हुआ।

नलड़ते कुरुक्षेत्र में, कुरु पाण्डव के वीर
नहीं द्रौपदी बीधतीं कटुक वचन तीर

वाणी का महत्व है जब कि हम अपने घर में रह रहें हों। क्योंकि हमारा जीवन एक कंम्प्यूटर की तरह है। कंम्प्यूटर में आप जो फिड करते हैं और आप बटन दबाते हैं तो वही स्क्रीन पर दिखाई देता है। जीवन भी ऐसा ही है। जीवन में आप जो भी फिड करते हैं, आप जैसा भी कर्म करते हैं ठीक वैसा ही आपको वापस मिलता है। यदि किसी के साथ आप कड़वा वचन बोलेंगे तो वह आपका दुश्मन बन जाता है। किसी के साथ आप जैसा भी व्यवहार करते हैं वह आपको वापस मिलता है। यही धर्म का सार है।

महर्षि वेद व्यास से पूछा गया था कि धर्म का सार यदि बताना हो कैसे बतायेंगे? क्योंकि मैंने संस्कृत पढ़ी नहीं है। मैं गाँव में रहता हूँ। मेरी उम्र भी बीत चुकी मैं कैसे संस्कृत सीख सकूँगा? जीवन इतना व्यस्त है कि सीखने का समय भी नहीं है अतः आप धर्म का सार इस तरह से बतायें कि जीवन की अंतिम घड़ियाँ शांति से बिता सकूँ तथा जीवन अच्छी तरह से व्यतीत हो जाए तो महर्षि ने एक बात कही कि मैं कोई एक धर्म की बात नहीं करता हूँ। चाहे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई भी धर्म हो। हिन्दू धर्म की एक विशेषता यह है कि जब हिन्दू धर्म कोई भी बात करता है तो वह पूरी मानवता की बात करता है। पूरी मानवता से सुख की कामना करता है और पूरी मानवता को जीवन का सूत्र देता है। सभी धर्म के सार रूप जो हैं उसमें जो अच्छा लगे उसे धारण करे और जो अच्छा न लगे उसका दूसरे के साथ आचरण न करे। आपको कोई यदि थप्पड़ मारे और आपको अच्छा न लगे तो दूसरे को थप्पड़ मारने का प्रयास न करें। आपको कोई गाली दे और आपको यह अच्छा न लगे कि कोई आपकी पीठ के पीछे आपकी निन्दा करे तो आप भी किसी की निन्दा मत कीजिए। आपको अच्छा न लगे कि आपका घर कोई बरबाद करे तो आप भी किसी के घर को बरबाद न करें। घर और धार्मिक व्यक्ति दोनों एक ही हैं। अगर आप धार्मिक व्यक्ति हैं, आपने अपने ललाट पर तिलक लगाया है तो आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। यदि आप धार्मिक व्यक्ति हैं तो आपको केवल दो आँखों से ही काम नहीं करना है तीसरी आँख से भी काम करना है। आज्ञाचक्र के आधार पर आपको अपना जीवन सुन्दर बनाना है। केवल 'आज्ञा' का अर्थ आदेश ही नहीं है। यही है धर्म का सार।

आपने देखा होगा कि जब कोई गाड़ी बड़ी तेजी से चलती है शायद यहाँ तो कोई नियम है कि नहीं मुझे मालूम नहीं है। यदि है तो यहाँ पर स्पीडब्रेकर है या पुलिसमैन जो भी कुछ हो उसे देखते ही आप गाड़ी की स्पीड कम कर देंगे। इस प्रकार हमारे शरीर में भी इन्द्रियाँ रूपी स्पीड है जो वासना को देखकर बड़ी तेज हो जाती है। लेकिन जैसी ही स्पीडब्रेकर या पुलिसमैन देखकर आप अपनी गाड़ी की स्पीड कम कर देते हैं उसी प्रकार आप अपने जीवन में परमात्मा को लाकर वासनारूपी स्पीड को कम कर सकते हैं। जीवन में आप मार तभी खाते हैं जब आप अपने मन की सुनते हैं। आप अपनी इन्द्रियों की मानते हैं। लेकिन आपको अपने मन और इन्द्रियों को काबू में रखना है।

कैसे हम इनको वश में रखें ? कैसे हम इनको दिव्य बनायें ? पू. भाई एक बात कहा करते हैं कि भले आप दीर्घजीवी न बनो लेकिन आप दिव्यजीवी अवश्य बनो। यह बहुत ही अच्छी बात है। हम दीर्घजीवी भले न बन पायें पर हम दिव्य जीवी अवश्य बनें। हमारा जीवन दिव्य हो और यह तभी बन सकता है जब हम धर्म की बातें सुनकर इसे हम अपने जीवन में धारण करें।

द्वेष करेंगे द्वेष बढ़ेगा, प्रीति करेंगे प्रीति
जैसे मुख वैसा देखेगा, जब दर्पण केरि चीज।

यदि आप किसी से द्वेष करते हैं, आपको द्वेष ही मिलने वाला है। यदि आप किसी से प्यार करते हैं आपको प्यार ही मिलने वाला है। शीशे की यह मर्यादा है कि आप जैसे हैं वैसे ही दिखाई देंगे। यदि आपने तिलक लगाया है तो आपका दर्पण में तिलक वाला ही रूप दिखाई देगा। आप जैसे होते हैं आइने में आपको वैसा ही दिखाई देता है। यदि आप काले हैं तो शीशा आपको गोरा और यदि आप गोरे हैं तो शीशा आपको काला दिखाये ऐसा नहीं है। शीशा आपको जैसा है वैसा ही दिखाता है।

इसी प्रकार यदि आप गन्ने की खेती करते हैं, तो आपको वापस गन्ने ही मिलते हैं। यदि आप गन्ने की खेती करें और आपको वापस गेहूँ मिले ऐसा कभी होता है? नहीं मिलता है न! यदि आप गन्ने बोते हैं तो आपको गन्ने ही मिलेंगे। यदि गेहूँ बोते हैं तो आपको गेहूँ ही मिलेंगे, चावल बोयेंगे तो आपको चावल ही मिलेंगे। आप जो भी बोयेंगे आपको वापस वही मिलेंगे। भगवान ने 'गीता' में भी कहा है कि ये जो शरीर है, वह खेत की तरह हैं। आप जो भी कर्म कर रहे हैं वह आपके शरीर में परमात्मा रूपी फोटोग्राफर बैठे हैं वे आपके कर्मों की, आपके भावों की फोटो खींच रहे हैं। आपके कर्मों को लिख रहे हैं और आपके हर एक्शन को लिख रहे हैं।

हर एक्शन का एक रिएक्शन होता है। प्रकृति का नियम है इसीलिए आप अपनी जिंदगी को दूसरों की भलाई के लिए लगायें। आप अपने द्वेष को, कड़वाहट को शरीर से बाहर निकालें। जीवन द्वेष भरने के लिए नहीं, जीवन बुराइयाँ भरने के लिए नहीं। जीवन परमात्मा को अपने शरीर में बिठाने के लिए है। यदि आप किसी की बुराइयाँ सुनते रहेंगे तो आपका शरीर, मन निश्चित ही गंदा होने वाला है और निश्चित गंदा होगा। इसीलिए आप अपने जीवन को दूसरे की भलाई के लिए लगायें। परमार्थ में लगायें। आपके जीवन का कोई भी क्षण परोपकार के लिए होगा तो आपका जीवन सार्थक होगा।

नहीं वह जिंदगी है, जो नाम पाती बुराई में।
वही है जिंदगी जो पाती है भलाई में।।

जिंदगी वही है जो भलाई में नाम पाती है, न कि बुराई में, यदि आपने बुराई का बीज बो दिया, संसार से आपने कमा लिया, चीजें एकत्र कर लीं, सब कुछ आपने इकट्ठा कर लिया लेकिन लोग आपको बुरा ही कहेंगे तो यह कोई जीवन नहीं है। आप अपने जीवन को दिव्य बनायें। जीवन में परमात्मा को लाइये।

वन्दनीय वे नहीं जो, देकरसपन सुलाते हैं
रे मन उनको नमन करो, जो देकर चुभन जगाते हैं।

आपने देखा होगा कि हमारे जीवन के अन्त में जो चीज आती हैं वह परमात्मा ही होता है। लीस्ट के अन्त में परमात्मा आता है लेकिन होना यही चाहिए कि हम जिससे शुरुआत करें वह परमात्मा से करें। प्रथम परमात्मा हो, अन्त में परमात्मा न हो। बड़े - बड़े पहलवान एक सिगरेट न मिले तो वह परेशान हो जाते हैं। अगर चाय की एक प्याली हमें न मिले तो हमें सिरदर्द हो जाता है। चाय के लिए तड़प उठते हैं लेकिन परमात्मा यदि हमारे जीवन में न आये तो हमें दर्द नहीं होता है।

हमारे जीवन में परमात्मा बहुत जरूरी है। कभी-कभी लोग परमात्मा को पाने के लिए छोटा-सा रास्ता पूछते हैं कि कैसे जल्दी मिले? जीवन में यदि किसी चीज का कम या छोटा-सा रास्ता करना है तो कर देना लेकिन साधना के क्षेत्र में ऐसा मत पूछना अपने जीवन को परमात्मा से जोड़कर रखें। जिसके जीवन में परमात्मा नहीं है उसके जीवन में कभी भी खुशहाली नहीं आ सकती है। उसके पास सब कुछ है लेकिन भीतर नहीं है क्यों? क्योंकि वे किसी के साथ जुड़े हुए नहीं हैं।

परमात्मा रूपी जीवन बीमा में जिसने भी अपना बीमा कराया वह कभी भी खाली नहीं जाता। जिसने भी अपना जीवनबीमा उस इन्श्योरेंस कपनी में कराया उसे कभी भी धोखा नहीं खाना पड़ा और कभी-कभी भगवान इतना दयालु हो जाता है कि फार्म भी नहीं भरना पड़ता केवल एक बार कह दो कि मैं तुम्हारा हूँ। मैं आपका हो गया और भगवान के सामने स्वीकार कर लेता हो कि प्रभु मैं तेरा हूँ तो प्रभु पिछली फाइल नहीं देखते हैं लेकिन संसार से आप प्यार करते हैं तो संसार आपका पिछला खाता खोलता है। संसार आपका भूतकाल देखता है लेकिन परमात्मा आपका भूतकाल कभी भी नहीं देखता है वह कभी भी पुरानी फाइल या खाता नहीं देखता है। कहते हैं कि तुम मेरे सामने आ गये यही मेरे लिए काफी है।

'कुर्बान उनकी शान नहीं ले के जाइये।'

वह रहमत भी करता है तो अपनी शान से करता है कैसे? बोले - रहमत के पीछे आपको नहीं जाना पड़ता है बल्कि वह आपके पीछे आपको ढूँढ़ती हुई खुद आयेगी और पूछेगी कि कहाँ हो तुम?

आपने देखा होगा कि अक्सर मंदिरों में भगवान खड़े हुए होते हैं। क्यों? वे आपकी राह देखते हैं, हर समय, चौबीस घंटे। हर समय परमात्मा आपकी प्रतीक्षा करते हैं कभी तो

तुम आओ, कभी तो तुम आओ। मैं हर समय आपकी देख-भाल करने के लिए तैयार हूँ यह परमात्मा की दया है। ऐसे परमात्मा को छोड़कर, ऐसी जीवन बीमा कंपनी को छोड़कर आप संसार में ही लगे रहे तो मैं आपका दुर्भाग्य समझूँगा। संसार पर तो आप विश्वास करते हैं लेकिन एक बार परमात्मा पर विश्वास करके देखिये आपको कभी धोखा नहीं होगा।

मैंने देखा है कि हजाम की दुकान होती है। मुझे कभी जाना नहीं पड़ा लेकिन जो लोग जाते हैं कुर्सी पर बैठते हैं तो आँखें बंद कर बड़े आराम से बैठकर स्प्रे करवाते हैं और कपड़े गले पर रखकर वह हजाम सीधा छुरा लगा देता है। कितना विश्वास है कि हजाम के हाथ का छूरा गले पर है, आँखें बन्द हैं, कहीं हजाम ने छूरा चला दिया तो? एक ही बार में हम ऊपर चले जायेंगे लेकिन कोई शंका नहीं करते हैं।

हम एरोप्लेन में बैठते हैं लेकिन कौन पायलेट है? उसकी शक्ल तक हमने नहीं देखी। उसको पहचानते भी नहीं हैं फिर भी टिकट कटवायी, प्लेन में बैठ गये और उड़ने लगे कितना विश्वास है उस पायलेट के ऊपर । यदि आप हजाम पर विश्वास कर सकते हैं, यदि आप पायलेट पर विश्वास कर सकते हैं, जिससे आपको कभी भी, कुछ भी हो सकता है उस पर विश्वास करते हैं तो उस परमात्मा पर आपको विश्वास क्यों नहीं है? थोड़ा विश्वास करके देखिए परमात्मा का दरबार इतना आला है कि वह उनके पास जाकर ही देखा जा सकता है क्योंकि परमात्मा खुद ही निराला है।

'सखावत खुद तेरी गलियों में चक्कर काट ते देखे।'

जो दान देने वाले थे वे भी इनके दरबार में भीख माँग रहे थे कि प्रभु जो भी कुछ है वह चला न जाय। जो मेरे पास है वह छूट न जाये, जो बना हुआ है वह लुट न जाय। मेरा परिवार स्वस्थ बना रहे। मैं भी स्वस्थ बना रहूँ। मेरे जीवन में हमेशा खुशहाली ही रहे। वो भी माँगते हैं -

'सखावत खुद तेरी गलियों में चक्कर काटके देखी।
जिसने फैलाया कर अपना, तेरे दरबार में।
तुझे देता नहीं देखा, मगर झोली भरी देखी।''

कितने दयालु हैं परमात्मा। इस परमात्मा को प्राप्त करें। अगर हम इनकी ओर नहीं मुड़ते तो भले ही आप भक्ति भाव से परे हुए हों पर आप दोषी किंवा कृतघ्नी अवश्य ही हैं।

जैसे - जैसे जीवन शहरी बनता जा रहा है, इसकी व्यस्तता में वह प्रभु से दूर होता जा रहा है। लेकिन मुझे विश्वास है कि आप अपने व्यस्त जीवन में प्रभु के लिए थोड़ा - सा समय अवश्य निकालेंगे। आपने देखा होगा कि लोग जब परफ्युम लगाकर अपने धन्धे में, पार्टी में जहाँ कहीं भी जाते हैं और जिसके पास से गुजरते हैं लोग उसकी सुवास में आहाहा... करते हैं। और परफ्युम भी कैसे? नये-नये नाम निकले हैं। जैसे कि पोइजन। पोइजन को

छांटकर दूसरों को सुगन्ध आती है लेकिन परमात्मा रूपी परफ्युम आपने एक बार लगा लिया तो मैं कहता हूँ कि आपका जीवन हमेशा – हमेशा के लिए सुगन्धित बन जायेगा। आइये, इस नेचरल परफ्युम को छोड़कर अपने मन को एकाग्र करके श्रीराम कथा का जो प्रवचन चल रहा है उसको हम सुनें। मुझे विश्वास है कि 'सुगर सीटी' में रहकर श्रीराम कथा सुनकर आप अपने जीवन को मधुर बनायेंगे। याद रहे कि मुख से कोई ऐसी बात न हों, कोई ऐसी गलती न हो। कोई ऐसा व्यवहार न हो कि जिससे दूसरे का चित्त दुःखे। दूसरों को दुःख न हो इसीलिए मधुरता को पाने के लिए मधुरता के सागर में डुबकी लगाये।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

(२३)

प्यास–प्रयास–प्रतीक्षा

''मणी छे काया मानवनी जगतमां धूपसळी थजो।
सुगंधी अन्यने देवा तमे जाते बळी जजो।''

भारतीय संस्कृति के परिव्राजक संसार को संदेश देते आये हैं कि अपने समर्पित जीवन द्वारा उद्यान को हरा भरा बनाओ। आप दीर्घजीवी भले ही बनें परन्तु साथ ही साथ दिव्यजीवी अवश्य बनें। पुष्प की तरह अन्य को अपनी सुगन्ध से आल्हादित कर सको ऐसा जीवन जिओ, मशाल की भाँति प्रकाशमय जिओ, शीतल संदेश लेकर बहती गंगा की तरह जिओ।

क्षुधावर्धक औषधि जिस तरह भूख जगाती है उसी तरह संत हरिकथा के माध्यम से व्यक्ति में जिज्ञासा जगाते है। ज्ञान पिपासा पैदा करता है। यदि प्यास जग जाय तो जीवन धन्य हो जाय। एक तरह से देखें तो सभी को कोई न कोई प्यास तो होती ही है। किसी को चाय न मिले तो सिर दर्द होने लगता है, किसी को सिगरेट न मिले तो मिजाज ही खो बैठता है, जिसे पीने की आदत होती है उसे बोतल न मिले तो ऊधम मचा देता है, घर में तूफान मच जाए! ऐसे ही परमात्मा के लिए भी कभी कुछ पैदा होता है? भगवान यह बात तो विशेष रूप से देखता है कि प्यास कितनी है? अरे, भगवान तो दूर, इस संसार में भी देखें न! रोते बालक को माँ पहले खिलौना देती है, टॉफी, लॉलीपोप या कैन्डी जैसी खाने की चीजें देती है कि जिससे बालक यदि खेलने लगे तो स्वयं अपने काम के लिए जा सके, परन्तु ऐसे प्रलोभनों से यदि बालक रोना बन्द न करे तो माँ अपना काम छोड़कर बालक को अपनी गोद में ले लेती है और वात्सल्य पूर्वक दुग्धपान कराती है।

ठीक उसी तरह परमात्मा भी करता है जब हम उसके द्वारा तुच्छ भेजी गई मौलिक वस्तुओं से संतुष्ट नहीं होते, तो सांसारिक प्रलोभनों को हटाकर, 'केवल प्रभुमिलन की प्यास, प्रतीक्षा और प्रयास में ही लग जाते हैं। तब वह दौड़ा हुआ आता है और हमें गले लगाता है।'

तुझे मय देने से पहले बता दूँ, बड़ी तलब होती है पीने से पहले।
मेरे माशूक की अदा है निराली, गिराता बहुत है उठाने से पहले।।

(मय अर्थात शराब। पीने वाले कहते हैं कि यह प्रारंभ में कड़वा लगता है।)

मालिक–परमात्मा भक्त को स्वीकारने से पहले थोड़ा झटका देकर जाँचता है कि ''तुम मेरी कील के साथ बराबर बंधे हो कि नहीं ?''

'हम प्रभु को चाहते हैं या प्रभु से चाहते हैं,
हम सामान चाहते हैं या सम्मान चाहते हैं।'

प्रभु की परीक्षा में पास होनेसे पहले भगवान माता की तरह खिलौने और मिठाई देता है। मौलिक सुख-सुविधा और मान-सम्मान (सामान और सम्मान) देता है परन्तु रखता है उससे दूर। परन्तु जो इस सामान और सम्मान में नहीं खो जाते उन्हें अपना मानकर गले लगाता है और जब राजा ही अपना हो गया, सम्राटों के सम्राट ने अपना लिया, बाद में और चाहिए ही क्या?

'खुदा अपने बंदों की खुद करते हैं निगरानी,
नया बिस्तर नया मंजा, नया दाना, नया पानी।'

जहाँ जाये वहाँ नई ही व्यवस्था स्वयं अपने-आप करता रहता है। हमारा तो रोज का अनुभव है कि खुदा अपने बंदे की निगरानी खुद करता ही है परन्तु कब? जब प्यास और प्रतीक्षा एकमात्र उसकी ही हो। एक सुन्दर दृष्टान्त है। एक बार नारद जी वीणा पर हरिगुण गाते-गाते जा रहे थे कि रास्ते में एक संत मिले वे तीन साल से घर बार छोड़कर जंगल में साधना करते थे। कठोर तपस्या के कारण शरीर कृश हो गया था परन्तु जिसकी खोज में वे निकले थे वह उन्हें नहीं मिला था। इसलिए वे अत्यन्त व्यथित दिख रहे थे। नारदजी को देखकर खुश हुए और पूछा, "भगवान किस तरफ जा रहे हैं?"

नारदजी ने कहा "बहुत दिनों से प्रभुके दर्शन नहीं हुए इसलिये वैकुण्ठ जा रहा हूँ"

सन्त ने कहा "मेरा एक सन्देश प्रभु को दीजिये। जंगल में साधना करते करते तीन साल बीत गए है, अभी तक परमात्मा के दर्शन नहीं हुए है। कब होंगे" नारद जी बोले "जरूर दूँगा"। थोड़ा आगे जाकर दूसरे संत मिले जो ३० साल से प्रभु-भजन में लीन थे। नारद जी को देखते ही अपने आसन से खड़े हुए। प्रणाम करके नारद जी का सत्कार किया और विनय पूर्वक पूछा "प्रभु किस तरफ पधार रहे है" नारद जी ने कहा "वैकुण्ठ जा रहा हूँ"! तो प्रथम संत की तरह इन्होंने भी प्रभु के लिये संदेश भेजा "मै ३० साल से भजन कर रहा हूँ, प्रभु आप कब कृपा करेंगे?"

संत की नम्रता देखकर नारदजी का मन बहुत प्रसन्न हुआ। वैकुन्ठ में भगवान को मिल कर वो पहले संत के पास वापिस आये। संत ने पूछा "प्रभु ने मेरे लिये क्या संदेश दिया है?" नारद जी ने कहा कि "प्रभु ने कहा है कि आपके तीन जन्म के बाद दर्शन दूँगा" संत निराश होकर बोले, "तीन जन्म! तब तो संसार में जाकर आनन्द करते हैं। श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि जो अन्तकाल में मेरा स्मरण करते करते अपना शरीर त्याग ते हैं, उसे मेरी प्राप्ति होती है" ऐसा कह कर घर की ओर चले। नारद जी को यह सुनकर बहुत अफसोस हुआ।

साधना में धैर्य और प्रतीक्षा का होना बहुत जरूरी है। नारद जी को दूसरे संत के पास जाने में बहुत संकोच हो रहा था। कहीं ये भी अपनी साधना अधूरी छोड़ कर चले ना जायें। फिर भी नारद

जी संत के पास गए। संत समाधि में मग्न थे। परन्तु नारद जी के आगमन के लिये उत्सुक थे और सोच रहे थे कि नारद जी मेरे प्रभुका सन्देश लेकर जरूर आयेंगे।

नारद जी की वीणा के मधुर स्वर और नारायण नाम की धुन सुनकर संत ने आँखे खोली। नारद जी को आते देखकर दौड़कर भावपूर्वक प्रणाम किया। विनम्रभाव से बोले ''मेरे प्रभु का कोई सन्देश ?'' नारद जी ने कहा प्रभु ने कहा हैं, ''जिस पीपल के वृक्ष के नीचे बैढ़ कर तपस्या कर रहे हो उसके जितने पत्ते है उतने जन्मोंके बाद मेरे दर्शन होगे''। नारद जी की बात सुनकर संत आन्नदित होकर नाचने लगे। ''प्रभु मुझे दर्शन देंगे'' और भाव विभोर हो गये। संत नृत्य में मग्न थे उतने मे नारद जी के आश्चर्य के बीच परमात्मा प्रगट हुए।

यही है प्यास और प्रतीक्षा का फल। मात्र हमें अन्तर्मन से प्रार्थना करनी चाहिये।

मै तो कब से तेरी शरणमे हूँ मेरी ओर तू भी तो ध्यान दे ।
मेरे मन में जो अन्धकार है मेरे ईश्वर मुझे ज्ञान दे ।
कोई दु:ख की रैन मिले तो क्या कोई सुख की भोर खिले तो क्या ।
पतझड़ में भी जो खिला रहे मैं वो फूल बन के रहूँ सदा ।
जो लुटे ना फीकी पड़े कभी मुझे वो मधुर मुस्कान दे ।
तेरी आरती का दिया बनूँ येहि है मेरी मनोकामना ।
मेरे प्राण तेरा ही नाम लें करे मन तेरी हि आराधना ।
गुण गान तेरा हि में करूँ मुझे वो लगन भगवान दे ।
मुझ में है राग और द्वेश भी निन्दा पराई मैं करूँ ।
अहंकार को प्रभु हर लो तुम मुझे दिव्यता का दान दो ।
तेरा दर्शन सबमें किया करूँ मुझे वो नजर भगवान दे ।

लगा रहे दिल किनारे पर कभी तो लहर आयेगी, ये प्रार्थना, ये प्रतीक्षा, ये प्रयास सतत चालू ही रहे और अपना दिल वहीं लगा रहे तो लहर जरूर आयेगी। शर्ते मात्र इतनी है कि प्रयास जारी रखना चाहिये।

(२४)

जलती ज्योति

वैसे तो भारत में यह गीत बड़ा प्रसिद्ध है–
जहाँ डाल डाल पर सोने की चिड़ियां करती हैं बसेरा
जहाँ सूरज सबसे पहले आकर डाले अपना डेरा वो..

वह तो भारत देश की बात है लेकिन मैं तो कहता हूँ कि सबसे पहले सूरज तो यहाँ निकलता है।

जहाँ सूरज सबसे पहले आकर डाले अपना डेरा
वो फीजी देश है मेरा, वो फीजी देश है मेरा।

यहाँ सबसे पहले सूरज निकलता है, यहाँ सबसे पहली सुबह होती है यह गौरव आपको प्राप्त है। भले ही आप भारत छोड़कर आये हों, लेकिन भारतीय संस्कृति आपके साथ है। अब यह फीजी देश आपका है। जहाँ सूरज सबसे पहले निकलता है ये गौरव आपको प्राप्त है। इस सूरज से ही आपको बहुत कुछ सीखने को मिलेगा। सूरज से ही कुछ चीजें ले लो। सूरज को ही अपने जीवन का आधारभूत गुरु बना लें तो मैं समझता हूँ कि आपके जीवन में बहुत कुछ परिवर्तन आ सकता है। उनसे शिक्षा ग्रहण करते आप फीजी की सेवा कीजिए और बाबा लोग भी इसीलिए भगवे कपड़े पहनते हैं। जब सूर्य उदय होता है और अस्त होता है सूर्य का कौन सा रंग होता है ? ये बाबा वाला रंग होता है, भगवा रंग होता है। भगवा रंग त्याग का प्रतीक है। सूर्य प्रकाश देता है, लेकिन कभी भी प्रकाश का बिल नहीं माँगता। आपके यहाँ जो पावर सप्लाय होता है, जहाँ से बिजली आती है। वे आपको महीने के महीने या दो महीने बिल भेज देते है। सूर्य भी प्रकाश देता है, जब से आप फीजी में आये हैं उससे भी पहले लेकिन आपमें से कोई बता सकते हों कि क्या आपको कभी सूर्य ने प्रकाश न भेजा हो। कभी भी बिल नहीं भेजा। वह सदा दूसरों को प्रकाश देता रहता है ठीक उसी प्रकार आप भी दूसरों के लिए करते चले जाइये, करते चले जाइये लेकिन अपेक्षा मत रखिए। क्या हमारा जीवन भी दूसरों की सेवा करते समय सूर्य जैसा नहीं होना चाहिए? गुजरातियों के लिए कहा गया है कि–

''ज्यां ज्यां वसे एक गुजराती
त्यां त्यां सदाकाल गुजरात''
लेकिन ऐसा भी कहा जा सकता है कि–
''ज्यां ज्यां बसे एक हिन्दुस्तानी
त्यां त्यां सदाकाल हिन्दुस्तान''

उस गाँधी के देश, उस पटेल के देश से हम आये है। यहां फीजी में रहते हुए आपको एक बात याद रखनी है कि पटेल ने केवल एक रियायत को नहीं बल्कि 600 रियासतों को एक कर दिया तो आप सब पटेल मिलकर फीजी देश को एक नहीं कर सकते ? यदि आप एकता को मानते हैं, गांधी को मानते हैं, गांधी ने विदेश में रहकर अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ाई की। उस गुलाम देश को, जहाँ से आप आये हों उसको स्वतंत्र करने के लिए अपनी संस्कृति की ज्योति को, संस्कार की ज्योति को, अपने देश की अस्मिता की ज्योति को, अपने भीतर जलाकर रखा। उन्होंने विदेश में रहकर भी अपने देश को आजादी दिलाई।

जिसके देश में, जिसके साम्राज्य में कभी सूरज छिपता ही नहीं था ऐसा ब्रिटेन उसके सामने भी गाँधीजी ने दिखाया कि भारत में भी आजादी का सूर्य निकल सकता है। मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आपको अंग्रेजी किताब खोलने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी इतना सब कुछ भरा पड़ा है अपने ग्रंथों के अंदर। आइये, आप सब एकता से रहें। बच्चे, आप सब नशीबदार हैं कि आपके माता-पिता पैसादार हैं। लेकिन आपके माता-पिता को बचपन में कितना काम करना पड़ता था। कितनी गुलामी सहन करनी पड़ी। उसके बाद मिलता क्या था? कुछ भी नहीं । लेकिन इतनी मेहनत के बाद फीजी में ही नहीं बल्कि पूरे संसार में जहाँ-जहाँ भारतीय हैं उन्होंने अपने परिश्रम और पुरुषार्थ के बल पर, एकता के बल पर, अपनी शिक्षा के बल पर, हर जगह अपने भारत का नाम ऊँचा किया है।

भारतीय एक ऐसी जाति है जो कंधे से कन्धा मिलाकर खड़ी होती है। केवल भारत के लिए ही नहीं , फीजी अब आपका देश है, अब यह तुम्हारा देश है। भारतीय और फीजीवासी दोनों मिलकर अपने फीजी के लिए, उसके विकास के लिए, खूब मिलिये। मैं तो कहूँगा कि सूर्य जिस प्रकार चौबीस घंटे काम करता है। कभी भी उसने विश्राम नहीं लिया केवल आपके लिए। इस प्रकार यहाँ बैठे सब लोगों को फीजी देश की सेवा के लिए, फीजी देश के उत्थान के लिए सबको मिलकर काम करना चाहिए, एकता से आगे बढ़ना चाहिए। पहले अपने घर में एकता लाइए, फिर कुटुम्ब में, फिर समाज में और बाद में राष्ट्र में लाइये और अपने देश को महान बनाइये, क्योंकि जो व्यक्ति जहाँ रहता है वहाँ को उसे आगे बढ़ाना चाहिए। यही सच्ची भारतीयता है, यही सच्चा गौरव है। यही सच्ची संस्कृति है। सब सुखी हों, सब तंदुरुस्त हों, कोई रोगी न हो, सब निरोगी बनें। सबकी भलाई का दर्शन करें किसी को कोई तकलीफ न हो यही सच्ची भारतीयता है।

सर्वे भवन्तु सुखिन:
सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु,
मा कश्चिद दु:ख भाग भवेत।।

(पाण्डव गीता २८)

फीजी के बारे में मैं अपने विचार पेश करूँ, अपने विचारों का आदान-प्रदान करूँ इससे पहले मैं एक बात फीजी के बारे में कहना चाहता हूँ कि अगर विश्व में किसी धरती ने मुझे सबसे ज्यादा आकृष्ट किया है तो वह है फीजी।

मुझे याद है कि दो वर्ष पहले इलाहाबाद में कुंभ मेला था उसके बाद जगदगुरु शंकराचार्य जी महाराज ऋषिकेश में, हिमालय की गोद में, गंगा के किनारे जो आश्रम है वहाँ पधारे और उन्होंने वहाँ नवरात्रि के अवसर पर 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दुइजम' की सफलता के लिए एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। यज्ञ की पूर्णाहुति के अवसर पर उन्होंने कहा था कि चारों धर्म के मठ की स्थापना करने के बाद आदि शंकराचार्य जी ने जहाँ अपने रहने के लिए जगह बनायी उसे 'काँची मठ' कहते हैं। बड़ा पवित्र स्थल है। शिव और विष्णु की नगरी है 'काँची'। ऐसे पवित्र स्थान पर उन्होंने अपना मठ बनाया और वहाँ वे रहे। इस मठ में जो शंकराचार्य रह रहे हैं उनका कहना है कि यदि मैंने अपने मठ को छोड़ा तो ऋषीकेश में या परमार्थ निकेतन में आकर रहूँगा। इसी प्रकार जब - मैं फीजी की धरती को याद करता हूँ और पहले भी जब मैं आया था तब से मेरी इच्छा थी कि पू. भाईश्री भी जिन्होंने पूरे विश्व में रामकथा और भागवत् कथा की त्रिवेणी बहायी है। वे भी यहाँ आये तथा जब मैंने पिछली बार इस पावन धरती को देखा तब मैंने भी सोचा कि यदि मैंने भी भारत को छोड़ा, ''मुझे मालूम नहीं है कि प्रभु की क्या लीला है?'' लेकिन यदि मैंने कभी छोड़ा तो वह स्थल होगा फीजी जहाँ मैं आकर रहूँगा।

मुझे याद आती है विवेकानन्द की, जिनको गए हुए 1993 में 100 वर्ष पूरे हुए हैं। जिन्होंने भारत की आध्यात्मिकता का उद्घोष पूरे विश्व में किया था। अमेरिका में किसी ने उनसे पूछा था कि भारतीय संस्कृति का ध्वज लहराने के बाद और यहाँ की संस्कृति को देखने के बाद आपको भारत की याद कभी आती है? और आपको भारत कैसा लगता है? तो मानवता और आध्यात्मिकता के उस पुजारी ने उत्तर दिया, ''इस देश की संस्कृति को देखने के बाद पहले तो मैं केवल भारत को प्यार करता था लेकिन अब मैं उसकी पूजा करता हूँ''। क्या था भारत देश की संस्कृति में कि आध्यात्मिकता के उस पुजारी विवेकानंद को भी पूजा करने के लिए बाध्य होना पड़ा? वह थी रामायण, भागवत, गीता और वहाँ का भाव जो 150 वर्ष पहले हमारे हरिशर्मा जी ने बताया कि जिस संस्कृति को लेकर भले ही खाने के लिए पैसे जेब में थे या नहीं थे, लेकिन रामायण का गुटका लेकर जो पहली बार हमारे भाई उतरे और आज तक मैं देखता हूँ अमेरिका में भी देखता हूँ तब मुझे रोना आता है। 25 साल पहले अमेरिका, यूरोप, ब्रिटेन, फ्रांस आदि देशों में गये और पहली पीढ़ी अपनी भाषा गँवा बैठी। अपनी वेशभूषा गँवा बैठी, लेकिन 150 साल हुए, मुझे फीजीवासियों आप पर गर्व है कि इतने साल हुए फिर भी आपने अपनी भाषा और वेशभूषा को जारी रखा है। यही कारण है कि स्वामी विवेकानंद को कहना पड़ा कि मैं अपने देश को केवल प्यार ही नहीं करता बल्कि

पूजा भी करता हूँ। मुझे आप पर गर्व है। जहाँ देखो पीपल के पेड़, पूजा, ठाकुर पूजा। आपने तो यहीं वृन्दावन बना दिया।

आज मुझे भारत को देखकर भी कभी–कभी दुःख होता है कि वह ठाकुर पूजा, वह मंदिर पूजा कहीं –कहीं घरों में लुप्त होने लगी है लेकिन यहाँ के लोगों ने तो अपने घर–घर में ऐसा वातावरण बनाया है कि हनुमान जी की ध्वजा आज भी यहाँ लहरा रही है। मुझे लगा कि और क्या उपयुक्त होगा? अमेरिका की धरती पर जाने वाले हमारे हनुमान दादा और शिव जी पधारे तो मुझे लगा कि नहीं –नहीं बिना फिजी हनुमान दादा और शिवजी को अमेरिका नहीं जाना चाहिए। हम अमेरिका जाएं। पहले हनुमान दादा जो हमारी संस्कृति के वाहक हैं और भगवान शिव जिन्होंने विविधि कलाओं को जन्म दिया, हमारी भाषा को जन्म दिया। हमारी देवभाषा को जन्म दिया उनको वहाँ जाना चाहिए। हमारे फीजीवासियों ने हमारी संस्कृति को जीवित रखा है।

शिव और उनका ही रुद्रावतार हनुमान जी यहाँ बिराजमान हैं उनके सानिध्य में पू. भाईश्री और उनकी छाया में हम सब यहाँ बैठे हैं? उनके सानिध्य में यह कार्यक्रम होने जा रहा है। मैं आपसे एक बात कहने जा रहा हूँ कि जब मैं पहली बार फीजी आया और एरोप्लेन से उतरा तब एक कन्या ने मुझसे कहा कि 'नमो नारायणाय' यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। आज जब हम दोनों मोटर में आ रहे थे तो हमें क्या लगा? जैसे हम अपने घर में आ गये। लगता ही नहीं कि विदेश में आये हैं। फीजी में आकर हमें लगता है कि हम अपने घर में आये हैं। लगता ही नहीं कि हम भारत से बाहर हैं। यह गौरव भी आप को जाता है। वह रामकथा, वह रामायण, वह रामचरितमानस जिसे केवल तुलसीदास ने लिखा ही नहीं बल्कि भगवान शंकर ने उन पर अपनी हस्ताक्षर भी किया।

जब विश्वनाथ की नगरी में सन्त तुलसीदास पहुँचे और तुलसीदास जी ने रामचरित मानस लिखा, लिखकर पूर्ण हुआ। विद्वानों ने देखा और उनको बड़ी जलन हुई। हम यहाँ वर्षों से रह रहे हैं ये बाहर से अभी –अभी आया है और हमसे भी ज्यादा प्रसिद्ध हो जायेगा। अतः उन्होंने सोचा, नहीं हम इसे प्रसिद्ध नहीं होने देंगे। तो विद्वानों ने एक गोष्ठी की जिसमें तय हुआ कि हम इसे मान्य ही नहीं करेंगे ऐसा कठोर निर्णय लिया। एक विद्वान ने कहा कि। अगर सब लोग उनकी ही तरफ बोलने लगे तो हम इसे कैसे मान्य करें? तो हम कहेंगे कि इस ग्रंथ को भगवान विश्वनाथ के मंदिर में रखा जाय। दरवाजा बन्द कर दिया जाय यदि भगवान विश्वनाथ इस पर अपनी मोहर लगा दें तो सचमुच यह रामकथा, रामचरितमानस सत्य ग्रंथ है क्यों कि इस पर भगवान विश्वनाथ की मोहर होनी चाहिए। उनके हस्ताक्षर होने चाहिए। आपको आश्चर्य होगा कि जिस 'रामचरितमानस' की कथा आप सुन रहे हैं उसे विश्वनाथ के मंदिर में रात के समय रखा गया और जब सुबह होने पर देखा तो उस पर लिखा था 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'। इस प्रकार भगवान शिव ने अपने हस्ताक्षर कर दिये 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूप में। ऐसी है हमारी रामायण। जिस ग्रंथ को लेकर, जिस कृति को लेकर जिस देश में से

आप आये हैं उस देश में नरसिंह ने जन्म लिया है, सन्तों ने जन्म लिया है वह भूमि केवल ताजमहल की भूमि नहीं है। भारत की भूमि विशाल बगीचे और कश्मीर की भूमि ही नहीं है बल्कि भारत को गौरव प्राप्त है तो वहाँ के सन्तों के कारण, वहाँ की रामायण, गीता और संस्कृति के कारण। महाभारत की 'गीता' और रामायण की 'सीता' को हटा लिया जाय तो भारत का रूप ही बदल जायेगा।

अतः महाभारत की गीता और रामायण सीता दोनों ही भारतीय संस्कृति के रक्षक हैं। इन दोनों ने भारत को जीवन दिया है। हजारों साल से चले आ रहे भारत को जीवन दिया है। यह गौरव इन दोनों ग्रंथों को प्राप्त है। आज मैं युवाओं से कहना चाहता हूँ। आज मुझे उसको अंग्रेजी में कहने की आवश्यकता नहीं होगी। मैं समझता हूँ कि वे लोग हिन्दी जानते होंगे। इन युवकों को गौरव लेना चाहिए कि जिस धरती पर हमारे माता-पिता ने जन्म लिया है उस मिट्टी में राम और कृष्ण ने भी जन्म लिया है वह धन्य है। मुझे अमेरिका में एक बच्चे ने कहा कि स्वामी जी जिस अयोध्या में राम ने जन्म लिया और जिस ब्रजभूमि में कृष्ण ने जन्म लिया उस अयोध्या और ब्रज की भूमि की मिट्टी को आप अपने साथ ला सकते हैं? मैं उस मिट्टी को अपने साथ रखूँगा। मुझे तो पता नहीं हैं कि मैं अपनी मम्मी पापा के साथ वहाँ कब जाऊँगा लेकिन आप उस पावन मिट्टी और प्रसाद अपने साथ ले आइयेगा।

तो मेरे युवकों! आप बड़े भाग्यशाली हैं कि ऐसी मिट्टी में जहाँ आपके माता-पिता ने जन्म लिया है, आपके पूर्वजों ने जन्म लिया हैं, उनकी संतान आप है। उनकी सन्तान होने के नाते, उस गौरव को आपके माता-पिता के साथ अपनी भाषा के रूप में, अपनी वेशभूषा के रूप में, अपनी संस्कृति के रूप में जीवित रखना होगा क्योंकि जिस देश की भाषा सदैव जाती रहती है, उस देश की संस्कृति भी सदा के लिए चली जाती है। जिस संस्कृति को आपके पूर्वजों ने 150 वर्ष से जीवित रखा है, उस संस्कृति की मशाल को अपने हाथ में लेकर केवल फीजी में ही नहीं बल्कि आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि देशों में जहाँ अपने भाई हैं, वहाँ-वहाँ एक प्रतीक के रूप में, एक उदाहरण के रूप में हमारे युवक इस ज्योति को लेकर चलेंगे और उसको भी प्रेरणा मिले कि यहाँ के युवक कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते? आप इन लोगों को प्रेरणा दें यही मेरी प्रार्थना है।

(२५)

जीवन–ज्योति

मुझे मात्र आठ वर्ष की छोटी उम्र में ही सुहावने तीर्थस्थान बद्रीनाथ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज फीजी के पहाड़ों और नदियों को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि मानो बदरीनाथ में हूँ। फीजी का 'बा' शहर मुझे तो बद्रीनाथ का एक रूप ही लगता है। यहाँ के लोग अत्यन्त दयालु और भक्तिभाव से भरे हैं। अभी इस सभाखंड में हमने प्रवेश किया तभी यहाँ की परंपरा के अनुरूप प्रज्ज्वलित मशालों और टिमटिमाते हजारों दीपकों द्वारा स्वागत किया गया। प्रभु से हमारी प्रार्थना है कि एकत्रित हुए आप सभी के हृदय में और देश के समस्त जनजीवन में ऐसे ही दिव्य प्रकाश व्याप्त रहें तथा धर्म ज्योति सदा जलती रहे। आप सभी ने मेरा स्वागत किया इसका मैं आभारी हूँ जिसके जीवन में भक्ति होती है वही दूसरे का सम्मान करता है।

प्रश्न यह उठता है कि ऐसे जीवन ज्योति प्रज्वलित कैसे हो? ऐसा क्या किया जाय कि अंतः करण में प्रकाश का पदार्पण हो? वैसे तो महात्मा कबीर की वाणी है, परन्तु उसमें थोड़ा परिवर्तन करके कहें तो–

''आदत बुरी सुधार लो बस जल उठेगा दीप
आदत बुरी सुधार लो बस जल उठेगी ज्योति
मन की तरंग मार लो बस जल उठेगी ज्योति।''

इन पंक्तियों में मन की ज्योति जलाने का विधान बताया गया है। हमारी आंतरिक ज्योति धुंधली क्यों पड़ती जा रही है? इसका कारण जीवन में आने वाली बुराइयाँ हैं। हम जब भी बुरी आदतों के शिकार बनते है तब मन की तरंगें हमें परेशान करती है। तब हमें यह लगता है कि हमारा संयम द्वारा, दैनिक व्यवहार में अनुशासन द्वारा, संतों के समागम द्वारा क्रमशः ऊँचा उठने का प्रयत्न करना है, काम की ओर से हटने का प्रयत्न करने लगता है तो उसका यात्रापथ राममय बन जाता है। यह जीवन ज्योति जागृत होने के पश्चात आप चाहे महलों, हवेली या झोपड़ी में रहें आपके जीवन में एक परिवर्तन आयेगा।

महात्मा बुद्ध का जीवन चरित्र देखें, धन–धान्य एवं ऐश्वर्य से भरपूर राजवैभव! क्या कमी थी इस राजकुमार के वैभव में? इनके जन्माक्षर को देखकर पंडितोंने भविष्य की घोषणा करते हुए कहा कि या तो राजकुमार एक महान सम्राट बनेगा अथवा महान साधु। अपने प्यारे लाड़ले को साधु बनाना कौन चाहेगा? मजेदार बात है। प्रत्येक घर में महात्मा पैदा होना चाहिए। वास्तव में तो ऐसा ही होना चाहिए कि हर आदमी महात्मा बने। परन्तु वहाँ पिता को चिन्ता हुई कि ''मुझे तो एक ही पुत्र है, वह यदि साधु हो गया तो मेरा यह राज्य

कौन संभालेगा?'' पिता ने ऐसी व्यवस्था की कि ऐसा कोई व्यक्ति नजर न पड़े जिससे उसमें वैराग्य उत्पन्न हो।

बहुत सालों तक यह क्रम बना रहा था कि जिसमें माया के बंधन में बंधकर सिद्धार्थ में वैराग्य का संस्कार दबा रहा। वह वैराग्य का मार्ग भूल गये और अपने अंदर जलती ज्योति का दर्शन यह नहीं कर सके। इस रोक के बाद भी इतिहास तो सभी जानते हैं कि क्या हुआ? सघन उपाय होने पर भी क्रमशः वृद्ध, रोगी और मृत व्यक्तियों के दर्शन द्वारा उनका आंतरिक दीप पूर्ण रूप से प्रज्ज्वलित हो उठा। उसकी भूख-प्यास और नींद उड़ गई। रात-दिन एक ही चिंतन शुरू हुआ। यदि जीवन ऐसा हो तो किस काम का? कोई ऐसा जीवन खोजना चाहिए जिसमें व्याधि या मृत्यु के दुःख का सर्वथा अभाव हो। यह सोचते ही एक रात्रि को राजकुमार सिद्धार्थ ने पास में सोयी हुई पत्नी 'यशोधरा' और प्रिय पुत्र 'राहुल' को छोड़कर ऐसे दुःख रहित जीवन की खोज के लिए चल पड़े। विपुल साधना का दृढ़ निश्चय किया, ''मेरा जीवन भले ही सूख जाये परन्तु ज्ञान प्राप्त करके ही रहूँगा।'' परिणामस्वरूप उन्हें जीवन ज्योति का दर्शन हुआ। राग विराग से परे वीतराग

मुझे मात्र इतना ही कहना है कि आप सभी 'बा' में नहीं बल्कि बदरीनारायण में बस रहे हैं, ऐसा प्रतीत होना चाहिए। सिद्धार्थ दूसरे की बीमारी देखकर जग गये और निर्णय कर लिया। हम तो रोज बीमार पड़ते हैं। सिद्धार्थ तो दूसरे को वृद्ध हुए देखा और स्वयं चल पड़े हम तो दूसरे को वृद्ध होते देखते-देखते स्वयं भी वृद्ध हो गये। सिद्धार्थ तो एक ही मृत व्यक्ति को देखकर चले गये, हम तो रोज किसी न किसी की मृत्यु देखते रहते हैं फिर भी जागते नहीं। जीवन की ज्योति नहीं जलती। कैसे जलेगी यह जीवन ज्योति? हमें अपनी बीमारी का दर्शन कैसे होगा? यह दर्शन होता है संतों के चरण में बैठने से, रामकथा रूपी दर्पण के सामने बैठने से, जब यह दर्शन होता है तब जीवन की दृष्टि बदल जाती है और जैसे ही जीवन दृष्टि बदलती है कि तुरन्त समग्र सृष्टि बदल जाती है। धन्य है महापुरुषों का संग, बदल देता है जीवन का रंग।

संतों के सामने बैठने से हमें जीवन को निरखने का एक दर्पण प्राप्त होता है। बहुत बार व्यक्ति स्वयं अपना दोष नहीं देख पाता, इसलिए भूल करता रहता है, करता ही रहता है परन्तु जब सत्संग का आश्रय लेता है तब सुधार कर लेता है। लुटेरा से रामायण का रचयिता बनकर आदि कवि वाल्मीकि के जीवन वृतांत को सभी जानते हैं। रामनाम का सही आचरण भी न कर सकने वाले उस लुटेरे ने संत के उपदेश से साधना द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त की और उसका पूरा जीवन बदल गया।

यह आप सभी का सौभाग्य है कि आज यहां फिजी में आप सभी पूज्यभाई जैसे संत के दर्शन और सत्संग का लाभ ले रहे हैं। कारण कि संत समागम और हरिकथा ये दोनों अत्यन्त दुर्लभ हैं जो आप सभी को प्राप्त हो रहा है। कहा है कि-

"सुत, दारा और सम्पत्ति घर में होय।
संत समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ सोय।।"

सुत अर्थात पुत्र, दारा अर्थात पत्नी और सम्पत्ति तो सभी के यहां प्राप्त हो सकती है। परन्तु संत का समागम और भगवान की कथा ये दो वस्तु अत्यन्त दुर्लभ हैं।

आपके पास अन्य सभी वस्तुऐ सहजता से मिल जाती हैं परन्तु ये दोनों वस्तुऐ प्राप्त होना अति दुर्लभ हैं। आप सभी सौभाग्यशाली हैं। आपसे एक विशेष बात कहना चाहता हूँ कि आप सभी अपने परिवार में रामकथा के माध्यम से परमात्मा का दर्शन करें तथा अपने आपका परीक्षण कीजिए कि आप कहाँ खड़े हैं? आप रावण की तरह अहंकार लेकर खड़े हैं कि त्याग की भूमि पर स्थिर हैं? इस बात का जरूर चिंतन करें। कारण कि मनुष्य छोटी - छोटी बातों में घर को नरक बना देते हैं। मैं हमेशा कहता रहा हूँ कि आप अपने परिवार को जोड़िये और जुड़िये। एकत्रित आप सभी भारतवासी चाहें जितने वर्ष से यहाँ बसते हों और इस धरती को समृद्ध बना रहे हों परन्तु आप सभी को सबसे बड़ा योगदान देना हो तो यह है परस्पर सहयोग और आपका शांतिपूर्ण पारिवारिक जीवन।

यह सहयोग की भावना तभी टिक सकती है जब आप छोटे-छोटे घरों से बाहर निकलें। संकीर्णता की दीवारों को तोड़ डालें, अधिकार की बातों से ऊपर उठें। कारण कि अधिकार की भावना ही एक ऊँची दीवार बनाकर प्रेम में अवरोध पैदा करती हैं। जब प्रेम टूटता है तब परिवार टूटता है, समाज टूटता है।

संतों के चरण में बैठने और रामकथा के दर्पण में देखने का फल है कि हम अपने अहंकार को समझ सकें। अपने दोष का दर्शन कर सकें। झुकने की कला हमें यहाँ से ही मिलेगी।

'झुकता तो वह है जिसमें जान होती है।
अकड़न तो मुर्दे की पहचान होती है।।'

तो अब यह निर्णय करना है कि जानवान बनना है या मुर्दा। अंदर के अहंकार को गला दो। अपने अहंकार की कार पर जो सवार होता है वह कभी भी मंजिल नहीं पहुँच सकता। लोग भले ही यह मानते हों कि समाज में हम सीना तानकर चलते हैं इससे समाज में हमारा नाम है परन्तु मैं यह मानता हूँ कि जो लोग अहंकार को साथ लेकर घूमते हैं। अहं की कार पर सवार होकर चलते हों इसके पश्चात जब वे अहंकार की कार से उतर कर जब कभी वे पैदल चलते होंगे तब लोग उन्हें चूम लेंगे। प्यार से सराबोर कर देंगे।

रामकथा के माध्यम से आपको यह वस्तु प्राप्त करनी है। स्वयं अपने आपसे झकझोर कर पूछना कि स्वयं किस भूमिका पर खड़ा है। अहंकार एक ऐसी वस्तु है। ऐसा सूक्ष्म विषय है कि यह कब अन्तर्ध्यान हो जाय उसकी खबर भी पढ़ने को नहीं मिलेगी। हमारी

संस्कृति तो आंतरिक दर्शन की है। हम सभी संत के सान्निध्य में बैठकर रामकथा के साथ में रहकर अपने आप का अबलोकन करना सीख सकते हैं। ये सभी बातें मैं विश्वासपूर्वक कह रहा हूँ कारण कि मुझे अत्यन्त छोटी उम्र में संतों का समागम प्राप्त हुआ। यदि आप भी संतों के चरणों में, राम के चरणों में झुक जायें तो आप देख सकेंगे कि ये नमस्कार सम्पूर्ण आपके जीवन में एक चमत्कार का निर्माण करेगा और आपका जीवन सम्पूर्ण बदल जायेगा। परन्तु यह चमत्कार तभी अनुभव किया जा सकता है जब हम अहंकार रूपी रावण को अपने अंदर से विदा कर दें। अंदर के इस रावण का संहार करने के बाद ही हृदय रूपी अयोध्या में रामजी की स्थापना कर सकते हैं। यह बात तभी संभव हो सकती है जब श्रीराम के पावन चरण अपने अंदर प्रतिष्ठित हों और प्रभु के पावन होंठ अपावन होंठ को स्पर्श करें। ऐसा होगा तब जीवन बदल जायेगा। एक बार मैंने अपने गुरुजी को लिखा था कि –

"दो गुलाब के होंठ छू गये
(ये दो गुलाब के होंठ ये प्रभु के पावन होंठ हैं।)
दो गुलाब के होंठ छू गये,
जब से होंठ अपावन मेरे,
ऐसी गंध बसी है मन में,
सारा जग मधुवन लगता है।
तुम्हें देख के लगता है,
किसी की सूरत नहीं पराई।
तुमने क्या छू दिया, बन गई,
महाकाव्य गिली चौपाई,
कौन करे अब मठ में पूजा,
कौन फिराये हाथ सुमरनी,
जीवन हमें मंगल लगता है,
मरना हमें हवन लगता है।"

संतों के समागम की यही सार्थकता है। यही फलश्रुति है कि जब जीवन में रामकथा का प्रवेश होता है तब कोई व्यक्ति पराया नहीं लगता।

कुरान कहता है कि आलम अल्लाह की प्रजा है, उसकी सृष्टि है। परन्तु रामायण तो उससे आगे बढ़कर कहती है– यह सब कुछ राममय है। रामायण मात्र इतना ही नहीं कहती कि संसार राम का परिवार है। यह तो चराचर जगत को राम का स्वरूप जानना सिखाती है। यह मार्मिक बात है कि जब आप श्रीराम में प्रवेश करते हों तब आपके जीवन में राम प्रवेश करते हैं और बाद में 'सीय राममय सब जगजानी' इस चौपाई का अर्थ आत्मसात होता है।

फलतः यह जगत परमात्मा का एक अंग मानने के बदले सृष्टि के कणकण में इस प्यारे प्रभु की झाँकी होती है। संपूर्ण जगत राममय दीखता है। इस तरह से राम का दर्शन कराने का श्रेय इस रामचरित मानस को है। इन संतों को है। जब ऐसी दृष्टि प्राप्त होती है। तब एक दूसरी घटना घटती है। वह यह है कि प्रभु को आप अपने अंदर लायेंगे और जब परमात्मा अपने अंदर प्रतिष्ठित होंगे तब आप अपने मन की शंका रूपी लंका को जला सकेंगे और बाद में आपके अंतःकरण में वास्तविक रूप में राम का राज्याभिषेक होगा। श्रीराम के इस पदार्पण के बाद मन के सभी संशय मिट जायेंगे।

मानस की चौपाइयाँ हैं तो छोटी–छोटी परन्तु वे एक महाकाव्य की पंक्तियाँ हैं। आपका जीवन भी एक महाकाव्य बन सकता है। जब आप खुद ही जीवन काव्य लिखना बन्द करते हैं तब खुद परमात्मा आपके उस काव्य पर हस्ताक्षर करता है। बाद में कुछ लिखना ही नहीं रह जाता। आपने मानस की चौपाइयाँ ध्यान से पढ़ी हैं? जो कोई पढ़े उसे वह अपनी ही लगती है। दूसरा कोई भी उसकी नकल नहीं कर सकता। यह सब तभी हो सकता है जब हम स्वयं अपने जीवन की पुस्तक पर हस्ताक्षर करना बंद कर दें तभी परमात्मा स्वयं उस पर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् लिख देता है और वह स्वयं उस पर हस्ताक्षर कर देता है। प्रभु जब हस्ताक्षर करेंगे तभी अपना जीवन राममय बनेगा।

(२६)

आध्यात्मिक अनुभवःव्यष्टि और समष्टि

आध्यात्मिक अनुभव व्यक्ति विशेष के नहीं होते। व्यक्ति तो क्षण विशेष में उनका केंद्र या माध्यम मात्र होता, वस्तुतः वे समष्टि के ही होते हैं। व्यक्ति विशेष के मानस में ऐसा अनुभव तरंग के रूप में अनायास हिलोर ले उठते हैं जैसे कि सागर के विशाल तट पर एक प्रतिध्वनित लघु लहर या नीलाम्बर के विराट वक्ष में पवन का हल्का सा झोंका, जो कि किसी विराट का अंश मात्र होता है। अतः ऐसे अनुभवों के माध्यम से अनजाने ही हमारे भाव-तंत्र का विस्तार होता है और हम परिवार, पड़ोस, समाज, देश, राष्ट्र, विदेश-समुदाय और जड़-चेतनमयी सृष्टि के साथ भावात्मक सूत्रों में बंधते जाते हैं। इस क्रम की साधना और अनुभूति वैदिक ऋषियों से लेकर आज तक के अनेक संतों ने की है, विश्व के विविध संप्रदाय इसके प्रमाण हैं। किसी भी देश की संस्कृति एवं साहित्य के इतिहास की पृष्ठभूमि में यदि ऐसे अनुभव अन्तर्निहित होते हैं तो वह इतिहास उतना ही अधिक समृद्ध, प्राणवान, चिरंजीवी और सार्वभौम बन जाता है, जितने अधिक ऐसे अनुभव उसके नेपथ्य में क्रियाशील रहे होते हैं।

इस प्रकार के अनुभव प्रत्येक व्यक्ति-मानस में से गुजरते हैं, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति उन्हें समझ नहीं पाता। वे बादलों की लम्बी कतार के समान उमड़ते हैं, परन्तु बादलों के समान ही वे चंचल, क्षणस्थायी और बहुरंगी होते हैं और। वे बेचैनी भी पैदा करते हैं और आह्लाद भी देते हैं, निराश भी करते हैं और आशा भी प्रदान करते हैं, कभी-कभी शब्दों की पकड़ में आ जाते हैं और कभी एक हल्की छाया, आभास, बिम्ब या अस्पष्ट प्रकृति का संकेत मात्र करके विलीन हो जाते हैं। अतः उनकी व्याख्या या वर्णन असंभव या विशेष मनन-साध्य होता है, जो किसी मंत्र, गीत या काव्य के रूप में अभिव्यक्त हो जाने पर भी साधक को अतृप्त ही रखता है। संत एवं भक्त कवियों ने इस प्रकार के सूक्ष्म, अतीन्दिय अनुभवों को गूंगे का गुड़, दिवास्वप्न, क्षितिज-रेखा आदि कहा है। संत कबीर का ऐसी ही रहस्यानुभूतियों के विषय में कहना है- "हीरा पायो, गांढ गाठियायो, बार-बार वाको क्यूँ खोले।" आशय यह है कि आध्यात्मिक अनुभव इतने विचित्र, इतने एकान्तिक, इतने दुरूह होते हैं और इतने बहुमूल्य भी कि उन्हें व्यक्त करने के प्रयास में उनके बिखर जाने का अथवा विलुप्त हो जाने का भय बना रहता है। अतः साधक और सिद्ध इन अनुभवों को गोपनीय ही रखते हैं। विशेष अधिकारी शिष्य 'अन्ते वासी' ही उनकी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और वह भी अस्पष्ट शब्दों, अस्फुट वाणी प्रतीकों अथवा उलटवासी जैसी अटपटी भाषा के रूप में। फिर भी सर्वत्र ऐसा नहीं होता। ऐसे दिव्य अनुभव सरस संगीतमय गीतों, भजनों आदि में श्रेष्ठ काव्यों में अथवा अन्य श्रेष्ठ साहित्य में एवं महिलाओं - संतों के सारगर्भित प्रवचनों में प्रकट होते रहते हैं। इस प्रकार

वे जातीय अनुभव बन जाते हैं, युग-युग की सम्पत्ति बन जाते हैं और चिरस्थायी परम्पराओं को जन्म देते हैं। भारत का धार्मिक वांड्मय ऐसे ही आध्यात्मिक अनुभवों का अमर कोष है।

अपने कुछ आध्यात्मिक अनुभवों का उल्लेख करने से पूर्व यह बतलाना भी आवश्यक है कि कुछ लोग ऐसे गूढ़ अनुभवों को आध्यात्मिक कहना भी नहीं चाहेंगे, जिनका अध्यात्म दर्शन में विश्वास नहीं है अथवा जो अध्यात्म की स्वतंत्र अथवा सर्वोपरि सत्ता में विश्वास नहीं रखते उनके लिए ऐसे अनुभव बुद्धिजन्य, अध्ययन प्रसूत अथवा प्रतिभा के उपहार ही प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु ऐसे अनुभवों की असाधारणता को देखते हुए उनके लिए एक विशिष्ट श्रेणी में रखना ही उचित प्रतीत होता है। मेरी दृष्टि में वह श्रेणी 'अध्यात्म' ही है।

आध्यात्मिक अनुभवों की पहचान का कुछ पैमाना भी होता है। उन्हें शुद्ध, निर्विशेष आनन्द, मानसिक मुक्ति अथवा व्यक्तिगत सत्ता की समष्टि में परिणति कहा जा सकता है। ऐसे क्षणों में देश, काल, व्यक्ति की पृथक् सत्ता का बोध समाप्त हो जाता है। मन को नई ऊर्जा प्राप्त होती है, आत्मविश्वास में वृद्धि होती है, आस्था को बल मिलता है, आस्तिकता का उदय होता है। ऐसे क्षणों में एक झिलमिल प्रकाश अथवा तिमिरालोक की आभा मनः पटल पर छा जाती है। यद्यपि इनमें किसी प्रकार का कार्य-कारण श्रृंखला नहीं देखी जा सकती, फिर भी इनकी उपस्थिति में सतोगुण का विस्तार, रजोगुण का नियमन और तमोगुण पर नियंत्रण का अनुभव होता है। इन्हें एक प्रकार की समाधि-अवस्था भी कह सकते हैं अथवा दार्शनिक शब्दावली में जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति से परे तुरीयावस्था भी माना जा सकता है। उपनिषदों में निरूपित पंच कोशों में से आनन्दमय कोश की ओर आरोहण करना भी आध्यात्मिक अनुभव ही है। वेदान्त में ऐसी अनुभूति का चित्रण इस प्रकार किया गया है :

मिद्यते हृदयाग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

(समाधि अवस्था में पहुँचे हुए योगी के मनोद्वंद्व अथवा संकीर्ण मनस्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं, सारे संशय अथवा संकल्प-विकल्प क्षीण हो जाते हैं, उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं, वह अधोलोक से परे ऊर्ध्व लोक का साक्षात्कार करता है।)

यह उच्चतम श्रेणी का आध्यात्मिक अनुभव है, पहुँचे हुए योगी का, परन्तु इससे भिन्न अनुभव अन्य अनेक श्रेणी के व्यक्तियों को भी सांसारिक जीवन में विभिन्न स्थितियों में हुआ करते हैं। उदाहरण के लिए किसी असहाय, अनाथ, निर्बल की सहायता, किसी महान पारमार्थिक कार्य में सहयोग, किसी लोक - संग्रह योजना की सिद्धि, किसी महापुरुष (संत, विद्वान, कलाविद आदि) के सानिध्य, किसी श्रेष्ठ विचार के आविर्भाव, किसी रमणीय दृश्य, शिल्प, मूर्ति आदि के दर्शन, किसी उत्तम विचार या वाणी के श्रवण, तीर्थाटन, धार्मिक समारोह आदि में सम्मिलित होने जैसे अवसरों पर, किस व्यक्ति को कब, किस प्रकार, किन स्थितियों

में इस प्रकार की दिव्यानुभूति होती है, यह उसके संस्कारों पर निर्भर करता है। अतः जैसा कि प्रारंभ में कहा गया कि, इस प्रकार की अभौतिक, समामान्य दिव्यानुभतियाँ सभी के भाग्य में आती हैं, परन्तु पहचान और आत्मनिर्माण एवं लोकसंग्रह में उनका उपयोग विरले जन ही कर पाते हैं।

मेरे जीवन में जो घटनाएं घटित हुईं, उनके द्वारा जैसा जीवन-क्रम निर्धारित हुआ और आज जो दायित्व मेरे समक्ष हैं, उन्हें मैं एक आध्यात्मिक जीवन-धारा ही मानता हूँ क्योंकि वे मुझे एक परम लक्ष्य की ओर मोड़ रहे हैं। एक सामान्य समाज और परिवार में जन्म लेकर असामान्य दायित्वों से घिर जाना और विशालतर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समाज से जुड़ जाना, मेरे लिए एक आश्चर्यजनक विधान ही है। पुनश्च, इन दायित्वों की पूर्ति में बाधायें और विघ्न आते रहने पर भी इनकी पूर्ति होते जाना और नये दायित्वों की पूर्ति में बाधायें और विघ्न आते रहने पर भी इनकी पूर्ति होते जाना और नये दायित्वों के द्वार खुलते जाना भी मेरे लिये आश्चर्य की ही बात है। इनमें कोई कार्य-कारण क्रम मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता, कौन दिशा निर्देश कर रहा है यह भी लक्षित नहीं होता, कौन सामर्थ्य और सबल प्रदान कर रहा है, यह भी ज्ञात नहीं होता। प्रत्यक्ष जो दिख रहा है वह यह कि मेरे स्वभाव में सतत परिवर्तन हो रहा है, संस्कृति में परिष्कार होता जा रहा है, सद्सद् विवेक में वृद्धि हो रही है, सहिष्णुता और संयम बढ़ रहा है, चिंता और निराशायें घट रही हैं, यह सब एक आध्यात्मिक जीवन-धारा का ही अनुभव है।

अब कुछ व्यक्तिगत जीवन-प्रसंगों को लेकर भी इनकी परीक्षा की जा सकती है। सर्वप्रथम संस्कृत भाषा की शिक्षा और उसके लिये किसी विद्यालय की अपेक्षा एक सुप्रतिष्ठित धर्मसंस्थान (परमार्थ निकेतन) में प्रवेश और एक जन्मजात, वीतरागी अनुभवी, कर्मठ धर्माचार्य के चरणों में आश्रय प्राप्त करके अनेक संतों का सान्निध्य और स्नेह प्राप्त करना, यह मेरे जीवन की आध्यात्मिक भूमिका ही है। इस प्रकार संस्कृत विद्या और संत-समागम से किशोर जीवन का आरंभ मेरे लिये दैवी वरदान सिद्ध हुआ है। मेरा विश्वास है कि संस्कृत भाषा का अनुराग और उसके धार्मिक वांड्मय में प्रवेश, व्यक्ति के जीवन में अनिवार्य रूप से आध्यात्मिकता के द्वार उद्घाटित कर देता है। इसमें भी सोने में सुहागा सिद्ध होता है सच्चे संतों का संपर्क, उनका आशीष और सतत प्रोत्साहन इसके लिए अपने माता-पिता और पारिवारिक वातावरण को भी श्रेय देना आवश्यक है, जिनके मन में मेरे जीवन को इस दिशा में प्रवृत करने की प्रेरणा भी दिव्य ही थी और उसका अनुकूल प्रतिफलन होना भी ईश्वरीय कहा जायेगा।

संस्कृत और संस्कृति में मेरी अभिरुचि प्रारंभ से ही रही। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा भी प्राप्त हुई, कुसंग का रोग लगा नहीं । आकांक्षाएं जागृत हुईं पर उनकी पूर्ति के लिये असत् साधन या कुमार्ग की कल्पना मन में आई नहीं । सौभाग्य से गुरु कृपा सदैव प्राप्त होती रही

शिक्षा गुरु, दिशा गुरु आदि व्यक्तित्व, गुरु गरिमा के प्रतीक बन कर शास्त्र-ज्ञान, विवेक और अनुभव प्रदान करते रहे। इस प्रकार मेरे कार्यक्षेत्र का विस्तार सहज रूप से आध्यात्मिक जीवन की ओर होता गया। इसके अंतर्गत मुझे अपना लक्ष्य सर्वधर्म-समभाव, उसकी दार्शनिक चेतना और नैतिक आधारों का समीकरण, मानव समाज की भावनात्मक एकता और प्रकृति एवं संस्कृति का सामंजस्य प्रतीत होने लगा। इसी मार्ग पर मैं बढ़ता रहा हूँ।

जिन महानुभावों का, विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों का विविध रूपों में सहयोग मुझे प्राप्त हुआ, उसमें भी मुझे एक ईश्वरीय विधान ही लक्षित होता है। इसके अन्तर्गत वरिष्ठ धर्माचार्यों, बाल-तरुण, वृद्ध सभी आयु के व्यक्तियों, शिक्षकों, चिकित्सकों, कलाविदों, शिल्पियों, साहित्यकारों, विद्वानों आदि के अत्यन्त प्रेमपूर्ण सहयोग और प्रेरणाओं का मैं ऋणी हूँ। मुझे ये प्रसंग मानस-पटल पर उमड़ते स्वप्न से प्रतीत होते रहे हैं और उन्हें सार्थक एवं साकार होता देखकर मैं ईश्वर के प्रति नमन करता हूँ। ऐसे प्रेरणा पुरुषों का नामोल्लेख एवं घटनाओं का विवरण अनावश्यक है, क्योंकि उनमें पृथकता अथवा विच्छिन्नता नहीं वरन् एक समन्वयात्मक समष्टिगत क्रम है।

आज मेरा जीवन-फलक मेरी जन्म-भूमि, प्रांत और स्वदेश से लेकर अनेक देशों के क्षितिज में विस्तीर्ण है। मुझे कितनी भाषाओं, आस्थाओं, संस्कृतियों और समुदायों के व्यक्तियों के आत्मीय संपर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त होता है और उसके द्वारा मैं किस प्रकार के उदात्त विचारों, उल्लास और आत्मसंतोष में लीन हो जाता हूँ, उसे अभिव्यक्त करना संभव नहीं है। कभी मेरे मन में शब्दब्रह्म की लहरें उठती हैं और श्रेष्ठतम भाषा और काव्य - शिल्प को लेकर सुन्दरम संगीतमय भजनों की माला गूंथने की प्रेरणा होती है, कभी संसार भर के पुरातन और नूतन स्थापत्य एवं मूर्तिकला की बारीकियों का संग्रह कर एक ऐसे अभूतपूर्व देवालय के निर्माण की हिलोर उठती है जिसमें सभी संप्रदायों को अपनी-अपनी उपासना-पद्धति का प्रतिबिम्ब लक्षित हो, कभी ऐसे विराट उत्सव की आयोजना मन में जागती है जिसमें देश-देश, युग-युग और जाति-जाति के रीति-रिवाजों, परम्पराओं और विश्वासों का सम्मिलन प्रतीत हो और कभी ऐसी आकांक्षा होती है कि सभी देशों के धार्मिक एवं ललित वांड्मय को ब्रह्मकमण्डलु में जाह्नवी के जल के समान संग्रहीत कर मानव-कल्याण के लिए विशाल पथ पर प्रवाहित करूँ। भगवान के अनुग्रह, पूर्वजों के आशीष, स्वजनों की शुभकामनाओं और संतों के स्नेह-वात्सल्य का अनुभव निरन्तर होता रहता है जैसे कि किसी निर्जन में दीपक, सरोवर में कमल और लताओं पर पुष्प पल्लवित होते रहते हैं। कदाचित यह प्रणव नाद, ओंकार मंत्र, गायत्री के स्वर, उपनिषदों की वाणी, संतों की साखी- अभंग और प्रभु संकीर्तन के अक्षय स्वरों का निराकार आयोजन हो, वह इस क्षुद्र जीवन में साकार होना चाहता है।

(२७)

मैं अस्त हुआ तो मैं मस्त हुआ

''मैं तो कबसे तेरी शरण में हूँ।
मेरी ओर तू भी तो ध्यान दे।''

संसार के जितने भी कर्तव्य हैं उन सबका लक्ष्य एक ही हो मैं प्रभु की शरण में किस तरह से आ जाऊँ। प्रभु को पाने का सर्वोत्तम उपाय कौन-सा है? सारे ग्रंथों को पढ़ने के बाद क्या लगता है? प्रभु को पाने का एक ही उपाय है, या तो उसको अपना बना ले या उसके बन जायें। संसार में भी कुछ ऐसा ही है या तो उसको अपना बना ले या उसके बन जायें। परमात्मा की तरफ जब हम मुड़ते हैं तो ये सीधी-सीधी शर्त है और आश्चर्य की बात यह है कि ये सारे रास्तों का पता होने के बाद भी हमारा सारा झुकाव, हमारा जीवन बहिर्मुख होता चला जाता है। काम करना कोई बहिर्मुखता नहीं है। लोगों को ये बड़ा भ्रम है। मुझे तो लगता है कि कई बार काम करते-करते आप स्वयं परमात्मा के बन जाएँ तो आप संसार को भूल जायेगें। उसके लिए आपको कोई साधना भी नहीं करनी पड़ती।

सेवा का अपना एक अलग प्रभाव है, महापुरुषों की कृपा का एक औसा प्रभाव है कि आप ऊपर उठ जाते हैं। फिर आप कूड़ा किसी के आँगन में नहीं , किसी के जीवन में भी नहीं डालेंगे। यह पहचान है दैवी संपत्ति वाले व्यक्ति की, वह दूसरों के आंगन में भी क्या दूसरों के जीवन में भी कूड़ा नहीं डालेंगे। स्वयं की ओर मुड़े। स्वयं को देखे। कितनी विचित्र है हमारी स्थिति। घर में बैठे हैं या आश्रम में आए, या कहीं भी बैठे हैं और किसी ने आकर, या हमारे दोस्त ने आकर एक बात बता दी कि ''तुहें पता है, वो जो है न, तुम्हारे बारे में क्या कह रहे थे। ऐसी-ऐसी बातें करते थे। मुझे तो इतना गुस्सा आ गया।'' बस किसी ने आकर इतना बता दिया और हमारा मूड खराब कर दिया। एक टेलीफोन कॉल, बड़ी दूर से आदमी बैठे बैठे can upset us. हमको पीड़ित कर देता है। ये तो है हमारा existence हवा का एक झोंका आता है जिसे शीतलहवा का झोंका कहते हैं तो हमारे कान खड़े हो जाते हैं। उसे सुनने लगते हैं और फिर उस पर चिंतन शुरू होता है द्वेष की यात्रा शुरू होती है। वैर की यात्रा शुरू होती है। आक्रोश बढ़ता है, समझते हो क्या अपने आपको।

एक बात याद रखिये, जब तक भीतर की यात्रा शुरू नहीं होती तब तक कुछ बननेवाला नहीं है। मेरा निवेदन है आप सबसे कि हम कितनी भी उपासना क्यों न करें। उन सबका अर्थ इतना ही नहीं है कि हम पुण्य लूट लें। भागवत के चारों ओर 108 चक्कर लगानेका, मंदिर की परिक्रमा करने का अर्थ इतना ही है कि हम पुण्य लूट लें? सारी

विचारधारा ऐसी नहीं कि हम किसी तरह से पुण्य बटोरें। गंगा में स्नान करेंगे तो पुण्य मिलेगा। तीर्थों में जायेंगे तो पुण्य मिलेगा। बहुत अच्छी बात है। इन सबकी आवश्यकता भी है। लेकिन पुण्य भी एक बंधन है। अद्भुत बंधन है। ज्यादा बंधन है। मैं अक्सर इस बात पर चर्चा करता हूँ कि जब तक जीवन की मूर्ति को हम प्रणाम नहीं कर पायेंग, जब तक खुद उसे देखेंगे, तब तक आनन्द में झूम नहीं पायेंगे। दिन रात जाग कर जीवन मूर्ति कुछ ऐसी बनाएँ। खुद उसे देखें, समझ कर झूम जाएँ। वह यात्रा होगी स्वयं से शुरू।

जीवन की यात्रा का एक ही उपाय है। चलते चलो, चलते चलो। स्वयं को देखो, स्वयं ही जीवन की मूर्ति का निर्माण कर सको तो जीवन की ज्योति जल उठेगी और जब जीवन की ज्योति जलेगी तो जीवन में प्रसन्नता आ जायेगी।

जब परमात्मा जीवन में आता है तो जीवन में मस्ती आ जायेगी। ''मैं'' गिर जायेगा ''मैं'' अस्त हुआ तो मैं मस्त हुआ। जिस दिन हम ''मैं'' को बीच में से हटा लेंगे उस दिन हमारी ज्योति जल उठेगी। इन सारी समस्याओं के बीच में से ''मैं'' को निकाल दिया जाय तो ज्योति जल जायेगी। आज परिवारों में, राष्ट्रों में, सरकारों में जितने भी झगड़े हैं सब ''अहम'' की वजह से है। जब सब कुछ ठीक चलता है तो हम कहते हैं कि मैंने किया। I have done it. ये मैंने किया,वो मैंने किया और जब कुछ गड़बड़ होती है, समस्या आती है तब कहते हैं पता नहीं क्या हुआ? आजकल हमारे ग्रह ही खराब हैं। समझ में नहीं आ रहा है। तब भूल जाते हैं कि यह किसने किया। अगर सब ठीक चलता है तो मैं ने किया और ठीक नहीं चला तो पता नहीं भगवान हमसे क्यों नाराज हो गये? इस सब में से ''मैं'' को निकाल दिया जाय तो जीवन में प्रसन्नता आ जायेगी। जीवन में हल्के हो जायेंगे। जीवन का तनाव नष्ट हो जायेगा। अहं को दिन्यता में परिणत कर दो ।

जीवन में दो ही बातें हैं, जिसकी वजह से हमारा सारा जीवन बोझ बन जाता है। जो मेरे पास है वो मेरे हाथ से छूट न जाय और जो मुझे नहीं मिलता है वह मुझे मिल जाय। जीवन की सारी भागदौड़ इसके लिए है। अगर परमात्मा की शरण में आ जाए तो ये सब भागदौड़, ये तनाव, नष्ट हो जायेगा। परमात्मा को मन दिया तो मंदिर हो जायेगा। मन के अन्दर ही तों मन्दिर है। गुरुद्वारा खुल जायेगा। गुरु के द्वार पर पहुंच जायेंगे। हमारी सारी यात्रा मन की ओर है। परमात्मा को जाने बिना व्यक्ति को कुछ नहीं प्राप्त होगा। व्यक्ति जीवन की सही दिशा पर नहीं आ सकेगा और जब तक जीवन का परिवर्तन नहीं होगा तबतक जीवन सही दिशा पर नहीं आयेगा। यह काम हम दूसरों पर न छोड़ें जीवन में कुछ बातें स्वयं ही करनी पड़ती हैं। ये यात्रा हमें खुद ही करनी है।

जीवन में जब भूख लगती है तो किसी से नहीं बोलते कि तुम खा लो। भूख लगती है तो स्वयं हम खाते हैं जब अपनी शादी हो तो क्या बोल देते हो? कि तुम शादी करके आओ। शादी करनी है तो स्वयं को ही बारात ले के जाना पड़ता है। मृत्यु जब आयेगी तो यमराज को

नहीं कह सकते कि किसी और को ले जाओ। मुझे समय नहीं है। तो फिर भजन भी खुद को करना पड़ेगा। हम संतों से पूजा कराने की, अनुष्ठान कराने की व्यवस्था कर लेते हैं लेकिन मैं ईमानदारी से पूछता हूँ कि जब हमारा मन ही पाँच मिनट में गंगातट पर बैठकर मुंबई या कोलकता पहुँच सकता है तो जिनको हम पैसे देकर पूजा कराते हैं, अनुष्ठान कराते हैं उनका मन कहाँ होगा? पैसे से कभी पूजा होती है क्या? पैसों से भजन करा सकते हैं क्या? भजन के लिए खुद को समय निकालना पड़ेगा। हमारे परमश्रद्धेय पू. श्री महामंडलेश्वरजी महाराज हमेशा कहा करते थे।

''जीवन मुक्ति सोये मुक्ति मरे न मुक्ति होय।''

किस मुक्ति की तलाश में हैं आप? आइए, बैठिए, जाग कर दिन रात। जीवन मूर्ति कुछ ऐसी बनायें खुद उसे देखें और झूमें। शिकायत या शर्त हम दूसरों से करते हैं। शिकायत या शर्त स्वयं से हो। दूसरों के एक्शन को हम देखते हैं। आइए, अपने दर्शन करें। अपनी यात्रा खुद करें। जीवन धन्य हो उठेगा।

''जब तेरी डोली निकाली जाएगी
बिना मुहूर्त के ही उठा ली जायेगी''

क्या पता है जिंदगी का कब, क्या हो जाय? मैं तो जब भी हवाई जहाज मैं बैठता हूँ सोचता हूँ ऊपर आकाश नीचे सागर, छोड़कर जा रहा हूँ अतः प्रणाम। अब वापिस आया तो ठीक, वही सेवा कार्य, नहीं तो खिलाड़ी चले जायेंगे। काम चलता रहेगा। इस खेल में इस तरह ही जीना है। एक खिलाड़ी की तरह खेलिए लेकिन हँसिए मत। ये जीवन हँसने जैसा है ही नहीं। मैं हमेशा कहता हूँ काम करने में थकते नहीं । करो, खूब काम करो। करते-करते आप ऊपर उठ जाओ। इस पावन पुरुष की, जिन्होंने ये दैवी संम्पत्ति की स्थापना की उनकी कल्पना थी ऐसा जीवन बनायें। तो देखिये, किस समय यह डोली उठ जायेगी पता नहीं । कितना खूबसूरत इंसान और कितनी बदसूरत मौत से मरा। शरीर से, विस्फोट से कपड़े भी उतर गये। अपने आप जब वक्त आता है तो आपको अलविदा कहना ही पड़ता है इसलिए-

''जब भी मिलो जिससे मिलो दिल खोलकर मिलो।
न जाने जिंदगी की शाम कब ढल जायेगी।''

क्या पता जीवन का। जीवन को डर से नहीं जीना है। परमात्मा से भी डरने की जरूरत नहीं है। परमात्मा से प्यार करने की जरूरत है। जिस देश में, जिस संस्कृति में आपने जन्म लिया है, यही है गीता, ये उपनिषद सत्य है तो मैं इस सत्य के आधार पर कहता हूँ कि मौत से भी डरने की जरूरत नहीं है।

किसी की भी परवाह मत कीजिए। लोग कहते रहेंगे, लेकिन परमात्मा की दृष्टि आप पर पड़ जाए। हम उनको जान सकें यही प्रार्थना है मेरी।

माँ भगवती गंगा किसी भी भेदभाव के बिना सब को नहलाती है, सबको अपना जलपान कराती है, सबको अपना प्यार देती है। हम अपनी ओर देखें, क्या हमारा जीवन भी सबको प्यार दे पाता है? जिन-जिन से मेरे स्वार्थ जुड़े हैं, जिन-जिन से मैं जुड़ा हूँ, मेरा नमक जुड़ा है। केवल उसको प्यार दे पाते हैं, लेकिन "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना रखनी चाहिए। यह केवल सुनने के लिए नहीं है। कोई भगीरथ बने और गंगा लाए। हम उस पर बैठकर आनन्द करें। सायं काल का समय बिताएं या प्रातः स्नान करें। हमें खुद ही भगीरथ बनना होगा। ये जीवन इसलिए नहीं मिलता है कि हमें जो मिला है उसका उपभोग करें। ये आपका पुण्य है कि आपको ये मिला। लेकिन -

जीवन की साधना यही है कि हम भगीरथ बनें रोज-रोज भगीरथ बने। भगीरथ कितनी बड़ी तपस्या करके गंगा को यहाँ ले आए। व्यक्ति सचमुच गंगा के शरण में आ जाए तो वह इतना शीतल हो जायेगा कि दूसरों के दुख को अपना दुःख समझने लगेगा। ये भावना जागृत होगी कि "मेरे सिवा नजर न आए कोई दोजख में " नरक में कौन जाते हैं? जो लोग पाप करते हैं, जो लोग गलतियाँ करते हैं, जो लोग अपराध करते हैं। लेकिन क्या चरित्र होगा ये सब कहने वालों का? मैं और आप, सब इन महान चरित्रों से सीखें। रोज-रोज भगीरथ प्रयास करें और इस प्रयास से यही भगीरथ गंगा ला सकते हैं और एक ऐसी परम्परा छोड़कर जा सकते हैं जो युगों-युगों तक सबको पवित्र करती रहे। तो क्या हम इतनी भी परम्परा शुरू नहीं कर सकते कि हम अपने को पवित्र करें और पवित्र रखे।

"मेरे सिवा नजर ना आये कोई दोजख में
किसी का जुर्म हो मालिक मुझे सजा देना।"

यह है साधक का जीवन। देखिए कोई पत्थर मारे, कोई चोट लगाए, कोई पीड़ा पहुँचाये आप उसको भी फूल दें। वृक्ष पत्थर खाकर भी फल देता है, फूल देता है। यह केवल कहने मात्र का नहीं इसे आप जीवन में लाके देखें। कितना आत्मसंतोष होगा आपके जीवन में। इतनी तृप्ति मिलेगी आपको। किसी को पीड़ा पहुंचा कर नहीं बल्कि उसकी चोट को सह कर बहुत तृप्ति मिलेगी। मैं हमेशा कहता हूँ, ठाकुर ठोकर सहता है तभी तो वह ठाकुर कहलाता है। लोगों की बात सह ली ठाकुर ने। वह ठोकर सह कर ठाकुर कहलाया लेकिन जो ठोकरें लगाते हैं वे ठोकर खाते हैं। ठोकर मारने वाला कभी भी सम्मान नहीं पा सकता और यदि कोई आलोचना करे भी, यदी कोई प्रहार करे भी तो, चिंता न करें। उसके लिए वह स्वयं ही नर्क में जाने की तैयारियां कर रहा है। आप देखियेगा आपका जीवन धन्य हो उठेगा, सच पूछो तो आलोचना करने का समय उन्हें मिलता है जो स्वयं को देख नहीं पाते हैं। स्वयं को देखने की राह इतनी लंबी है, इतनी विचित्र है, इतनी कोम्प्लेक्स है। आपको समय नहीं मिलेगा दूसरों की आलोचना करने का। समय मिलता होगा उन लोगों को जो लोग समय की महिमा को नहीं जानते हैं। स्वयं की महिमा को जानने वाला हर चीज की महिमा को जानता

है। कदम फूँक – फूँक कर चलता है। इन लोगों के लिए प्रार्थना करें प्रभु इन्हें भी बुद्धि दो ताकि ये लोग स्वयं को समझ सकें, जीवन को समझ सकें और –

यदि आप सबको समझाने के रास्ते पर चल पड़ें तो किस–किस को समझाओगें। मुझे एकबात याद है। मुझे संतों की छोटी– छोटी बातें बहुत अच्छी लगती हैं। 1974 में ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय स्वामी श्री अखण्डानंद जी का प्रवचन चल रहा था। बड़े ही मस्त संत। 'गंगा निवास' में रुके हुए थे मुझे उनको रोज लाना होता था। मैं उनको तीन बजे यहाँ से लेकर चलता था प्रवचन के लिए। जब मैं उनको लेकर चलता था। रास्ते में काफी लोग मिलते थे। लेकिन रास्ते में गौएँ और गधे भी दिखाई पड़ते थे। थोड़े आगे बढ़े तो एक गधा दिखाई पड़ा। मैंने उसको हटाने का प्रयास किया। गधे को हटाने में बड़ी मुश्किल होती है। अब जो निश्चय ही कर लेता है कि उसे गधा ही रहना है। ऐसे पावन स्थल में रहकर भी, कूड़े में मुँह डालते रहेंगे जिंदगी भर। चलते रहेंगे चलते रहेंगे और रास्ता रोकते रहेंगे। मैंने बहुत प्रयास किया लेकिन थोड़ा सा हटा पाया। पर धीरे से रास्ता बनाकर निकल गये। थोड़ा आगे और बढ़े एक गौ खड़ी थी। एक को तो मुश्किल से हटाया दूसरी को हटाने लगा। उन्होंने एक बात कही मुझे वह बात हमेशा याद रहती है और उस दिन से मैंने वही करना शुरू किया। मुझे जीवन में बड़ा ही संतोष मिला। उन्होंने कहा ''देखो, किस–किस को हटाओगे। तुम्हें जीवन में घोड़े भी मिलेगे, गधे भी मिलेंगे, गायें भी मिलेंगी। जो गधे हैं अगर उन्होंने गधे बनने का निश्चय कर ही लिया है तो कैसे समझाओगे उन्हें ? अपना प्रयास करो और अपना रास्ता बनाओ और धीरे से निकल जाओ। उसमें रुक मत जाओ। अच्छे और बुरे में तुम्हें नहीं फँसना है।'' पर बुरे के साथ हम फँस जाते हैं। हमारी शक्ति, हमारा समय उसको ठीक करने में या मुझे लोग ठीक समझें उसमें व्यतीत होता है। किस–किस को समझाओगे ? क्या पता है कब क्या हो जाय ? ये मानव शरीर मिला है तो अब तो मेरे हाथ में है कि ये अवसर हाथ से न चूकने दूँ।

''राम का नाम लेकर जो मर जाएगा।
वो अमर नाम दुनिया में कर जाएगा।''

जब मौत सिर पे खड़ी हो तो हमें क्या याद आएगा ? बेटे को बुला लो, बेटी को बुला लो, जो भी पहली फ्लाइट मिलती है उसमें आ जाओ। परीक्षित कब सुनने बैठा था जब सिर पर मौत खड़ी थी। सात दिनों तक, वह व्यक्ति कोई छोटी मोटी गद्दी का मालिक नहीं बल्कि पूरे देश का सम्राट है और संत के चरणों में बैठ कर इस प्रतीक्षा में कि मुझे वह कथामृत मिले। मैं तो भागवत् कथामृत को सबसे ज्यादा मानता हूँ क्योंकि अमृत तो देवताओं को उपलब्ध था पर भागवत कथा केवल परम् भागवतों को ही प्राप्त होती है। शुक देव जी ने पैसों के बल पर कथा नहीं की बल्कि देवतागण अमृत कलश लाकर शुकदेव जी के चरणों में रखते हैं और कहते आप हमें कथामृत कराएँ। अतः शुकदेव जी ने कोई पैसे के बल पर कथा नहीं की, सम्राट के वैभव के बल पर वह कथा नहीं की। कथा सुनने वाला भी ऐसा और कथा

कहने वाला निस्पृह सन्त भी ऐसा कि सात दिन में कथा सुनने के बाद परीक्षित कह सका कि कौन कहता है कि मौत आएगी, मैं मर जाऊँगा? व्यक्ति का शरीर जब मिटता है तो मरता है या अपने घर जाता है।

''राम का नाम लेकर मर जायेंगे
वो अमर नाम दुनिया में कर जायेंगे''

शरीर तो नाव है और किनारा आनेपर नाव छोडनी ही पडती है
अत: निर्जीव होने से पहले स्वयं को निर्जीव कर लो

अष्टावक्र

यहाँ तो नाम अमर करने की बात नहीं है स्वयं अमृत प्राप्त करने की बात है। वहाँ से लौट कर वापस आना ही नहीं है ऐसी स्थिति को प्राप्त हुए परीक्षित और ऐसी स्थिति को देने वाले परम् भगवत् शुकदेव जी थे। यह हमारी संस्कृति है लेकिन उस संस्कृति को साकार करने की जिम्मेदारी आप सब पर है। थोड़े दिनों के बाद आप लोग परमार्थ आश्रम से वापस जब घर जाएँ तब तो और बड़ी परीक्षा आपके सामने है। मेरा आप सबसे निवेदन है कि आप पैसा चढ़ा देंगे, कपड़े चढ़ा देंगे लेकिन जब तक भीतर के वस्त्र नहीं उतारेंगे, जब तक भीतर के चक्र को उतार कर इस भागवत के सामने नहीं रखेंगे तब तक भागवत कथा सार्थक नहीं होगी।

व्यक्तित्व को बनाना है तो अस्तित्व से जुड़ना होगा।

(२८)

लक्ष्यबद्धता - ध्यान

जीवन का ध्येय यह होना चाहिए कि जीवन को अधिक से अधिक असत्य की ओर से सत्य की ओर ले जायें, अंधेरे से प्रकाश की ओर ले जायें और मृत्यु से अमृत्यु की ओर ले जायें। हम जब जीते हैं तो कई बार ऐसा लगता है कि हमारी रोज-रोज मृत्यु होती है। मरने का दिल करता है। कई लोग ऐसे होते हैं जिन्हें जीना दुष्कर हो जाता है। उन लोगों के लिए भी संदेश है कि वे लोग भी मृत्यु से अमृत्यु की ओर बढ़ें। जीवन सचमुच बड़ा विचित्र है। जो भी हम करते हैं,जैसा भी हम करते हैं, जब भी हम करते हैं, जहाँ भी हम करते हैं उन सबका एक अपना हिसाब है। हम सब कुछ करके भूल जायें लेकिन भीतर एक गुप्त रीति से चित्र बन जाता है। जो हमारे कर्मों का गुप्त हिसाब रखता है। उससे कुछ भी और कोई भी चीज छिपती नहीं है। हम देख पायें या न देख पायें। जीवन के हर क्षण का, हर कर्म का हिसाब तैयार होता है। इसीलिए अपने कर्मों को करते हुए ध्यान रखें कि हे प्रभु! हमसे जो भी करायें, दूसरों के लिए करायें, अपनी संस्कृति के लिए, अपने धर्म के लिए करायें। हमारा जीवन अपनी संस्कृति को, धर्म को, देश को समर्पित हो।

लोग कई बार अपने कर्तव्यों को भूल जाते हैं क्योंकि वातावरण का प्रभाव ऐसा होता है लेकिन जो लोग आश्रम में रहते हैं और जो लोग बाहर से थोड़े दिनों के लिए आश्रम में आते हैं उन लोगों की बहुत बड़ी जिम्मेदारी हो जाती है। वे लोग आश्रम के वातावरण को दूषित न करें क्योंकि जो लोग भौतिक संपत्ति के वातावरण में से इस पवित्र वातावरण में आते हैं तो उन लोगों को पवित्र वातावरण मिलेगा, सत्संग मिलेगा तो उनके जीवन में भी क्रांति आयेगी। अगर आश्रम के वातावरण में पवित्रता नहीं है, दूषित है तो उन लोगों को लगेगा यहाँ भी कुरुक्षेत्र है क्या? कुरुक्षेत्र का अर्थ है असंतोष का वातावरण, ईर्ष्या, द्वेष का वातावरण और इन सब चीजों से ऊपर उठने का नाम ही धर्मक्षेत्र है। जीवन में समता आए, एकता आए और एक दूसरों को हम प्यार कर सकें। एक दूसरे के प्रति अकड़े नहीं बल्कि एक दूसरों को पकड़ें।

''झुकता तो वह है जिसमें जान होती है,
अकड़ तो मुर्दे की पहचान होती है।'

अकड़ो नहीं। पकड़ो और यह तभी होगा जब हम इस धरातल पर जीने के सिद्धान्त जानते होंगे। हमारे हर कर्म का हिसाब होगा। तो फिर क्यों किसी के प्रति द्वेष रखना? क्यों किसी को नीचा दिखाकर अपने को नीचे गिराना? इस बात का हमें बहुत ध्यान रखना है।

जीवन का ध्येय होना चाहिए कि हमारा कर्म हमारी पूजा बने लेकिन होता है उलटा। हमारी पूजा हमारा कर्म बन जाती है। पूजा काम बन जाती है। कर्म शब्द में तो

कुछ दम है लेकिन 'काम' में तो क्षीणता आ जाती है और अधिकतर पूजाएँ काम ही बनी रहती हैं। जिंदगी भर उससे ऊपर हम नहीं उठ पाते हैं। होना तो यह चाहिए था कि धंधा धर्म बनता लेकिन धर्म धंधा बन जाता है। होना तो यह चाहिए कि व्यक्ति धार्मिक होने की अपेक्षा आध्यात्मिक बने। किन्तु व्यक्ति धार्मिक तो बन जाता है, लेकिन आध्यात्मिक नहीं हो पाता। मंदिर जाने से, कर्मकाण्ड करने से हम धार्मिक बन सकते हैं तथा धर्म के कुछ बाह्य आचरणों को लेकर भी हम धार्मिक बन सकते हैं, लेकिन धर्म का जो भीतरी स्वभाव है आचार और विचार उसमें आचार ही व्यक्ति को धार्मिक बनाता है और विचार व्यक्ति को आध्यात्मिक बनाता है। केवल हम बाहर से ही धार्मिक बने रहें और भीतर से आध्यात्मिक न बने तो आप देखेंगे कि आपको थोड़ी-थोड़ी बातों से उद्वेग होगा। क्योंकि भीतर से व्यक्ति पका नहीं है। परिपुष्ट नहीं है। छोटी-छोटी बातें उद्वेग कर देती हैं। किसी ने कुछ कहा या कोई हमसे ज्यादा आगे निकल गया तो हमें कष्ट होता है। छोटी सी बात हम सह नहीं सकते हैं। जीवन में कुछ पाने के लिए वर्षों तक साधना करनी पड़ती है। जैसे पहले ही दिन स्कूल में जाने से डिग्री नहीं मिलती है। उसके लिए पहले प्राथमिक स्कूल फिर हाईस्कूल पास करना पड़ता है। 16-18 साल के बाद ही फिर बी.ए. के बाद डिग्री मिलती है और मजे की बात यह है कि इतने साल लगाने के बाद भी व्यक्ति को फिर नौकरी ढूंढनी पड़ती है। पढ़ने लिखने के बाद भी, पूरा जीवन देने के बाद भी, पूरी शिक्षा लेने के बाद भी जीवन का जो लक्ष्य है वह नहीं पा सकते हैं। नौकरी नहीं मिल पाती है। ढूँढते ही रहो। लेकिन यदि कोई सोलह साल परमात्मा में लगाये तो फिर ढूँढना नहीं पड़ेगा। वह स्वयं ढूँढता हुआ आता है। जीवन में सच्ची डिग्री अगर प्राप्त करनी है तो मन की शान्ति और भीतर की शान्ति को प्राप्त करनी होगी। अगर भीतरी शान्ति मिलती है तो एक दिन ऐसा आता है कि आप डिग्रियों से ऊपर उठ जाते हैं। डिग्रियों की परवाह ही नहीं करेंगे।

सुविधाएं तो बहुत लोगों के पास हैं। लेकिन सुविधाएँ ऊपर नहीं उठातीं। व्यक्ति के जीवन को भीतर से शान्त नहीं बनातीं। सुविधाएँ कितनी भी क्यों न हों अगर भीतर से शान्ति नहीं है तो आपके पास सब कुछ होते हुए भी आप अशान्त ही रहेंगे। यह बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि यह मिल जायेगा, यह प्राप्त हो जायेगा फिर शान्ति मिलेगी। जितना ज्यादा प्राप्त होता है उसके बाद लालसा और भी बढ़ती जाती है और वह लालसा कभी शान्त नहीं बैठने देगी। लालसा रहित जीवन ही शान्ति की ओर ले जाता है तथा मोक्ष के द्वार खोलता है। जब व्यक्ति को जीवन में समस्याओं से, कठिनाइयों से जूझना पड़ता है उस समय उसकी कड़ी परीक्षा होती है। यदि उस समय हम परेशान नहीं होते हैं तो समझना कि आप आगे बढ़ रहे हैं। उस समय परमात्मा में विश्वास रखना कि परमात्मा जो करते हैं वह अच्छा ही करते हैं। जैसा करते हैं वैसा अच्छा है। जो मेरे जीवन में होता है वह मेरे प्रारब्ध का फल ही है। प्रारब्ध का फल भी उसी तरह से तो मिलता है वह भी एक नियम बना दें। यदि सचमुच हम परमात्मा पर विश्वास करते हैं तो हमारे जीवन में हानि और लाभ, जय और पराजय में समत्वयोग दिखेगा।

यह कठिन जरूर है लेकिन असंभव नहीं है। हमारे सामने वे महापुरुष हैं जिन्होंने ऐसा जीवन जिया है। उनके कदमों पे चलकर हम भी ऐसा बन सकते हैं। हमारे कितने ही ग्रन्थ ऐसे महापुरुषों के जीवन चरित्र से भरे हैं। उनमें से किसी एक के जीवन आदर्श को हम अपनाएँ और अपनी जीवन यात्रा को आगे बढ़ायें। उन्नति के मार्ग पे आगे बढ़ें। कितने ही ऐसे महात्मा हैं जो जीवन में तपस्याएं साधनाएं करते रहते हैं और अपने आपको गुप्त रखते हैं। गुप्त रहते हुए अपने उस जीवन निधि से दूसरों को वहीं से लाभ पहुँचाते हैं। उनका सोचना- उनका चिंतन ही संसार को लाभ देता है।

भगवान श्री राम जब वन में चलते हैं। तब भरत जी बहुत विलाप करते हैं। उस समय वशिष्ठ ऋषि कहते हैं।

'सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेऊ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवनु मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥'

न तो हम जीवन के बारे में सोच सकते हैं न ही हम मृत्यु के बारे में। हम नहीं जानते कब मृत्यु होगी? कब जीवन होगा? हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। जब जीवन - मरण हमारे हाथ में नहीं है तो क्यों न हम बीच का जो रास्ता है, जो हमारे हाथ में है जो हमारी मुट्ठी में है उसे परमात्मा में लगाएँ। परमात्मा ने कृपा करके हमें मनुष्य जीवन दिया है। उस अनमोल अवसर का लाभ उठाकर हम अपने जीवन को उन्नत बनायें। परीक्षा की घड़ी तब आती है जब हमें हानि हो, पराजय हो। लाभ में, जय में व्यक्ति फूला नहीं समाता और हानि में व्यक्ति इतना दुःखी होता है कि अपने आप को भूल जाता है। इतना पीड़ित होता है कि परमात्मा को भूल जाता है, संसार को भूल जाता है। सब कुछ भूल जाता है।

हम अच्छी बातें एक बार पढ़ लेते हैं, सुन लेते हैं, फिर कई बार ऐसा होता है कि ये तो हमने सुना है लेकिन सुने हुए को जब हम बार-बार सुनते हैं तो अपने आपको देखने का अवसर मिलता है। कहाँ हम कमजोर हैं। वहीं से यात्रा शुरू कर देते हैं। जब-जब हम जीवन में थकते हैं और प्रेरणास्पद वचन हमें कहीं से भी मिलते हैं तो वह जीवन को एक नयी राह देते हैं, रोशनी देते हैं। अच्छी बातें बार-बार सुनें- सौ बार सुनें क्योंकि व्यक्ति का मन बहुत कमजोर है। बार - बार छोटी-छोटी चीजों की ओर जाता है, फँसता है, देखता है, मुड़ता है और फिर दुःखी होता है। हानि और लाभ में जीवन और मरण में चीजें आती हैं, जाती हैं, छूटती हैं, कटती हैं, मिटती हैं, जो भी होता है उन सबमें से अपने आप को ऊपर उठाकर जीवन जीने का प्रयास करें। इन बातों को बहुत ध्यान देना है। इसका ध्यान देने के लिए कहीं न कहीं आपको जुड़ना जरूर पड़ेगा। जो परमात्मा से जुड़ता है वह कभी टूटता नहीं है जो टूटता है वह परमात्मा से जुड़ा हुआ नहीं है। जब-जब हम टूटते हैं या तोड़ते हैं तब-तब समझना कि हम कहीं जुड़े हुए नहीं हैं। परमात्मा से जुड़े हुए व्यक्ति को जीवन की कोई समस्या भी तोड़ नहीं सकती है। क्योंकि आलोचनाओं को वह अपने ढंग से देखता

है। इसलिए इस दिव्य संबंध को रोज–रोज ढूँढ़ने का प्रयास करें। अगर हमें अभी भी पीड़ाएँ होती हैं। इसका मतलब है हमें ढूँढ़ना है। अगर ढूँढ़ लिया है तो इस धारा से जुड़ कर अपने जीवन को सार्थक करें। जिन्होंने संसार को छोड़ा सत्संग ने जिनके जीवन को बदला, वह इस धारा से जुड़ कर अपने जीवन को सार्थक कर रहे हैं। एक बार परमात्मा से जुड़े गये लेकिन इस धारा को अविरत रखने के लिए भी ध्यान की बहुत आवश्यकता है। ध्यान के माध्यम से परमात्मा से जुड़ें रहते हैं। भक्ति का मार्ग हो, कर्म का मार्ग हो या ज्ञान का मार्ग हो तीनों में ध्यान बहुत सहायक हैं। नहीं तो एक क्षण के प्रमाद से माया का आवरण छा जाता है। ध्यान के माध्यम से प्रभु के सानिध्य में रह सकते हैं।

आत्महितः

अग्नि में कुछ भी डालो, कितना ही कूड़ा, कर्कट डाले जलकर स्वाहा हो जाता है और अग्नि पवित्र बनी रहती है। अग्नि की विशेषता है कि सब को जलाकर, भस्म करने के बाद वह पवित्र बनी रहती है। अग्नि की दूसरी विशेषता यह है कि वह उष्णता देती है। अगर सही तरह से उपयोग किया जाये तो। तीसरी विशेषता यह है कि अग्नि की लपट हमेशा ऊपर की ओर जाती है। अग्नि तपाती है, निखारती है, प्रकाश देती है और ऊँचाइयों की ओर अग्रसर होती है। ध्यान भी अग्नि की तरह ही है। ध्यान से जीवन की जितनी भी बुराइयाँ हैं सब जलकर भस्म हो जाती हैं। अग्नि से तप कर कुंदन निकलता है, सोना निखर आता है, सारा मल जल जाता है ठीक उसी तरह ध्यान की अग्नि से गुजरने के बाद जीवन भी कुंदन बन जाता है। आप बहुत शान्त हो जायेंगे। ज्यादा बात करने को मन भी नहीं करेगा। ज्यादा जोर से बोलने का मन ही न करेगा। यदि ज्यादा बात करने को मन करता है, व्यर्थ की बातें मन में आती हैं, मन ज्यादा भटक की और जाता है। तो इसका मतलब है कि कहीं हम कमजोर हैं। इसका मतलब है कि भीतर से ध्यान अभी परिपक्व नहीं हुआ है। ध्यान आप को कभी ऐसे काम की ओर नहीं ले जायेगा जिससे कि आपको नीचा देखना पड़े।

जब भी समय मिले, जहाँ भी समय मिले ध्यान करें। कमरे में एकान्त में बैठकर ध्यान करें। गंगा किनारे या पर्वतों की शृंङ्खलाओं में ऐसी पवित्र जगह में किया हुआ कोई भी कार्य कई गुना होकर फलित होता है। पर्वतों के बीच में आवाज़ देते हैं तो resound होके प्रतिध्वनित हो के बहुत गुना होकर जोर से आती है, ठीक यहाँ इस पवित्र स्थानों पर किया हुआ कोई भी कर्म इसी तरह से प्रतिफलित होता है। चाहे वह बुरा हो या अच्छा हो मिलता वापस हमें है। ध्यान से शांति का अनुभव होता है। बीच–बीच में डुबकी लगा के देखते रहें कि कहीं ठाकुर छूट तो नहीं गए हैं। भगवान को साथ रखने का यह एक तरीका है। कहीं मन के तरंग संकल्प– विकल्पों के जाल में फँस तो नहीं गया? कहीं परमात्मा से– ठाकुर से अलिप्त नहीं हो गये हैं?

जीवन को प्रवृत्तिमय रखकर काम करना कोई बुराई नहीं है। जितना हो सके काम करिए, बल्कि खाली बैठने पर व्यर्थ का चिंतन होता है। बहुत कम लोग हैं जो हर समय एक ही धारा से जुड़े रहते हैं। नहीं तो वृत्तियाँ इतनी अद्‌भुत हैं कि वह आपको खींचकर ले ही जाती हैं और जब ले ही जाती हैं तो क्यों न चुनाव सुन्दरता का हो, क्योंकि जुड़ना तो है ही ये बहुत ध्यान देना है कि काम करते समय बीच में आँखें बंद कर के देख लें हम कहाँ हैं? किस सेंटर से हम जुड़े हैं काम या राम से? यदि मन के 'प्लग' को संसार से जोड़ के रखा तो समस्याएँ ज्यादा होंगी। यदि मन के 'प्लग' को परमात्मा से जोड़ के रखा तो आप देखेंगे कि समस्यायें आयेंगी लेकिन धीरे-धीरे समस्याएँ समस्या नहीं लगेगी। एक विचित्र बात हो जाती है। आपके भीतर कोई बैठ जाता है जो आप के भीतर बैठ कर सारी समस्याओं का समाधान देता चला जा रहा है। आप को लगेगा भीतर कोई और है। मैं तो थक गया, मुझसे समाधान न हुआ लेकिन उससे आपको समाधान मिल जायेगा।

ध्यान एक अग्नि है। आपको निखारने के लिए ध्यान एक ऊंचाई है अग्नि की तरह आपको ऊपर ले जाने के लिए। एक बार ध्यान के साथ जुड़ा हुआ व्यक्ति कभी गलत कर देगा तो वह भटक सकता है लेकिन अटक नहीं सकता। कई बार ऐसा होता है कि पुराने कर्म जोर लगाते हैं। पिछले जन्म के कर्म भी कई बार जोर लगाते हैं और व्यक्ति के अंदर कहीं न कहीं कोई कमजोरी होती है तो व्यक्ति भटक जाता है।

ध्यान करने वाला व्यक्ति, ध्यान से जुड़ा व्यक्ति भटक सकता है अटक नहीं सकता। फिर वह जागृति आयेगी भीतर से और वह फिर चल पड़ेगा। बुराइयों की ओर से हटकर अपने आपको ऊपर ले जायेगा। ध्यान से जीवन में दिव्यता (Divinity) आती है और जब दिव्यता Divinity आती है तो Unity भी आ जाती है। जब तक भीतर से दिव्यता नहीं आती तब तक वह व्यक्ति कभी भी सुन्दर नहीं हो सकता है। बाहर की सुन्दरता ज्यादा काम नहीं करती है जब तक कि भीतर की सुन्दरता न हो। क्योंकि बाहर की सुंदरता समस्याएं लायेंगी। भीतर की सुंदरता सारी समस्याओं को दूर कर देगी। भीतर की सुंदरता जीवन की हर चीज या हर व्यक्ति को सुंदरता का रूप देती है। परमात्मा, ठाकुर के साथ जुड़े हुए व्यक्ति को हर चीज सुन्दर ही लगती है। क्योंकि ठाकुर स्वयं 'तन भी सुन्दर मन भी सुन्दर तू सुन्दरता की मूरत हो' की भाँति सुन्दरता को भी सुन्दर बनाते हैं। मधुर को मधुर बनाते हैं।

'अधरं मधुरं वदनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्'

(श्रीमद् बल्लभाचार्यकृत मधुराष्टकम्)

वह मधुराधिपति का सब मधुर ही लगता है। लेकिन यह कब होगा? जब व्यक्ति ध्यान के माध्यम से जीवन की बुराइयों से उठकर ऊपर जायेगा तब।

देह गेह को आँगना, मानव नैकु निहार
कुंठा कर्कट, किंकरी, बुद्धि, बुहारी बुहार।

(२९)

श्रद्धा से सिर झुका दे

श्रद्धा एक ऐसा तत्व है जिससे जीवन भरा - भरा हो जाता है। जीवन में पूर्णता आती है और उसके अभाव में जीवन अपूर्ण रहता है, अशांत रहता है, अपूर्ण जीवन अशान्त रहेगा ही। उस तत्व के अभाव में हमारे जो शास्त्र रामायण, महाभारत, भगवद् गीता और पुराण जब उन्हें समझने लगते हैं तो वहाँ भी हमें शंका पैदा होती है। कौन सा वह तत्व है जो जीवन को जीवन बना देता है। जो व्यक्ति को जीवन के रंगमंच का सर्वश्रेष्ठ कलाकार बना देता है। वह तत्व है श्रद्धा। गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक बात बहुत अच्छी कही-

'जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन कर साथ।
तनिकहुँ मानस अगम अति जिनाहं प्रिय रघुनाथ॥'

भीतर का मानस हो या रामचरित मानस हो उसे समझना बड़ा अगम हो जाता है, दुर्गम हो जाता है। उसको समझने के लिए तीन तत्व बहुत जरूरी हैं। पहली बात है श्रद्धा का संबल जीवन की यात्रा के लिए बहुत जरूरी है। संत का साथ और भी जरूरी है। वह श्रद्धा टिकी रहे, वह श्रद्धा अपने जीवन में बनी रहे उसके लिए संत का साथ आवश्यक है भगवान श्री कृष्ण भगवद् गीता में कहते हैंः

'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः'

जिसकी जैसी श्रद्धा हो वैसा ही वह व्यक्ति होगा। संत तो यह कहते हैं कि अगर एकलव्य ने मिट्टी की मूर्ति से जो सीखा वह श्रद्धा के बल पर सीखा। जो मिट्टी की मूर्ति एकलव्य को सिखा गई वह अर्जुन द्रोणाचार्य के पास रह कर भी नहीं सीख पाया। अर्जुन बहुत बड़ा योद्धा था, बड़ा धनुर्धर था लेकिन एकलव्य ने जो श्रद्धा के बल पर मिट्टी की मूर्ति से जंगल में रहकर, एकान्त में उस आस्था के बल पर उससे सीखा और ऐसा अचूक निशानची बना कि जंगल में एक बार गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ जा रहे हैं और दूर से एक कुत्ते के मुँह पर अचूक निशानों को देखकर बोले वाह। ऐसा भी कोई निशानची है? देखें कौन है? चलते-चलते आगे जा के देखा तो एक पुरुष एक मिट्टी की मूर्ति के सामने आराधना कर रहा है और शक्ति प्राप्त करके फिर निशाना लगा रहा है। द्रोणाचार्य ने पास जा के पूछा तो उसने बताया गुरुदेव आपको याद नहीं है मैं आपसे बहुत पूर्व में मिला था और आप से विद्या सीखने के लिए आया था किन्तु मेरा दुर्भाग्य कि मुझे आप की सेवा का मौका न मिला। देखिये ये शिष्य। ऐसा नहीं कहा कि आप राजाओं के गुरु थे, ऐसा नहीं कहा कि आप महलों में घिरे थे और आपने बड़े-बड़े लोगों को तो ध्यान दिया लेकिन मुझे धुत्कार दिया। एकलव्य ने गुरु को कोई दोष नहीं दिया। उसने कहा- मेरा दुर्भाग्य था कि आप के

चरणों का आश्रय नहीं मिल पाया। देखिये ये श्रद्धा, ये गुरुनिष्ठा, श्रद्धा दोष नहीं ढूँढ़ती। श्रद्धा में शंका कहाँ? हम जीवनभर श्रद्धा की आँख से देखें। शंका की आँख से नहीं। हम जब एक दूसरे से भी मिलते हैं तो शंका की आँख से नहीं बल्कि विश्वास की आँख से एक दूसरे को देखें क्योंकि हमारी ही दृष्टि सारा खेल पैदा करती है। जैसे - जैसे आप अपनी दृष्टि को पवित्र करते चलें जाते हैं जीवन मस्त होता चला जाता है। एकलव्य ने दोष नहीं दिया। उसने कहा गुरुदेव मैं आपकी सेवा में न रह सका ये मेरा दुर्भाग्य है किन्तु मैंने आप को अपना गुरु बनाया और मैं जंगल में चला आया और आपकी छवि को रखकर आप के प्रति श्रद्धा सुमन समर्पित करके मैंने आपसे ही सीखा। यह आप से ही सीखी हुई विद्या है। एकलव्य ने उस मिट्टी की मूर्ति से वह सीखा जो अर्जुन पास रह कर भी नहीं सीख पाया। किस बल पर! श्रद्धा के बल पर।

शंका की आँख से हम अपना भी नुकसान करते हैं और दूसरों को भी हानि पहुँचाते हैं। जीवन हानि पहुँचाने के लिए नहीं है। किसी की Balance sheet में अगर एक वर्ष घाटा हो तो शायद सहन कर लें लेकिन हर वर्ष ही घाटा होने लगे तो कैस चलेगा काम? व्यापार खत्म हो जाएगा। जीवन की Balance sheet भी कुछ ऐसी ही है। अपने जीवन को खुद कसें। हर शाम कसें, हर प्रातः कसें और फिर देखिये कि चिट्ठा कैसा बन रहा है? जो व्यक्ति इतना सावधान रहता है वह जीवन में प्रसन्न रहता है। जीवन में मस्त रहता है। जो लोग श्रद्धा का पाथेय लेकर जीवन की यात्रा का प्रारभ नहीं करते हैं उनके जीवन में पूर्णतया नहीं रही है। जो लोग श्रद्धा का प्रारंभ नहीं करते हैं उनके जीवन में पूर्णता कभी नहीं आयेगी।

गाय और बछड़े के बीच एक प्यार का संबंध है। माँ-बेटे का संबंध है। लेकिन गाय जब चरने के लिए जाती है और शाम को वापस लौट आती है तो खूंटी से बंधा हुआ बछड़ा माँ को देखते हुए 'माँ' करके पुकारता हुआ माँ का दूध पीने लगता है। सारे दिन का भूखा, सारे दिन की दूरी माँ को देखते ही माँ को प्यार करने लगता है। उसी गाय के थन के पास एक कील रहता है वो छोटी सी कील उस थन के पास रहकर भी खून पीता है। इतना करीब रह कर भी वह केवल खून पीता है। दूध नहीं और बछड़ा दूर रह कर भी दूध पीता है। कभी उसने खून की ओर ध्यान ही नहीं दिया। दूरी और देरी जीवन के संबंधों में अविश्वास पैदा नहीं करते बल्कि यदि श्रद्धा का संबल है तो दूर रहकर भी आप श्रद्धा का दोहन कर सकते हैं आप श्रद्धान्वित हो सकते हैं और यदि श्रद्धा का संबल नहीं है तो हो सकता है पास रहकर भी आप दोष दे सकते हैं। इसलिए श्रद्धा का संबल होना बहुत जरूरी है। संत तो यह कहते हैं कि हमारा शरीर रोगी हो जाए लेकिन हमारी श्रद्धा रोगी न हो। हमारे अंग को पक्षाघात हो जाये लेकिन हमारी श्रद्धा को पक्षाघात न हो। श्रद्धा बची है तो सब बचेगा। रामायण के दो पात्रों को देखिये आपको बहुत अच्छा भेद समझ में आयेगा कि श्रद्धा का संबल और संत का साथ जिसके जीवन में है उसका व्यक्तित्व कैसे निखरता है और जिसके जीवन में श्रद्धा का संबल नहीं होता, संत का साथ नहीं होता उसका जीवन किस तरह से

खाली रह जाता है। रामायण के दोपात्र एक शबरी हैं दूसरी शूर्पणखा। दोनों नारी पात्र हैं। शबरी की संस्कृति क्या है? और शूर्पणखा की संस्कृति क्या है? अपने भीतर शबरी भी है और शूर्पणखा भी है। फर्क दोनों में इतना ही है कि एक के पास राम चलकर जाते हैं और एक राम के पास चलकर जाती है। एक के पास श्री राम खुद जाते हैं और भर देते हैं। एक चलकर खुद श्री राम के पास जाती है तो भी खाली लौटती है। एक माँगती है राम से और एक मौन है। एक माँग कर भी खाली लौटती है। एक मौन रहकर भी पा लेती है। शबरी ने मांगा नहीं लेकिन भर गई। शूर्पणखा ने माँगा–

'तुम सम पुरुष न मो सम नारी
यह संजोग विधि रचा बिचारी'

गई भी अगर राम के पास तो क्या देखती है। केवल ऊपर का आकर्षण, चेहरे का आकर्षण, आकर्षण की संस्कृति कहाँ से प्रारंभ होती है और कहाँ तक ले जाती है। यह शूर्पणखा का चरित्र बताता है, आकर्षण, विकर्षण और घर्षण की संस्कृति किस तरह से जीवन को विनाश की ओर ले जाती है और अर्पण, तर्पण और समर्पण की संस्कृति किस तरह से जीवन को भरती है यह शबरी का चरित्र बताता है। एक श्री राम के पास पहुँच कर कहती है कि तुम जैसा पुरुष नहीं मिलेगा और मेरी जैसी सुन्दर स्त्री नहीं मिलेगी। राम के पास जाकर भी क्या प्रस्ताव रखा? रामायण के दोनों नारी पात्र के जीवन में कितना अन्तर है? एक इन्द्रियासक्त है तो दूसरी इन्द्रियातीत है, एक बहिर्मुखी है तो दुसरी अन्तर्मुखी है, एक आकर्षण, तो दूसरी समर्पण है। संत का साथ जीवन को कितना आगे बढ़ाता है, और जहाँ संत का साथ नहीं है बल्कि यज्ञों में जो विघ्न डालता है, और दूसरों को जो हर समय आलोचना करता है, यज्ञ, तप और दान तीनों जिसके समय में नष्ट होते हैं ऐसा रावण उसके संग में रहने वाली उसकी भगिनी शूर्पणखा और दूसरी नारी शबरी दोनों को देखिए।

'अधम ते अधम अति नारी
तिन्ह मह मैं मतिमंद अघारी'

कितनी नम्रता है। हर तरफ से अपने को नीचा कर देना ठाकुर के सामने। ठाकुर को निवेदन करती है ठाकुर! मैं जो भी हूँ तेरी हूँ, तू मुझे संभाल। हमारी संस्कृति अर्पण, तर्पण और समर्पण की संस्कृति है आकर्षण की नहीं। आकर्षण ऊपर से शुरू होता है। बाहर से शुरू होता है और आकर्षण Distruction की ओर ले जाता है। बाहर जब-जब आप फसेंगे विकर्षण होगा, Distruction होता तो निश्चित रूप से आप सफल नहीं हो सकते और सफलता नहीं होती तो संतोष भी नहीं मिलेगा। समर्पण का मार्ग भले ही नीचे से शुरू होता है। लेकिन भीतर से किसी को पता भी नहीं है कि मेरे भीतर कितनी श्रद्धा है। किसी को पता भी नहीं है कि किस आस्था से आप जी रहे हैं। समर्पण से मार्ग शुरू हुआ

जो आपको perfection की ओर ले जाता है। हमेशा किसी भी काम में आप समर्पण के साथ करेंगे तो पूर्णता की और ले जायेगा। समर्पण में कठिनाइयां तो होती हैं। Attraction में कोई कठिनाइयां नहीं हैं और Dedication में बड़े कष्ट झेलने होते हैं। Dedication - perfection - satisfaction and salvation. Dedication से यात्रा समर्पण में हुई। समर्पण से पूर्णता, perfection की ओर ले गई। समर्पण salvation की ओर ले गई। समर्पण salvation की ओर ले ही जायेगा क्योंकि आपको कुछ चाहिए नहीं। वहां कोई माँग नहीं है। और salvation से आप मुक्ति को प्राप्त करते हैं। यही हमारी संस्कृति है। यहाँ एक तरफ आकर्षण की यात्रा है और एक तरफ समर्पण की यात्रा है। शबरी इतनी तृप्त हो गई। सारी जिंदगी झाड़ू लगाती रही, अपने अंतःकरण को साफ करती रही।

संत के साथ का एक ही अर्थ है कि वह एक दर्पण की तरह होते हैं। उनके सामने बैठकर खुद को देखने का अवसर मिलता है। हम खुद को देख पाते हैं या नहीं वह तो अपना दोष है, लेकिन वह तो दर्पण है। दर्पण में भेद नहीं होता। जैसा व्यक्ति होता है वैसा ही दर्पण दिखाता है। एक गई अपनी प्यास बुझाने और खाली हाथ वापस लौट आई। सागर के पास जाकर भी अपनी प्यास न बुझा पाई और एक के पास सागर खुद जाता है और उसको भर देता है। एक माँगकर भी कुछ नहीं पाती और एक मौन रह कर भी ठाकुर उसको नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं। एक खोती है एक खो जाती है ये अंतर है। श्रद्धा और संत का साथ शबरी को कहाँ पहुँचा देता है कि ठाकुर उसके द्वार पर जाते हैं। किस-किस तरह से संतों ने भी तिरस्कार किया कि वह तो नीची जाति की है। लेकिन ठाकुर ने उसे अपनाया, गले लगाया। उसकी भक्ति की पवित्रता ने ठाकुर को भी खींच लिया। भक्ति यही तो करती है। अपनी इच्छाओं को ठाकुर की इच्छा में विलीन कर देती है। माँग समाप्त हो जाती है। क्योंकि ठाकुर सर्वशक्तिमान है। ठाकुर को पता है कि मेरी प्यास क्या है? जो भी हो जाये ठाकुर मैं तो तेरी इच्छा में मस्त हूँ। जो भी ठाकुर की ओर से आता है हम मस्ती से अपनाते हैं। तब तृप्ति आ जायेगी जीवन में।

(३०)

गुरु शिष्य संबंध एक दृष्टिपात

गुरु का अर्थ है प्रकाशक, गुरु का अर्थ है अन्तर्निहित सत्य को अपनी ज्ञान ज्योति से प्रकट करने वाला।

अर्थात सद्गुरु ज्ञानी होना चाहिए। अनुभवी होना चाहिए। मात्र जानकार नहीं, ज्ञान और जानकारी के बीच के अन्तर को समझ लेना आवश्यक है। जानकारी विभिन्न सूचनाओं के संकलन को कहा जाता है। जबकि ज्ञान के क्षेत्र में होता है सुना हुआ सत्य, देखा हुआ और अध्ययन किये हुए सत्य की अनुभूति और उसका जीवन में हुआ अवतरण। इस तरह ज्ञान जीवन का गुणात्मक रूपान्तर है। जबकि जानकारी केवल सूचनाओं का भण्डार है।

तत्वज्ञान का एक अध्यापक तत्वज्ञान के ग्रंथों की जानकारी से समृद्ध हो सकता है उन दर्शन शास्त्रों को रट कर अपने वाणी प्रवाह से प्रकट कर सकता है। परन्तु वह 'बुद्ध', 'महावीर', 'रमण महर्षि' या अन्य जीवनमुक्त महापुरुषों की तरह ज्ञानदीप्त नहीं हो सकेगा। इसके लिए तो जानकारी वाले ज्ञान नहीं परन्तु शास्त्र ज्ञान को अपने जीवन में समाविष्ट कर लेना पड़ता है।

यह कहना उचित नहीं है कि गुरु के आचरण के साथ शिष्य का कोई संबंध नहीं होना चाहिए। सच बात तो यह है कि शिष्य को गुरु के वचनामृत को श्रद्धापूर्वक संभाल कर अपने जीवन में रूपान्तरित करना चाहिए। विज्ञान, इतिहास या गणित के अध्यापक के आचरण के साथ शिष्य का भले ही कोई लेना देना न हो परन्तु आध्यात्मिक गुरु का आचरण ही शिष्य के लिए बड़ा बोध बना रहता है। भौतिक विषय का शिक्षक बाह्य विषयों की शिक्षा देता है, परन्तु आध्यात्मिक गुरु शिष्य की चेतना में आमूल परिवर्तन और रूपान्तर लाने का कार्य करता रहता है। इस कार्य को एक प्रज्वलित दीपक से दूसरे दीपक को प्रज्वलित करने जैसा है। एक प्रज्वलित, आलोकित दीपक ही दूसरे दीपक को प्रज्ज्लित कर सकता है। बुझा हुआ दीपक दूसरे दीप को प्रज्वलित नहीं कर सकता। इसलिए गुरु का ज्ञानी होना जरूरी है।

गुरु के आध्यात्मिक स्तर का विचार करते समय शिष्य की योग्यता और उसके अंदर रहे उमदा तत्वों का विचार करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि गुरु और शिष्य का संबंध फूल और गंध जैसे, प्रकाश और सूर्य जैसा,बाती और दीपक जैसा, चंदन और पानी जैसा है।

गुरु सर्वोच्च ज्ञान शिखरों पर विराजमान हो या सिद्ध हो परन्तु शिष्य सुपात्र न हो तो कुछ भी फलदायी नहीं हो सकता। इसीलिए भारतीय तत्व ज्ञान में शिष्य के गुणों के बारे में चर्चा की गई। शिष्य का मुल गुण है तीव्र बुद्धि, ग्रहणशीलता, श्रद्धा और विनम्रता। इतने

सामान्य गुणों द्वारा ज्ञान को आत्मसात करवाने के लिए अनिवार्य माना जाता है। बंजर भूमि में जिस प्रकार खेती नहीं हो सकती उसी तरह से शिष्य की उचित चित्तभूमि के बिना ज्ञान के फल नहीं लगेंगे।

अन्तिम महत्वपूर्ण बात गुरु शिष्य संबंध के विषय में है। गुरु शिष्य का संबंध सांसारिक संबंध जैसा नहीं होता। सांसारिक संबंधों में पकड़ना, जकड़ना और स्वाभिमान वाली वृत्ति होती है। सद्गुरु और शिष्य के बीच यह भूमिका नहीं होती। वह शिष्य को कोई आदेश, निर्देश अथवा प्रतिबंध से जकड़ता नहीं बल्कि वह तो उसे समस्त बंधनों से मुक्त करने की कला सिखाता है। शिष्य भले ही कृतज्ञतावश गुरु के प्रति सेवा द्वारा समर्पित हो, परंतु सद्गुरु अपने शिष्य से तिल भर भी अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि उसका कार्य तो अपेक्षा और अधिकार की डालियों को काटकर आकाश की तरफ मुक्त प्रयाण करना ही होता है। ऐसे गुरु की तरफ शिष्य का पूर्ण-स्वरूप में समर्पण अर्थात गुरु पूर्णिमा जैसा है।

(३१)

''मैं'' के पार है ''वह''

धर्म के द्वार पर जिसने जरा सी दस्तक दी है, वह इतना तो जान जाता है कि परमेश्वर तक पहुंचने का रास्ता ''मैं'' की दीवार को लांघकर पार करना पड़ता है। परंतु कई बार होता इसके विपरीत ही है। हम अस्तित्व के पार जाने की यात्रा करते हैं, ''मैं'' से मुक्त होना चाहते हैं किन्तु इस धर्मयात्रा का ही अहंकार लेकर ''मैं'' के किले को अधिक मजबूत करने लगते हैं। जिस ''मैं'' को विसर्जित करना था, इसे अधिक प्रतिष्ठित करवाने का आग्रह करने लगते हैं। इस आध्यात्मिक यात्रा पर दो कदम चलते ही अपनी विशिष्टता का ढिंढोरा पीटने लगते हैं। हमारा बाह्य आवरण, हमारे प्राण की पुकार, वह अहम् जिसे विसर्जित करना था, हमारा समूचा अस्तित्व तभी चीख-चीखकर कहने लगता है ''ऐ भाई! मुझे पूजो, मैं के सम्मुख झुको, देखो अब मैं विशिष्ट हो गया हूँ मैंने सब कुछ त्याग दिया है और मैं धर्म-साधना के पथ पर बढ़ चला हूँ जो कि वीरों का रास्ता है।''

यह है ''मैं'' का छल, आप इसे विसर्जित करने की कोशिश कीजिए, इसे मिटाने का प्रयत्न कीजिए, यह यहां भी चतुराई का खेल खेलेगा। धर्म पथ पर आरोहण से जिस ''मैं'' को मौन होना था वह कहेगा, अब मैं और भी मजबूत हो गया हूँ, देखो भाई! अब मैं पहले जैसा सामान्य नहीं रहा हूँ क्योंकि मैंने सामान्य लोगों के आकर्षण छोड़ दिए हैं, त्याग दिया है वह सब कुछ जो सामान्य जनों का तुच्छ संसार है इसलिए मैं त्यागी हूँ, धर्मधुरीण हूं, मुझे पूजो। जिस मैं को अकिंचन बनाने चले थे, वह और भी दुर्घर्ष हो गया।

परन्तु ''मैं'' का यह हठ क्या पूरा होता है? बस हठ ही है यह तो, न इसमें कोई तर्क है, न तथ्य और न सुफल। अहम् भले ही छल से अपने को सम्मानित कराना चाहे किन्तु इससे मान मिलता है।

परमहंस रामकृष्णदेव ने एक बार भक्तों के बीच चर्चा में कहा था, ''जानते हो सबसे बड़ा अहंकार कौन सा है?'' फिर उन्होंने स्वयं ही उत्तर दिया, ''धन, सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य, रूप और कुल का अहंकार इतना घातक नहीं होता जितना आध्यात्मिक और साधक होने का होता है।'' उन्होंने कहा, ''इन सांसारिक वस्तुओं का अहंकार तो धर्मबोध से मिट सकता है, परन्तु साधक होने का ही अहंकार हो जाये तो वह कैसे मिटेगा? यह तो ऐसे सर्पदंश के समान है, जिस का कोई इलाज नहीं है।''

धर्म पथ के पथिक को प्रायः पूजित होने की चाह बढ़ जाती है, अब वह चाहने लगता है कि सारा संसार उसे पूजे। धनपति, सत्ताधीश, सब उसे पूजे क्योंकि वह सबसे श्रेष्ठ है। त्यागी है इसलिए उसकी पूजा होनी चाहिए। वह इसके लिए आयोजन करता है कि उसका

पूजन – वन्दन हो। किन्तु इससे क्या हार्दिक पूजन होता है।

प्रकृति का एक नियम है, इस प्रकृति में से पदार्थ हों या मनोराज्य की चाह, जिसे छीनने बटोरने की कोशिश की जायेगी, उतने ही वेग से एक दिन उसका प्रतिलोभ आक्रमण भी होगा। धन बटोरेंगे तो धन का संकट झेलना पड़ेगा, सत्ता छीनेंगे तो सत्ता छिनेगी और मान बटोरेंगे तो जितन बटोरा है, उतना ही अपमान भी एक दिन मिलेगा। प्रपंच के मिथ्या बादलों का यही नियम है जो इन बादलों को पकड़ने की कोशिश करेगा उसके हाथ में एक दिन शून्य ही बच रहेगा। भक्त साधक इस सत्य को जानता है, इसलिए मान को प्रपंच से दूर ही रहता है । भक्त शिरोमणि 'कुंभनदास' को सम्राट का बुलावा आया कि सम्राट लोकविश्रुत भक्त का राजदरबार में सम्मान करना चाहते हैं, सम्राट ने बुलाया है। 'कुंभन दास' जी गए और लौट आने पर बोले–''मोको कहा सीकरी सों काम, आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम'' इत्यादि कहकर बहुत पछताए।

संत तुकारम की भक्तिगाथायें चारों ओर फैल चुकी थीं। छत्रपति शिवाजी ने संत के सम्मान के लिए पालकी भेजी और दरबार में सम्मानित करने का संदेश भेजा। संत तुकाराम अपने विठोबा के भजन में लीन थे। वे कभी पालकी को देखते, कभी अपने इष्टदेव की ओर फिर भावविह्वल हो बड़बड़ाने लगते। शिवाजी पालकी विठोबा... शिवाजी– पालकी विठोबा... और फिर विठोबा के श्री चरणों में गिर कर फूट–फूट कर रोने लगे, ''हे विट्ठल! मुझसे क्या भूल हो गई है, जो मुझे अपने से दूर करना चाहते हो, लीलाधर यह पालकी क्यों भेजी? क्या यह पामर तुम्हारे श्रीचरणों के लायक नहीं है? ''संत तुकाराम भाव विह्वल रोते जा रहे थे, विट्ठल के श्री विग्रह में मस्तक रगड़ते जा रहे थे। आखिर कहार और संदेश वाहक पालकी वापस लौटा ले गये, बाद में छत्रपति शिवाजी महाराज संतश्री के दर्शन के लिए वहाँ विट्ठलदेव के मंदिर में ही पधारे। मान के प्रति इतना चरम वैराग्य होता है कि भक्त के मन में सम्मान का आमंत्रण भी उसे बिच्छू के दंश जैसा लगता है।

मिटना ही जिसका लक्ष्य है, उसके लिए स्वयं को सर्वपूज्य बनाये रखना घातक है। किसकी पूजा, कैसी पूजा? तत्वविद जानता है कि उस एक ब्रह्म की ही यह जगत अभिव्यक्ति है, उसी परम पुरुष की यह विविधा प्रकृति है जो अनेक रूपों में भास रही है। तब फिर उस एक के इन अनेक रूपों में उसे खोजना–पाना तो मात्र भ्रान्ति ही है। मान किससे पाना है, पूजा किससे करवानी है? जब कि वह एक ही इन रूपों में अभिव्यक्ति हो रहा है? इन विविध रूपों में अभिव्यक्त होने वाले उस नारायण के सत्य स्वरूप को देखने के लिए ही भक्त व्याकुल रहता है, तब मान तो उसके लिए विष तुल्य हो जाता है। उसने स्वयं ही तो स्वर्ण माया से अपने स्वरूप को ढक रखा है, वह भक्त तभी तो व्याकुल होकर पुकार उठता है– हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् तत् त्वं पृषद् पावृणु सत्यस्य धर्माय दृष्टये॥'' हे सबके प्रतिपालक ईश्वर, तुममे अपने सत्य स्वरूप के दर्शन कर सकूँ।''

सत्यस्वरूप के दर्शन करने वाला भक्त तो स्वर्णमाया की विविधा के पार जाना चाहता है, उसमें मान कहाँ खोजता है? इसीलिए दैवी सम्पत्ति का अमूल्य गुण है ''नातिमानिता'' मान की चाह से विरक्ति।

संत कबीर ने इस मान की चाह रखने वाले अहम् का सत्य इन शब्दों में सार्थक ही बताया है–

''सब अँधियारा मिट गया दीपक रेखा माँहि।
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।''

(३२)

गंगा दशहरा

''भगवद्गीता किंचिद्धीता गंगाजललवकणिकापीता
सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुचे चर्चाम्''

(श्री शंकराचार्य)

गंगा दशहरा का पर्व पूरे भारत में मनाया जाता है क्योंकि गंगा का जन्म दिन है और जन्म दिन पर शुभकामनाएं की जाती हैं। आज हम कौन सी शुभ कामना करें ? या अपनी श्रद्धा अर्पण करें। गंगा तो अपने आप इतनी पवित्र है बल्कि पवित्रता , शीतलता, कर्मठता और अखंडता की प्रतीक है। ये भारत की गंगा है। वह गंगा जिसने भारत को कृतार्थ किया भारतीयता को कृतार्थ किया। स्वर्ग से उतरी धरती पर भगीरथ के प्रयत्नों को सफल किया। पीढ़ियों का उद्धार किया। गंगा के जल की एक बूंद भी यदि हम पी लेते हैं तो हमारे सारे पापों का हरण कर लेती है। गंगा एक नदी नहीं है। गंगा 'माँ' है। पूरे विश्व में बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं। कहीं आपने ये सुना है कि मीसीसीपी मैया ? नहीं ! ये भारतीय संस्कृति है जो ऐसी विशेषता से भरी हुई है इसलिए इसे 'गंगामैया' कहते हैं। भारत की संस्कृति, भारत की सभ्यता आज भी इतने आक्रमणों के बाद जीवित है। लेकिन हजारों सालों के बाद जो संस्कृति जीवित है। उस पर पिछले बीस वर्षों में इस पीढ़ी ने जो आक्रमण किया है, प्रदूषित किया है उसकी जिम्मेदारी हम सब पर है। पिछले बीस वर्षों में बहुत बड़ा आघात हमारी इस पीढ़ी ने दिया है। माँ गंगा को, इस संस्कृति को। तभी तो गंगा के किनारे बैठकर आरती गंगामैया की होती है और 'आम' खाकर छिलके गंगाजी में डालते हैं। गंगा के किनारे जा कर गंगा को प्रणाम भी करते हैं और उसी में साबुन से कपड़े भी धोते हैं। यह कैसी श्रद्धा ? होता तो यह है कि आज हमारी नयी पीढ़ी जब तीर्थो की ओर आती है और यहाँ की गंदगी को देखती है । यहाँ के वातावरण को देखती है तो उसको बड़ी अश्रद्धा होती है, कहते हैं, ये क्या है यहाँ पर ? अभी कुछ लोग आये थे मेरे पास, पहली बार बदरीनाथ की यात्रा पर गये थे और बच्चे बोले ये देखकर लगता है कि तीर्थों में हमें आना नहीं चाहिए। खैर ! मैंने समझाया, कहा ! तुम्हारी दृष्टि क्या होनी चाहिए। तीर्थों में प्रदूषण देखने की या अपने अंदर अपने आपको आभूषित करने की ? हमारा कर्तव्य क्या है ? हम गंगा को यह भेंट दें कि हम दूषित नहीं करेंगे। हम कोशिश करें कि हम सफाई करें। अपने होते हुए हम ऐसा कुछ करेंगे कि गंगा कम से कम हमारी वजह से दूषित न हो तो यह संस्कृति बची रहेगी। मैंने एक गीत सुना था

'मानो तो मैं गंगा मां हूँ
ना मानो तो मैं बहता पानी हूँ'

अगर तीर्थों में, इस गंगा में श्रद्धा है तो ये गंगा वास्तव में आपके पापों को हर लेगी। हमारा संशय ही हम को डस लेता है और तीर्थों में आकर भी हम खाली हाथ लौटते हैं क्यों? क्योंकि हम सोचते हैं इसमें तो बहुत गंदगी है। हम स्नान नहीं करेंगे। ऐसा भाव न रखें। आप तो अपने भाव से स्नान करें और अपना प्रयास करें अपने ही मन की शंका है जो हमारे जीवन में शंका पैदा करती है।

'जीत चूके जो अखिल विश्व को, उन्हें हराती मन की शंका
बन सकते हो राम स्वयं तुम जीत सको जो मन की लंका।'

भीतरी गंगा को हमें पवित्र करना है। माँ भगवति गंगा किसी भी भेदभाव के बिना सबको नहलाती है। सबको अपना जलपान कराती है, सबको अपना प्यार देती है। हम अपनी ओर देखें, हमारा जीवन भी सबको प्यार दे पाता है? जिन-जिन से हमारे स्वार्थ जुड़े हैं जिन-जिन से मैं जुड़ा हूँ, मेरा नमक जु.डा है केवल उनको ही प्यार दे पाते हैं। लेकिन 'कुटुम्बकम्' की भावना रखनी चाहिए। कोई भगीरथ बने और गंगा लाये। हम उस पर बैठकर आनंद करें। सायंकाल का समय बितायें या प्रातः स्नान करें हमें खुद को भगीरथ बनाना होगा। यह जीवन इसलिए नहीं मिला है कि हमें जो मिला है उसका उपभोग करें। यह आपका पुण्य है कि आपको यह मिला। लेकिन जीवन की साधना यही है कि हम रोज-रोज भगीरथ बनें। व्यक्ति सचमुच गंगा की शरण में आ गए तो वह इतना शीतल हो जायेगा कि वह दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझने लगेगा। प्रयास से यदि भगीरथ गंगा ला सकते हैं जो कि इतना कठिन कार्य था। अपने साठ हजार सगर पुत्रों का उद्धार कर सकते हैं और एक ऐसी परम्परा छोड़कर जा सकते हैं जो युगों-युगों तक सबको पवित्र करती रहती है। तो क्या हम इतनी भी परम्परा शुरू नहीं कर सकते कि हम अपने को पवित्र करें।

(33)

पुराणों एवं काव्यों में योग-कथायें

दिव्य पुरुषों का जीवन चमत्कारों का अक्षय भण्डार है। हमारे पुराण और काव्य इस प्रकार के आख्यानों से भरपूर हैं। दिव्यता स्वयं आध्यात्मिक प्रयोगों का पर्यायवाची है। वह एक ऐसा अद्‌भुत प्रकाश है, जिसमें साधक का अंतर्जगत आलोकित हो उठता है और वह कुछ क्षणों के लिए भीतर और बाहर के एकत्व की अनुभूति से अभिभूत हो उठता है। यही अनुभूति योगशास्त्र के सूत्रों में 'यद् यद् पिण्डे तद् तद् तद् ब्रह्माण्डे' कही जाती है। अर्थात् देश-काल में निबद्ध व्यक्तित्व का देशकालातीत समष्टि में विलय हो जाता है और सृष्टि की क्रियाएं योगी के करतल गत हो जाती हैं। यदि इन सिद्धियों का उपयोग भौतिक उपलब्धियों एवं स्वार्थ और सस्ती लोकप्रियता के लिए किया जाने लगा है, तो योगी की आत्मशक्ति क्षीण होने लगती है और वह सिद्ध पुरुषतत्व की ओर बढ़ने की अपेक्षा भ्रान्त पथ की ओर बढ़ने लगता है तब उसके चमत्कार मदारी के खेल से अधिक मूल्यवान नहीं रह जाते हैं। इसके विपरीत यदि साधक -योगी इन अनुभूतिगत उपलब्धियों के विमोह में ग्रस्त हुए बिना अध्यात्म के अगाध 'चरैवेति' का संबल लिए आगे बढ़ता ही जाता है, तो अपने जीवन के माध्यम से संसार के लिए एक अद्‌भुत, अलिखित, कालजयी उपन्यास छोड़ जाता है, जिसे जनत एवं विशेषतः भक्त मंडली पढ़ती है और चमत्कृत होती है। ऐसे ही प्रयोगों की असंशय कथाएं हमारे पुराणों में और महाकाव्यों में प्रतीकों, रूपकों और आख्यानों की शैली में कही गई है। हमारे पूज्यतिपूज्य उपास्यदेव भगवान शिव, लीला पुरुषोम अवतारी पुरुष भगवान कृष्ण और मर्यादा पुरुषोम भगवान राम ऐसे ही आदर्श पुरुष हैं। जिनका जीवन-वृत्त अनिर्वचनीय है, परन्तु उसमें योग-सिद्धि की अनेक पाठशालायें विद्यमान हैं। प्रस्तुत लेख में कुछ ऐसी ही झांकियां दर्शनीय हैं। इसी आधार पर अन्य सिद्धों एवं संतों के जीवन की भी परख की जा सकती है।

१. महायोगी शिव की योग-कथायें

भगवान शिव 'महादेव' देवाधिदे, 'परब्रह्म', 'परात्पर ब्रह्म' आदि मंत्रात्मक विशेषणों द्वारा जाने जाते हैं। 'भगवान' का अर्थ होता है 'ऐश्वर्यवान' 'अमित ऐश्वर्यवान' और अमित ऐश्वर्य का अर्थ होता है 'चिन्मय संपत्तियों से भरी हुई मुट्ठी या झोली' एक उदाहरणतः दिग्विजयी महाराज रघु के सर्वस्व दान के पश्चात बचा था केवल एक मिट्टी का पात्र और वे कहलाये 'मृद्पात्र शेष विभूतिः' (रघुवंश) आ गये कौत्स ऋषि के पास, कौत्स वरन्तु ऋषि के शिष्य थे वे बोले राजन! अध्ययन समाप्ति पर चौदह विद्याओं के बदले उन्हें गुरु दक्षिणा में चौदह करोड़ अशर्फियाँ देनी थीं (कोटिश्चतस्रोदश चाहरेति रघुवंश)

महाराज रघु एक क्षण असमंजस में रहे परन्तु उससे उबरते ही धनाध्यक्ष कुबेर को आदेश दिया। अहंकार के वशीभूत देव कुबेर के द्वारा आदेश पालन में विलम्ब होता देख महाराज रघु अभियान की तैयारी कर ही रहे थे कि आकाश से स्वर्ण की ऐसी अपार वर्षा हुई राजा का कोष भर गया पर ऋषि कौत्स ने केवल दक्षिणा मात्र की चौदह करोड़ अशर्फियां ही लीं।

यह एक उदाहरण मात्र है, जो इतिहास के अंचल से प्रतीक की शैली में, महाकाव्य के कथानक में कल्पना के धनी कालिदास ने गूँथा । कैसे ? क्योंकि कवि स्वयं सिद्ध पुरुष होता है और अंतर्जगत में ऐसे कथानकों का साक्षात्कार करता है। यह उसकी मानसी सृष्टि के उपहार होते हैं। महाकवि कालिदास सर्वविदित शैव और महान शिव भक्त कवि थे। इस दिव्य भक्ति के प्रसाद से ही उन्होंने शिव चरित को 'कुमार संभवम्' में गूँथा और इक्ष्वाकु वंश के राजा रघु और राम के वंश चरित को 'रघुवंश' में प्रस्तुत किया। यही परंपरा हिन्दी के महाकाव्य 'रामचरित मानस' में तथा अन्य श्रेष्ठ कृतियों में प्रस्फुटित हुई है। यह सब महाकाव्य पुराणों के ऋणी हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं– शिव पुराण (वृहत वायु पुराण का परिशिष्ट) अग्नि पुराणा, श्रीमद्भागवत् महापुराण और देवी भागवत पुराण। कथाओं के उदाहरण केवल लोकप्रिय काव्य 'रामचरितमानस' से इस लघु लेख में प्रस्तुत हैं।

(१) मन के कमण्डल में अगाध सरोवरः 'रामचरितमानस'

भगवान शिव का मानस श्रेष्ठ वाङमय का उद्गम-स्थल है। कैलासगिरि का मानसरोवर; शिव के मानस की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। इस मानसरोवर में किसी दिव्य क्षण में चमत्कार घटित हुआ था। एक श्याम आभा का धनुर्धर सुकोमल महापुरुष इस दिव्य सरोवर में आकण्ठ स्नान के लिए प्रविष्ट हुआ, परन्तु फिर बाहर नहीं आया। लहरों पर थिरक रही थी ध्वनिमयी एक वीणा–**'मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी।'** यही था उस अवतारी पुरुष का ध्वनित वाङ्मय वपु!

गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्टोक्ति कि है **"भनिति मोर सिवकृपा विभाती"** और इस रामचरित को **"रचि महेस निज मानस राखा, पाय सुसमउसिवा सन भाषा"** (बालकाण्ड, 35) यह एक युगातीत कथा, कल्पों के प्रांगण में कूदती-फाँदती, शिव के मन के मानसरोवर में, सरयू की धारा का सहारा लेकर समाई रही। पार्वती जैसा प्रबुद्ध दिव्य श्रोता प्राप्त होते ही यह 'रामकथा' बनकर फूट पड़ी-**"ताते रामचरितमानस वर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।"** निष्कर्ष सफल कथावस्तु वही है जो कथाकार के मन से अनायास फूट पड़े और सही श्रोता के कानों तक सही समय पर निर्विघ्न पहुँच जाये। यह था शिव की विराट स्मृति का चमत्कार। रामचरितमानस के रूप में परब्रह्म, युगातीत सनातन पुरुष का चरित भगवान शिव के विराट चिंतन में युगों तक समाया रहा। भगवती पार्वती के पूर्व जन्म के विमोह के निवारण के लिए वह लोक कल्याण की वाणी बनकर महाकाव्य के रूप में प्रकट हुआ। अब मन की दुरबीन का चमत्कार देखिये।

(२) झूठ छिपाये नहीं छिपाः शिव-दृष्टि

एक दिन शिव-सती (परवर्ती जन्म की पार्वती) के साथ शिव को महर्षि अगस्त्य से मिलने जाना था। वे तल्लीन थे और भगवती सती उनकी गति में तल्लीन थी। अचानक दो सुन्दर मुनि- कुमार खोये से, किसी को खोजते हुए सामने से निकले। शिव के मुख से अचानक निकल पड़े ये शब्द ''जय हो जगपावन सच्चिदानंद''। सती चौंक पड़ी और पूछा, ''ये कौन थे, प्रभु मुझे बताओ।'' उत्तर कौन देता, शिव तो ध्यान- लोक में खोए हुए थे- **''भए मगन छवि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहित न रोकी।''**

प्रजापति दक्ष की रूपगर्विता पुत्री को विश्वास नहीं हुआ कि उनके पति से बढ़कर भी कोई हो सकता है। शिव ने संकेतों से समझाया- **''सुनहुए सती तब नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिए उर काऊ।''** ''भूलकर भी संशय न करना मेरी अर्धाङ्गिनी, अन्यथा हमारे दापत्य जीवन में दरार पड़ सकती है।'' शिव का यह कथन व्यर्थ हो गया और देवी सती परीक्षा किये बिना नहीं मानी। परीक्षा भी कैसी कि उन्होंने सीता का वेश धारण करके भगवान राम को भ्रम में डालना चाहा। विफल होकर जब शिव के पास वापस लौटी, तो अपने अपराध को छुपाने का असफल प्रयास किया, परन्तु योगी शिव ने मन की दुरबीन से सब कुछ देख लिया-**''तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सब जाना।''** (बालकाण्ड 56) यह थी योगी की आध्यात्मिक दुरबीन।

(3) सती के विफल-सफल योग-प्रयोगः महायोगिनी का पद

सती को महायोगिनी बनना था। वे अभी इसके प्रशस्त पथ पर अग्रसर ही हुई थी। वे शिव की अर्धाङ्गिनी बनने की तैयारी में थीं, और वह पूर्ण होनी थी, शैल कुमारी पार्वती के जीवन में। अपने पूर्व जन्म में उन्होंने भगवान राम से छल किया और अपने आराध्य पति से झूठ बोला। पश्चाताप की अग्नि में हृदय की मलिनता मिटी तो, परन्तु तड़पन शेष थी-**''निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपई अवाँ इव उर अधिकाई।''** (बालकाण्ड 58)

एक प्रयोग तो विफल हो चुका था। भावी जीवन की महायोगिनी ने भौतिक सिद्धि के बल पर वेश परिवर्तन तो कर लिया था, 'सती' से 'सीता' बन गई थी, परंतु असत्य के मिश्रण से सिद्धि अधूरी रह गई थी। वह असत्य दण्डित हुआ, पति शिव द्वारा परित्यक्त किये जाने पर और पिता दक्ष द्वारा अपमानित किये जाने पर **'दच्छ न कछु पूछी कुसलता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता'** और अब देवी सती योग- सिद्धि के लक्ष्य तक पहुँच चुकी थी- योगाग्नि में उन्होंने देह को भस्मीभूत कर दिया। और अहंकारी दक्ष का आधिभौतिक यज्ञ विश्वस्त हो गया। इन दो यज्ञों में से एक परिपूर्ण आध्यात्मिक योग उदित हुआ। **'सती मरत हरि सन बरुमाँगा। जनम-जनम सिव पद अनुरागा'** (बालकाण्ड 65)। अब सती जगदम्बा बन गई थी-**'जब ते उमा सैल गृह जाई। सकल सिद्धि संपत्ति तहँछाई।'** यहाँ से देवी भागवत पुराण की परम्परा प्रादुर्भूत हुई। महा शिव परम योगी हैं और भगवती पार्वती महा योगिनी।

(४) कैलासगिरि से सुबेल पर्वत तक एक ह्रदय शिवऔर हनुमान का तादात्म्य

हमारे पुराण तो आख्यानों के कोश कहे जा सकते हैं, परंतु इन धार्मिक कथाओं में भौतिक जगत की नहीं वरन अध्यात्म- जगत की कथायें ही होती हैं। ऐसी एक कथा का और भी उदाहरण महाकाव्य रामचरितमानस से प्रस्तुत है। इसका संबंध महयोगी शिव और उन्हीं के अंशावतार पवन पुत्र हनुमान से है।

भगवान राम और शिव की प्रीति की कथा बड़ी रहस्यमय है। उनकी प्रीति के अनेकानेक प्रसंग शैव और वैष्णव पुराणों में वर्णित हैं। इन्हीं में से एक को संजोया है तुलसीदास जी ने राम और शिव के बीच में हनुमान को लाकर। हनुमान भी भगवान राम के अत्यंत प्रिय थे। अन्तर यह था कि शिव का नाता भगवान राम के साथ 'सेवक- सखा- स्वामी' का संमिश्रित नाता था, परंतु हनुमान का नाता तो केवल सेवक- स्वामी का था। वे तो अनन्य, सर्व समर्पित, मूक सेवक थे। प्रसंग इस प्रकार है।

जब हनुमान भगवती सीता की खोज करके लंका से वापस आये, तो भगवान राम उनके इस कार्य से अभिभूत हो उठे। कृतज्ञता मनुष्य का दैवी गुण है, परंतु जब देवता कृतज्ञता से द्रवित हो उठा हो, तब उस भावना की क्या सीमा होगी? भावना की चरम सीमा प्रायः भगवान का दर्शन करा देती है। दूसरे शब्दों में ''भावना की चरम सीमा ही भावना है, जिन क्षणों में जीव तत्व ईश्वरत्व से एकाकार हो जाता है। राम और हनुमान के बीच ऐसे ही दिव्य क्षण घटित होते रहे हैं। यह मर्त्यलोक की ऐसी झाँकी थी, जिसमें उसका संबंध देवलोक से जुड़ रहा था। 'सुबेल पर्वत' पर राम और हनुमान के बीच सेवक और स्वामी का एक प्रेम-योग घटित हो रहा थाः

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहि कोउ सुर-नर मुनि तनु धारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होई न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि विचार मन माहीं
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता।
लोचन नीर पुलक अति गाता॥

(सुन्दर काण्ड 32)

राम हनुमान को बार-बार निहार रहे थे, उनकी आँखों में प्रेमाश्रु थे और शरीर रोमाञ्चित हो रहा था।

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमन्त।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि भाहि भगवंत॥
बार-बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठव न भावा॥

(सुन्दरकाण्ड 32-33)

भगवान की भावुकता को श्री हनुमन्त लाल ने अहंकार का जनक माना जो भक्त के लिए अत्यधिक हानिकारक माना गया है। अतः "त्राहि-त्राहि भगवन्त" कहकर चरणों में गिर पड़े।

भगवान राम बार-बार हनुमान को उठाना चाहते हैं, पर वे उठते नहीं, क्योंकि प्रेम की मग्नता में अनुभूति समाप्त हो जाती है। तीन दिव्य हृदयों की एकाग्रता का चित्रण, गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रकार किया हैः

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥
सावधान मन करि पुनि संकर।
लागे कहन कथा अति सुंदर॥

भगवान शिव कैलास के शिखर पर अपने विश्राम-विटप एक वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए पार्वती को राम- कथा सुनाते- सुनाते रुक गये। वे ध्यान रस में लीन होकर धारा प्रवाह कथा बाँच रहे थे, पर उस प्रवाह में एक लहर ऐसी आई कि थोड़ी देर को उनका ध्यान भंग हो गया। उनकी दृष्टि कैलास से उतरकर सुबेल पर्वत के शिखर पर ठहर गई जहाँ भगवान और भक्त की अनोखी प्रेम-लीला का दृश्य उपस्थित था। भगवान राम का कर कमल हनुमान के शीश पर रखा हुआ था। अपने ध्यान के चक्षुओं से शिव ने इसे देखा और वे आत्म विस्मृति की अवस्था में कथा कहते-कहते रुक गये, परंतु शीघ्र ही उन्होंने अपने को सावधान किया और उस सम्पूर्ण प्रेम-योग की लीला को अपने हृदय में अवस्थित कर लिया। अब वह दृश्य रस बन गया था, ब्रह्मानन्द सहोदर बन गया था। अतः एक पल के विराम ने शिव को नयी चेतना प्रदान की और पार्वती के प्रति राम-कथा के वाचन में रस-धारा प्रखर हो उठी। तब कथा के आदि कलाकार शिव सुन्दरतर कथा-शैली में प्रवृत्त हुए। अब राम भी प्रसन्न अर्थात पूर्ण आत्मस्थ थे, हनुमान भी और शिव भी। आकाश, अंतरिक्ष और धरती का भावात्मक त्रिकोण अब संतुलित हो चुका था। इसका अंतर्दर्शन प्राप्त करके 'गिरा को पावन' करने वाले प्रयोक्ता कवि ने कथा के अगले सोपान की ओर दृष्टि दौड़ाई।

यह संक्षिप्त कथात्मक निबंध भारतीय योग-दर्शन की विशालता का परिचय देता है। इसके अन्तर्गत यज्ञ-विधान, ध्यान-समाधि, अष्टांग योग, कलात्मक सृजन और साहित्यिक रचना आदि सभी धार्मिक और सांस्कृतिक चेष्टायें एवं प्रयास समाविष्ट हैं।

वेदचतुष्टयी, उपनिषद–एकादशी और पुराण–अष्टादशी ये सभी ऋषियों, देवताओं और भक्तों के हृदय को संतुष्ट करने के साथ–साथ कलिकलुष विनाशन भी हैं। वर्गीकरण, शास्त्रीकरण और अभिव्यक्तिकरण, कथा लेखकों, कवियों, नाटककारों को एक चुनौती है। आइये, हम आधुनिक प्रतिभा के सूत्रों को पुरातन मनीषा की सिद्धियों से जोड़ने का प्रयत्न करें।

(३४)

देश भक्तों की भागवत अनुभूति

अध्यात्म चेतना भारत भूमि की मौलिक चेतना है। वैयतिक जीवन से लेकर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन तक इसकी अभिव्यक्ति हमारे इतिहास के आदि लेकर अद्यावधि होती आई है। स्वामी विवेकानन्द ने इसी के द्वारा पूर्व और पश्चिम के बीच भावनात्मक सेतु की रचना की थी, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने इसी के माध्यम से स्वतंत्रता को जन्मसिद्ध अधिकार घोषित किया था और महात्मा गांधी ने इसी की सार्वभौम अनुभूति कराकर न केवल अपने देश के लिए स्वतंत्रता प्राप्त की, अपितु अनेक देशों (उपनिवेशों) की स्वतंत्रता के द्वार खोल दिए। यह अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर सर्वम् खल्विदम् का ही चमत्कारिक प्रयोग था। यह अनेक प्रकार की, शतकोटि मानवों की, भक्तियों का समुच्चय था। भक्ति का मूल तो श्रद्धा विनय और अहंकार शून्यता की त्रिवेणी है, वस्तुतः इसमें सभी दिव्य मानवीय गुणों का समन्वय होता है। इसलिए कर्मयोगी एवं भक्त, भक्ति को मुक्ति से भी श्रेष्ठ मानते हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इसी महामुक्ति का सफल प्रयोग किया गया था। उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध और बीसवीं का उत्तरार्ध इसी महानाटक का अभिनय था, जिसके अनेक नेताओं में प्रमुख थे- शिशिर कुमार घोष, लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनी बेसंट, महामना मदन मोहन मालवीय जी, महात्मा गांधी, महर्षि अरविन्द, श्री माँ राधाभाव की प्रतिमूर्ति, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती और श्री चितरंजन दास। ये कुछ उदाहरण मात्र उन तेजस्वी देशभक्तों के हैं जिन्होंने अध्यात्म चेतना को राजनीति के साथ जोड़ा था। भारत में भगवान के दिव्य विग्रह का दर्शन किया था और राजतन्त्र तथा लोकतंत्र के बीच विभाजक रेखा मिटाने का प्रयत्न किया था। इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक नाम अविस्मरणीय हैं, यथा गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपतराय, चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, आदि जिनका आत्मबल, जिनकी संकल्पशक्ति, तन्मयता, तेजस्विता, प्रतिभा और वाग्मिता भक्ति और योग के ही वरदान थे। लगता था कि जैसे अनेकानेक प्राचीन तथा मध्यकालीन संतों और भक्तों का उनके दिव्य जीवन में अवतरण हुआ हो, पौराणिक और ऐतिहासिक भक्तों का नचिकेता, ध्रुव, प्रहलाद, हनुमान तथा कबीर-नानक-दादू-रैदास-तुकाराम-ज्ञानेश्वर, और मीरा- सूर- तुलसी रसखान-चैतन्य महाप्रभु संतों-भक्तों-योगियों की लंबी जीवन श्रृंखला का, जो एक साथ नया संदेश लेकर उनके समवेत जीवन में प्रतिध्वनित हो उठी हो, उनकी अध्यात्ममयी लोकतांत्रिक चेतना में वेद, उपनिषद, भगवत्-गीता, रामायण और रामचरितमानस आदि आर्ष ग्रन्थों की अन्तःप्रेरणा विद्यमान थी।

१. चैतन्य भक्त शिशिर कुमार घोष

यह जन्मजात भक्त थे। देशभक्ति और अध्यात्म का सक्रिय समन्वय इनके रसार्द्र जीवन में मूर्तिमान हुआ था। एक ओर शस्यश्यामला बंगभूमि की नैसर्गिक शोभा ने इनके हृदय में मातृभूमि का अनुराग जगाया और दूसरी और अभिनव कृष्ण गौरांग देव के चरित्र ने इनकी अनुभूतियों को श्रीराधाकृष्ण के चरणार्विन्द के मकरन्द से अभिषित कर दिया। एक ओर इन्होंने राजनीति के प्रांगण में क्रान्तिवाहिनी ''अमृत पत्रिका'' के द्वारा सत्याग्रही क्रान्ति का सूत्रपात किया और उसे अपनी ''स्प्रिचुएल मेग्जीन'' के समानान्तर संचालित किया तथा दूसरी ओर श्री गौराङ्गदेव के ''अभिय निमाई चरित'' जैसी प्रसिद्ध कृति द्वारा अपनी राष्ट्रीय चेतना को वैष्णवता के माधुर्य से रसवंती बनाया। इन्होंने कुछ दिन देवधर वैद्यनाथ की रमणीय भूमि पर बिताये, जिसकी प्राकृतिक शोभा के उद्दीपन से ''काला चांद गीता'' की रचना की, जिसे प्रेमाभक्ति का उत्कृष्टतम् काव्यग्रन्थ माना जाता है। उसकी अचल मान्यता थी कि परमात्मा और उनकी दिव्य भक्ति सदा जीव के कल्याण में तत्पर है, जड़ जगत के पीछे नित्य चेतन सौंदर्यनिधान भगवान विद्यमान हैं और समय की दुर्लभ निधि भगवान का ही उपहार है। देवधर की पहाड़ी पर एक नीलकुसुम को खिला देखकर उसके सृष्टा की कला पर मुग्ध होकर वे गा उठे थे।

''एई वनफूल सुन्दर अतुल, थइलेन तृण माझे
सकल लोक जाय नाहिं देखे ताय, विवत संसार काजे''

''काला चांद गीता'' की रचना का प्रेरणा-स्रोत यही नील कुसुम था। महात्मा शिशिर कुमार घोष एक सच्चे हिन्दू और राजनैतिक सन्त थे। लोकमान्य तिलक उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। जीवन के चालीस साल उन्होंने हिन्दू समाज के उत्थान और राजनीतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके परम धाम प्रयाण के अवसर पर गोपाल कृष्ण गोखले महोदय ने कहा था- ''मैं तो उनके जीवन में देशभक्ति और आध्यात्मिकता का अद्‌भुत समन्वय देखकर चकित रह जाता था। उनका देशभक्ति से व्यग्र चित्त भगवद्‌भक्ति में शान्ति प्राप्त करता था और इस तरह अशान्ति और शांति में उन्हें परमानन्द की अनुभूति होती थी। इस राष्ट्रीय संत ने विक्रमाब्द 1967 में सत्तर वर्ष की आयु में देह-विसर्जन किया।''

२. लोकमान्य तिलक

कितना प्रिय पावन नाम था उनका : बालगंगाधर तिलक, शीतलता और प्रकाश के समन्वय, भक्ति और राजनीति के अद्‌भुत प्रयोक्ता, नाम मे भगवान शिव की झांकी और काम में श्रीकृष्ण विराजमान। नाम का एक अंश बेतुक था, दूसरा पारिवारिक और तीसरा अंश एक उपाधि थी, जो जनता द्वारा अर्पित श्रद्धा प्रसून था। माथे की पगड़ी जटाजूट की प्रतीक, भाल की बिन्दी बालेन्दु का चिन्ह, हाथ की छड़ी त्रिशूल का संकेत और धवल परिधान हृदय

की धवलता का प्रतिबिम्ब था। मथुरा के कारागार में भगवान कृष्ण का जन्म हुआ था। और माण्डले की जेल (रंगून) में श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी के षटवर्षीय चिन्तन से उनकी ''गीता रहस्य'' जैसी अमर कृति का सृजन हुआ। गीता उद्‌गीर्ण हुई थी कुरुक्षेत्र के ''महासमरस्थल'' में, उसी प्रकार गीता के कर्मयोग की विशाल प्रयोगशाला उनके समक्ष आई भारत के स्वतंत्रता संग्राम में। इनके विनायक सिद्ध हुए गणनायक गणेश की उपासना-भूमि महाराष्ट्र के सेनानी संत श्री बालगंगाधर तिलक। क्या यह स्पष्ट ज्वलंत प्रमाण नहीं है कि एक शताब्दी के भारतीय सत्याग्रही संग्राम की अन्तश्चेतना अध्यात्ममयी थी? इस राजनीतिक जगत के दिव्यनक्षत्र श्री तिलक ने गीता रहस्य का उपसंहार संत तुकाराम की वाणी के साथ किया है

चतुराई चेतना सभी चूल्हे में जाते,
बसा मेरा मन एक ईश चरणाश्रम पावे।
आग लगे आचार-विचारों के उपचय में,
उस विभु का विश्वास सदा दृढ़ रहे ह्रदय में।।

आगे हम देखेंगे कि अनेक आधुनिक राजनीतिक गोपी भवन में पगे हुए थे।

3. भक्तिमनी ऐनी बेसेंट :

डॉ. ऐनी बेसेंट ने भारत के आध्यात्मिक क्षेत्र में जो भी वृद्धि की, वह एक ऐतिहासिक तथ्य है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि-मुनियों तथा वेदों की पवित्र भूमि को वे अपनी मातृभूमि समझती थीं । यद्यपि उनका जन्म आयरलैंड और पालन पोषण इंग्लैण्ड में हुआ था, परन्तु उनके जीवन का दो-तिहाई भाग भारत में बीता। विश्व को भारतीयता और ईश्वर भक्ति के रंग में रंग देना उनके जीवन का एक पवित्र उद्देश्य बन गया था। मानवीय चेतना को भौतिकता के स्तर से ऊपर उठाकर आत्मराज्य में प्रतिष्ठित कर दिखाना, उनके जीवन का परम ध्येय बन गया था। धार्मिक राजनैतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में उन्होंने इस पुण्य भूमि के उत्कर्ष का तत्प्रयत्न किया। लाखों सुशिक्षित भारतीय उन्हें अपनी माता समझते थे और वे भारतीयों को अपनी प्यारी संतान कहकर पुकारती थीं ।

भारत में थियोसोफी समाज की स्थापना उनका ऐतिहासिक कृतित्व है। इस संस्था के माध्यम से उन्होंने भारतीय वेदान्त और ब्रह्म-निरूपण की वैज्ञानिक व्याख्या की जिससे यहां की जनता को नया मार्ग दर्शन मिला और अनेक पश्चिमी तत्वचिंतक भारत-भूमि की ओर आकृष्ट हुए। बंगाल में राजा 'राममोहन राय' के द्वारा ब्रह्म समाज का जो दायरा बना हुआ था उसे छोड़कर लोग इधर आकृष्ट हुए थे। थियोसोफी के सिद्धांतों की ओर डॉ. बेसेंट को आकृष्ट करने वाली महिला लंदन की विदुषी मैडम लैवेस्कीट थी, परन्तु इसके लिए उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र भारत को चुना। उन्होंने प्रायः समस्त भारत का भ्रमण किया था। हिन्दू धर्म में उनकी अक्षुण्ण आस्था थी। सैकड़ों शहरों में घूम- घूम कर उन्होंने प्राच्य अध्यात्म विद्या पर हजारों व्याख्यान दिये तथा मध्य और पूर्वी यूरोप का भी उन्होंने इन सिद्धांतों के प्रचार के

लिए दौरा किया। सन् 1901 में वे महाराजा कश्मीर की अतिथि हुई थीं । वहीं उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दुइज्म' लिखी।

भारत के अनेक मेधावी विद्वानों और नेताओं के संपर्क ने उन्हें लोक-सेवा के क्षेत्र का विस्तार किया। उन्होंने भारतीयों की आदर्श शिक्षा के लिए 'सेंट्रल हिन्दू कॉलेज' खोला और बाद में हिन्दू विश्व-विद्यालय की स्थापना के समय इसे महामना मालवीय जी को अर्पित कर दिया। प्रथम महायुद्ध छिड़ने के पहले ही उन्होंने भारत के राजनीतिक क्षेत्र में भी पांव बढ़ा दिये थे। सन् 1928 में अस्सी साल की अवस्था में उन्होंने भारतीय कांग्रेस का सभापतित्व भी स्वीकार किया था। उन्होंने घरेलू स्वराज्य (होमरूल्स) की माँग की थी और इसके लिए परिपत्र भी तैयार किये थे। वे इंग्लैण्ड से भारत का संबंध विच्छेद नहीं चाहती थीं , पर उनके लिए भारत की दासता भी असह्य थी। उन्होंने बड़ी आत्मीयता के साथ भारतीयों को स्वशासन, आत्मसम्मान और आत्मज्ञान की शिक्षा दी।

भारत के मनीषियों और महर्षियों से भक्तिमनी बैसेंट ने तन और अध्यवसाय की प्रेरणा प्राप्त की थी। वे अपनी योजनाओं को पूरा करने के लिए रात के आठ बजे से तीन बजे सबेरे तक एक आसन पर बैठकर कार्य करती थीं । उनकी सात्विकता और प्रेममयी पवित्रता ने अनेक कर्मठ विद्वानों को उनकी ओर आकृष्ट किया। उनका खान-पान पूर्णतया निरामिष था और सपूर्ण जीवन ही भारतमय था। अतः उन्हें नवीन भारत की जननी कहा जाता था। महात्मा गांधी ने एक बार कहा था- "जब तक भारतवर्ष जीवित है, लोग श्री ऐनी बेसेंट की गौरवपूर्ण सेवाओं और उनके कार्यों को श्रद्धापूर्वक स्मरण करते रहेंगे।" उनकी मृत्यु (1993 ई. 86 वर्ष) के अनन्तर उनकी इच्छा के अनुसार उनकी पार्थिव राख श्री गंगाजी की पवित्र धारा में प्रवाहित कर दी गई।

४. महामना मदन मोहन मालवीया

श्री मालवीया जी ब्राह्मण संस्कृति और हिन्दू राष्ट्रीयता के मूर्तिमंत स्वरूप थे। बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना द्वारा उनके उद्देश्य हिन्दुत्व की व्यापक व्याख्या और सार्वभौम हिन्दू जीवन पद्धति को व्यावहारिक रूप से प्रस्तुत करना था। अतः वह एशिया महाद्वीप की आदर्श यूनिवर्सिटी बन गई और अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षार्थियों की शिक्षा का प्रांगण बन गई।

मालवीया जी को आदर्श भागवत जीवन अपनी पारिवारिक परम्परा से प्राप्त हुआ था, अपने पितामह 'प्रेमधर' जी और पिता 'पं. ब्रजनाथ' जी से, जो दोनों ही श्री राधाकृष्ण के परम आराधक तथा वेश वाणी और व्यवहार में वैष्णव भावना की प्रतिमा ही थे। इनके घर में भगवान की दो फुट ऊंची सांवले रंग की सुन्दर मूर्ति थी। कहते हैं कि उनके पितामह ने 108 दिन में श्रीमद्भागवत के 108 पत्ता किये थे। देश सेवा और धार्मिक जीवन को मालवीय जी ने एकाकार बनाकर अपनी पैतृक परम्परा को नया मोड़ दिया था।

भगवन्नाम की महिमा का बोध इन्होंने अपनी माता से प्राप्त किया था। तद्नुरूप ये अपनी प्रत्येक यात्रा में 'नारायण, नारायण' का उच्चारण करते रहते थे। इनका कथन था कि इससे उनकी प्रत्येक यात्रा सफल होती थी और जब दो-चार बार भूल गये तो वह यात्रा असफल भी हो गयी। इनकी उदार वैष्णव भावना के अनेक प्रसंग प्रसिद्ध हैं। एक बार एक कुत्ते को कान के समीप घाव से छटपटाते देख वे व्याकुल हो उठे और उसके पागल होने की आशंका का परित्याग करके उसकी सेवा में स्वयं पागल हो उठे। उसके लिए औषधि लाये और बाँस की डण्डी में कपड़ा बांध कर दवा डुबो-डुबो कर लगाई। कुत्ते को आराम मिला और इस वैष्णव जन को परम शान्ति मिली।

इनके विषय में अनेक समकालीन महापुरुषों ने अत्यन्त श्रद्धापूर्ण उद्गार प्रकट किये थे। लीडर के सम्पादक सी.बाई चिन्तामणि कहते थे, 'वे सिर से पैर तक हृदय ही हृदय हैं', श्रीमती ऐनी बेसेंट का कथन था- मैं दावे के साथ कह सकती हूं कि विभिन्न मतों के बीच केवल मालवीया जी ही भारतीय एकता की मूर्ति बने खड़े हुए हैं। गांधी जी इन्हें "सर्वश्रेष्ठ हिन्दू" मानते थे कहते थे कि "मैं तो मालवीयाजी का पुजारी हूँ।"

उनका जीवन हिन्दुओं की पीड़ा में तड़पते हुए और उनके संगठन में लगे-लगे ही बीता। वे अनेक संस्थाओं के संचालन और प्राण थे-सनातन धर्म सभा, हिन्दू महासभा, काँग्रेस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, गो- रक्षा संघ आदि। उन्होंने प्रत्येक वर्ग के लिए श्रेष्ठ उपदेश प्रदान किये और सनातन भारतीय आदर्शों का सर्वत्र प्रचार और संचार किया- सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, वर्णाश्रम धर्म आदि के वे एकमात्र ही भारतीयता, हिन्दुत्व, ब्राह्मणत्व और वैष्णवता की प्रतिमूर्ति थे। इसके साथ ही बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न तथा स्वभाव से विनोदप्रिय भी थे। एक बार मुबई में एक विद्वान ने उनसे कहा- "आप मुझे सौ गाली दीजिए, मुझे क्रोध नहीं आयेगा।" मालवीय जी ने हँसते हुए कहा- "आपके क्रोध की परीक्षा तो पीछे होगी, मेरी जबान तो पहले गन्दी हो जायेगी।"

प्रयाग का यह प्रसून वाराणसी में खिला और विश्व को अपने सदाचार के सौरभ से भरकर लगभग 85 वर्ष की आयु (वि. स. 1918-2003) में काशी विश्वनाथ के चरणों में अर्पित हो गया।

५. ईश्वर-भक्ति के अद्भुत प्रयोक्ता महात्मा गांधी

"ईश्वर के प्रति श्रद्धा ही उनके जीवन की धुरी थी, जिसके बल पर वे प्रत्येक क्षेत्र में कूद पड़ते थे और सफल होते थे।"

ईश्वर भक्ति का व्यापक धरातल पर ऐसा अद्भुत प्रयोग मानव-जाति के सांस्कृतिक इतिहास में अनुपम है। इसकी आध्यात्मिक अनुभूति संपूर्ण 20 वीं शताब्दियों में इस प्रकार झंकृत हुई है कि उसका अनुभव जीवन के अनेक क्षेत्रों में आगामी शताब्दी में तो अवश्य ही होता रहेगा। उनके जीवन ने समाज, राजनीति, शिक्षा धर्म, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, साहित्य, कला,

संचार-माध्यमों आदि विविध क्षेत्रों को जिस प्रकार नई अनुभूतियों से सक्रिय बनाया है, वह वास्तव में भारतीय वेदान्त और ब्रह्म तत्व के दर्शन का वैज्ञानिक परीक्षण ही है।

इस सार्वभौम संत ने 'भक्ति' को अपने जीवन में नई परिभाषा प्रदान की, उसका मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे जीवन को गढ़ने में न जाने कितनी परोक्ष शक्तियाँ कार्य करती रही हैं। पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षिक, वैयक्तिक, राष्ट्रीय आदि। अतः इनका जीवन और जीवनी स्वयं में एक उपन्यास बन गया है।

महात्मा गांधी के पिता 'श्री करमचंद गांधी' 'पोरबन्दर' राज्य में दीवान थे और पितामह प्रधानमंत्री रह चुके थे तथा माता तुलसी की कण्ठी धारण करने वाली जीती-जागती वैष्णव धर्म की मूर्ति ही थी। इस प्रकार प्रशासन और संगठन की सहज प्रतिभा का मेल भक्तिमय जीवन के साथ सहज रूप से हो गया था। नियम से प्रातः स्नान, मंदिर में भगवान के दर्शनार्थ जाना, कथा-पुराण का श्रवण और धर्म-चर्चा तथा रामायण का पाठ इनकी पारिवारिक दिनचर्या का अनिवार्य अंग था। इस दिनचर्या ने इनमें अनुशासन और अद्भुत संकल्प शक्ति का बीजारोपण किया। बैरिस्टरी की शिक्षा के लिए विदेश को प्रस्थान करते समय और बॅरिस्टरी के लिए दक्षिण अफ्रीका जाते समय माता की दी हुई तुलसी की कण्ठी इनके गले में शोभा पा रही थी। माता के प्रति की गई तीन प्रतिज्ञाओं का गांधी जी द्वारा निर्वाह सर्वविदित ही है- ''मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहना'' ऐसे दुर्लध्य प्रलोभनों से दूर रह पाना साधारण व्यक्ति के लिए असंभव है। अतः भारतीय योग-दर्शन के पांचों यमादि-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य तथा पांचों नियम-तप, सन्तोष, शौच, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान, इनके जीवन में मूर्तिमान हो उठे। इस प्रकार का वह उपन्यास ही नहीं, महाकाव्य भी बन गया।

महात्मा गांधी ने अपनी जीवनी का नामकरण किया 'मेरे सत्य के प्रयोग'। अहिंसा का राजनैतिक नामकरण हुआ, 'सत्याग्रह' । रिश्वत से दूर रहना ही अस्तेय था, लंगोटी और दण्ड में अपरिग्रह मूर्तिमान था, 37 वर्ष की आयु में जीवन पर्यंत ब्रह्मचर्य के पालन का व्रत बुद्धत्व और तीर्थंकरों का जीवन्त उदाहरण था, अद्भुत तप था। इसी प्रकार प्रातः प्रार्थना से दिनचर्या का समारम्भ, राम-नाम का जाप, चरखा-यज्ञ आदि कृत्य नियमों की नित्य लीला था। इसी प्रकार उनका मानव-जीवन मानव-वपु में ईश्वरत्व का साक्षात्कार कराता था।

श्रीमद् भगवद्गीता उनके लिए धर्मग्रंथों की कुंजी थी और रामायण का राम-राज्य वर्णन भारत के भविष्य का दर्शन कराता था। वे कहते थे ''मैं खुल्लम-खुल्ला कबूल करता हूँ कि कुरान, बाइबिल तथा दुनिया के अन्यान्य धर्मों के प्रति मेरा अति आदरभाव होते हुए भी मेरे हृदय पर उनका इतना असर नहीं होता, जितना कि श्रीकृष्ण की गीता और तुलसीदास की रामायण का होता है।''

ईश्वर के अस्तित्व में उनका अडिग विश्वास था– ''ईश्वर नहीं है तो हम भी नहीं हो सकते।'' एक बार उनका प्रिय पुत्र दस वर्ष का 'मणिलाल' बीमार हुआ, तो उन्होंने ज्वर के भयानक आक्रमण का मुकाबला अपनी जल–चिकित्सा के प्रयोग और राम–नाम में अटल विश्वास के द्वारा ही की। अपने पारसी डॉक्टर से कहा कि ''मेरे धर्म की मर्यादा मुझे और मेरे परिवार के लोगों को ऐसे समय पर भी मांस आदि का प्रयोग करने से रोकती है। इसलिए आप जिस खतरे को देखते हैं, मुझे उसे उठाना चाहिए। आप बालक की नाड़ी और हृदय की गति को देखने के लिए अवश्य पधारने की कृपा करते रहें।'' उन्होंने 'मणिलाल' को अण्डा और मुर्गी का शोरबा नहीं दिया, वरन एक गीली चादर से सारा शरीर लपेट कर दो कम्बल ओढ़ा दिये और सिर पर गीला तौलिया रख दिया। रात के दस बज रहे थे। राम–नाम की रट जारी थी। वे मुम्बई में चौपाटी पर घूम रहे थे। लौटकर आये तो 'मणिलाल' ने पुकारा ''बापू आ गए?'' उसी रात मणिलाल को इतना पसीना आया कि ज्वर उतर गया।

ऐसे–ऐसे अनेक प्रयोगों की कथा–माला है, महात्मा गांधी की जीवनी में। एक बार हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने प्रत्येक शर्त मानकर समझौता कर लिया और उस मसविदे को सरसरी दृष्टि से देखकर स्वीकृति दे दी। वह मसविदा मद्रास में सन् 26 के कांग्रेस अधिवेशन में श्री निवास आयंगर जी द्वारा उनके घर पर ही तैयार कर दिखलाया गया था। शाम को प्रार्थना करके बापू जल्दी सो गये। सुबह बहुत जल्दी उठे। महादेवभाई को जगाया और बोले– ''बड़ी गलती हुई। कल शाम का मसविदा मैंने ध्यान से नहीं पढ़ा। उसमें मुसलमानों को गोवध करने की आम इजाजत दी गई है और हमारा गौरक्षा का सवाल यों ही छोड़ दिया गया है। वह मुझसे कैसे बरदाश्त होगा। मैं तो स्वराज्य के लिए भी गोरक्षा का आदर्श नहीं छोड़ सकता।''

ब्रह्मचर्य का व्रत लेते समय उन्होंने कहा था– ''अटल व्रत एक किले की तरह है, जो भयंकर मोह उत्पन्न करने वाली वस्तुओं और प्रलोभनों से मनुष्य की रक्षा कर सकता है। राम–धुन की ताकत को वे फौजी ताकत से कई गुना बढ़ी–चढ़ी मानते थे। उनका कथन था– अगर लाखों करोड़ों लोग सच्चे हृदय से रामनाम जपें, तो दंगे न हों, जो कि सामाजिक रोग हैं और न ही कोई बीमारी हो। दुनिया में राम–राज्य कायम हो जाये।''

इस संत की कथात्मक जीवनी के विषय में कहा जा सकता है–''अटल श्रद्धा, अचल विश्वास, सत्य का आग्रह, अहिंसा का पालन, बुरे को भी भला करना और चाहना, क्रोध का बदला सेवा से देना, राम–नाम में अटल विश्वास, गोमाता की भक्ति आदि अनेक अप्रतिम गुणों का समूह यदि एक जगह देखना हो तो, वह गांधीजी में मिल सकता है। वे युग–पुरुष थे, संत थे, सच्चे साधक थे और वे इतिहास, पुराण, काव्य और कथाओं के अक्षय स्त्रोत थे।''

६. महर्षि अरविन्द और श्री माँ

इंग्लैंड में शिक्षित श्री अरविंद और फ्रांस की बेटी श्री माँ का युगल भारतीय भक्ति परम्परा का अक्षुण्ण प्रमाण है। श्री अरविंद योगी कहे जाते हैं और लोगों की धारणा रही है कि श्री अरविंद की साधना में भक्ति का कोई स्थान नहीं है। इस विषय में गोपी-भाव को लेकर उन्होंने जो कहा है, वह उन शंकाओं के प्रखर निराकरण के लिए द्रष्टव्य है- 'वे आसाधारण तीव्र आध्यात्मिक अनुराग की मूर्ति स्वरूपा हैं। उस अनुराग की, जो उनके प्रेम, भक्ति तथा निःशेष आत्मदान की चरमता के कारण असाधारण हो गया है। जिस किसी में यह चीज हो, फिर उसकी (स्त्री या पुरुष) अन्य बातों में (विद्या, पांडित्य, अभिव्यंजना, ब्रह्म शुचिता आदि में) कितनी ही दीन अवस्था हो, वह श्रीकृष्ण की खोज कर सकता है और उनके पास पहुंच सकता है- गोपी, प्रतीक का मुझे यही भाव मालूम होता है।'' (एक अंग्रेजी पत्र के हिन्दी अनुवाद से श्री श्यामसुंदर झुनझुनवाला)

इंग्लैण्ड की शिक्षा (बड़ौदा के महाराज सयाजी राव गायकवाड का सचिवत्व, बड़ौदा कॉलेज में प्रोफेसरी) भारत का कारावास, क्रान्तिकारियों के काण्डों की सूचना, विस्फोटक लेखों का पत्र-पत्रिकाओं (वन्देमातरम् आर्य आदि) में प्रकाशन, अदालत में हाजिरी और अन्ततः पाण्डिचेरी में आश्रम की स्थापना और विशाल साहित्य की रचना आदि सर्जनाओं का समुच्चय श्री अरविन्द की जीवनी में श्री कृष्णकारता का आभास प्रस्तुत करता है। अलीपुर जेल के अनुभवों का उन्होंने रोमाञ्चकारी वर्णन किया है। अपने अन्तर्द्वन्द्व के समाधान में उन्होंने अनुभव किया कि स्वयं भगवान ने उनके हाथों में गीता रख दी हो, मानों की अर्जुन को संबोधित कर रहे हों। अपने प्रसिद्ध उत्तरपाड़ा भाषण में उन्होंने ऐसे अनुभवों का संकेत किया है।

उनके अलीपुर जेल के अनुभवों का एक दृश्य है। उन्हें लगा कि भगवान ने जेलरों के दिल को उनकी ओर घुमा दिया और उन्हें आठ-आठ घंटे काल कोठरी से बाहर टहलने की अनुमति मिल गई। उन्हें सर्वत्र भगवान की उपस्थिति की अनुभूति हुई - मैंने अपने को मनुष्यों से अलग करने वाली जेल की ओर दृष्टि डाली और देखा कि अब मैं उसकी ऊँची दीवारों के अंदर बंद नहीं हूँ। मुझे तो अब घेरे हुए थे वासुदेव। मेरी काल- कोठरी के सामने जो पेड़ था, वहाँ अब पेड़ नहीं था। मुझे प्रतीत हुआ कि वह वासुदेव हैं और मुझ पर अपनी छाया किये हुए हैं। '' (श्री श्यामसुंदर झुनझुनवाला के लेख, कल्याण विशेषांक वर्ष 26 में उद्धृत)।

अब श्री माँ के साथ उनके सम्मिलन के प्रसंग पर दृष्टिपात करें। शैशव से ही स्वप्नों में वे एक छाया देखती आ रही थीं और 1910 में अपने पतिदेव के भारत-यात्रा से लौटने पर उन्होंने जब श्री अरविन्द का विवरण सुना तो बोल पड़ी, ''अरे, यही तो वह दिव्य व्यक्तित्व है जिसे मैं बचपन से ही अपने स्वप्नों में देखती आ रही हूँ। तदनन्तर वे अपने पति के साथ

1914 में भारत आई। 1920 में उनका स्थायी सानिध्य प्राप्त किया और योग-साधना के लिए उनके अविच्छन्न एकान्तवास में चले जाने पर श्री अरविंद आश्रम की व्यवस्था एक आधुनिक विशाल कुटुंब के रूप में की। यही था वृन्दावन का आधुनिक अवतरण। उनके राधाभाव का अवलोकन उनकी इस प्रार्थना में कीजिए।''

प्रथम दृष्टि ही में जिसको पहचान गया अभ्यंतर
अपना स्वामी, जीवन का सर्वस्व, हृदय का ईश्वर।
हे मेरे प्रभु, तू मेरी उर-श्रद्धांजलि स्वीकृत कर।
तेरे ही हैं मेरे निखिल विचार, भावना, चिन्तन,
मेरे उर-आवेग, हृदय-संकल्प, सकल संवेदन।
तेरे ही हैं मेरे जीवन के व्यापार प्रतिक्षण,
मेरे तन का एक-एक अणु शोषित का प्रति कण-कण।

(रूपान्तर श्री सुमित्रानन्द पंत)

इस प्रकार शिव-पार्वती की अर्धनारीश्वर मूर्ति और योगेश्वर अच्युत श्री कृष्ण का जीवन दर्शन श्री अरविंद और श्री माँ के युगल जीवन में आस्थावान मनीषियों भक्तों के द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

७. एकान्त-प्रेमी श्यामसुंदर चक्रवर्ती

एकान्त और अंधकार का ध्यान, उपासना, एकाग्रता एवं गहन अनुभूति के लिए अपना महत्व है। इसके प्रयोगों के अनुभव भक्त 'श्यामसुन्दर चक्रवर्ती' ने अपने जीवन में किये।

इनका जन्म बंगाल के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। यह भी राजनैतिक आंदोलनों से निकल कर भगवद्-भक्ति में प्रविष्ट हुए थे। इनकी राजनैतिक ख्याति वन्दे-मातरम् पत्रिका के संपर्क से हुई और भगवद् भक्ति में प्रवेश सुप्रसिद्ध चिकित्सक 'श्री सुन्दरी मोहनदास' के साथ वैष्णव भजनों के गायन से हुआ। उनकी भी भगवदुन्मुख वृत्ति का जागरण लोकमान्य तिलक के समान वर्धा की एक जेल में नजरबंदी के अवसर पर हुआ। 'थायरमो' नगर की उस जेल में इन्होंने एक पुस्तिका लिखी 'यू सालिट्यूड एण्ड सोरो' (विजनता एवं विषाद के माध्यम से) इसमें इन्होंने भगवान के चरणों में समर्पण के पथ पर अन्तःकरण की गति का मार्मिक चित्रण किया था।

''मेरी कामनाओं की परिधि सीमित थी। कामनामय जीवन का परिणाम पुनर्जन्म होगा, इस सिद्धांत में मुझे सत्य दिखायी पड़ता। सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्रों को निष्काम भाव से अपना कोष लुटाते देख कर उनके प्रति मुझे ईर्ष्या होती। आत्मविकास के लिए अपने को

लुटा देने की आवश्यकता है। सबको छाया प्रदान करने वाले प्रेम-वृक्ष को हृदय में उगा लेना चाहिए। इसके लिए मैंने प्रार्थना का प्रोग्राम आरंभ किया और धार्मिक ग्रन्थों से स्तुतियों तथा भजनों का चयन करके संकीर्तन में संलग्न हुआ। इसके अन्दर मैंने दूसरी प्रक्रिया अपनाई। अपने कमरे में एकान्त और अंधकार में हाथ, पैर और मुँह धोकर मैं अपनी खाट पर कम्बल बिछाकर आराम से बैठ जाता। लगभग एक घंटे के अभ्यास में बिना प्रयास के सब प्रकार के निकृष्ट विचारों से छुट्टी पाकर मैं एक ऐसे राज्य में पहुँच जाता, जिसकी शान्ति और स्थिरता किसी प्रकार भंग होती ही नहीं। संभवतः मेरी यह एकतानता उस शाश्वती एकतानता की प्रतिबिम्ब मात्र हो, जो उस कोलाहल के अन्तराल में स्थित है, जिसको जगत संज्ञा दी गई है।''

इस प्रकार एक क्रांतिकारी कोलाहल के संसार से नीरवता और अंधकार का माध्यम पकड़ कर प्रियतम भगवान के चिरसंयोग की खोज में अग्रसर हुआ।

८. देशबंधु चितरंजन दास

इस देशभक्त का भी जीवन अनेक रोमाञ्चक प्रयोगों एवं प्रसंगों से भरा हुआ है। उनका जन्म कोलकता में संवत् 1927 में हुआ था और मृत्यु दार्जिलिंग में संवत् 1981 में हुई थी। इनके पिताजी 'भुवनमोहन दास' ब्राह्मण समाज में थे, परन्तु माता 'निस्तारिणी' देवी विशुद्ध हिन्दू जीवन की उपासक थीं। अतः यह भी तरुणावस्था में ब्राह्मण समाज के प्रभाव से नास्तिकता की ओर झुके रहे परन्तु धीरे-धीरे इनकी चित्तधारा का प्रवाह बदलता गया और अन्ततोगत्वा यह परम वैष्णव ही हो गये। यह स्वभाव से भावुक और प्रतिभा से कवि थे। अतः इनके प्रारंभिक काव्य 'मालंच' और 'माला' में ब्राह्मण संस्कारों की अभिव्यक्ति है, परन्तु 'अन्तर्यामी' तथा 'किशोर-किशोरी' में शुद्ध भक्तिभाव की परिणति और परिपुष्टि हो गई है। संस्कार और संप्रदाय इनका कुछ भी रहा हो, पर स्वभाव, व्यवहार और प्रवृत्तियों से यह वैष्णव ही थे। अत्यन्त उदार, दानी, परदुःखकार संत, देशसेवी और महान भक्त। कुछ प्रसंग इनके भक्त हृदय की झांकी प्रदर्शित करते हैं।

इनका देश-प्रेम, उत्कृष्ट तपस्या और त्याग के शिखर तक पहुँचा था। महात्मा गाँधी के सहयोग-यज्ञ के प्रारंभिक पुरोधाओं में इनका नाम लिया जाता है। लंदन में भारतीय छात्रों की टोली के अन्तर्गत 'दादाभाई नौरोजी' को पार्लियामेंट की सदस्यता प्राप्त कराने के लिए आई.सी.एस. परीक्षा में अनुतीर्ण हो जाना स्वीकार किया और उन्हें जिताया। वहीं से बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने कोलकाता हाई-कोर्ट के अन्तर्गत प्रसिद्ध अलीपुर गर के अभियुक्त 'श्री' अरविन्द, को अपनी प्रतिभा के बल पर बेदाग छूट दिलायी। अपने ऋणग्रस्त पिता के दिवालिया घोषित हो जाने पर इन्होंने लगभग 68 हजार रुपये अदा कर पितृ-ऋण से मुक्त होने का आदर्श उपस्थित किया, जिसका उस समय के कानूनी समुदाय और आफिशियल जस्टिस लेवर, 'ग्रे' महोदय आदि पर गहरा प्रभाव पड़ा अपना पैतृक मकान

(पुरुलिया) इन्होंने अपनी अविवाहिता बहिन 'अमलादास' को अर्पित कर दिया, जिन्होंने उसे अनाथाश्रम में परिणत कर दिया। इसके लिए श्री चितरंजन दास पृथक से भी दो हजार रुपये मासक दान देते थे। नवद्वीप के 'नित्यानन्द आश्रम' के लिए दो लाख रुपये दान में दिये। दान के विषय में उनका कथन था- मैं पांत्रों के चुनाव में लग जाऊँ तो उनके गुण-दोष में ही मेरा मन रम जायेगा। दान का अवसर ही निकल जायेगा। इनके दान की अनेक कथाएं जनता में प्रसिद्ध हो गई थीं। किसी के रेल भाड़े के लिए, किसी को कर्ज चुकाने के लिए, किसी को कन्या-विवाह के लिए, किसी को पढ़ाई या परीक्षा के लिए, किसी को बूढ़े माता-पिता की सेवा के लिए, किसी को रोगी की दवा और शुश्रूषा के लिए इनके दान की थैली खुली ही रहती थी।

असहयोग आन्दोलन में पड़ जाने से इन्हें इतना अर्थ कष्ट रहने लगा कि मृत्यु के कुछ दिन पूर्व इन्होंने अपनी अँगूठी बेचकर एक विधवा माता को कन्या के विवाह के लिए रुपये दिये। यहाँ तक कि मरने से पहले अपने ही घर पर भी एक वसीयतनामा बनाकर धार्मिक कार्यों के लिए दान कर दिया- मंदिर- निर्माण, नारी-शिक्षा, बालकों की धार्मिक शिक्षा, मातृमंदिर की स्थापना, दीन-दरिद्रों की सहायता आदि के लिए। ''इस प्रकार से तन, मन, धन, परिजन, प्रतिष्ठा, घर-द्वार सभी कुछ भगवान के लिए अर्पित करके सच्चे फकीर बन गये।''

इस प्रकार बाह्य से वैष्णवता के तीर्थ की ओर अग्रसर इस भक्त ने अपनी मृत्यु का आवाहन इस गीत के साथ किया।

ललित त्रिभंग खड़े होकर हरि। करो प्रकाश कुंज का द्वार।
आओ, आओ, पारसमणि। तथा वेद-वेदान्त विचार॥
(अनूदित)

उपसंहारः इस प्रकार यह - देशभक्तों की भक्तमाल नये भारत के प्रवेशद्वार पर वन्दनवार की भाँति लहराती दिखती है।

(३५)

इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन के इन्द्रधनुषी रंग

हिमालय की गोद में सदा प्रफुल्लित होकर बहने वाली माँ गंगा के किनारे ऋषिकेश स्थित परमार्थ निकेतन में प्रातः काल के चार बजे हैं।

चहुमुखी परम शान्ति है। परमार्थ निकेतन के पीछे स्थित जंगल में से शीतल मीठे, मृदु पवन बह रहे हैं। चारों ओर फैले खड़े योगीन्द्रो के समान पर्वतों से वातावरण में परम शान्ति है। इस शान्ति के सुमधुर प्रसन्न साम्राज्य को माँ गंगा के बहते नीर से नई शक्ति मिलती है।

परमार्थ निकेतन के साधक कभी से जग गये हैं। आश्रम के विशाल जगह में स्थित साधकों की साधना कुटीरों में से सभी अनुशासित मौन, भक्ति छलकाते हृदय से सभाखंड की तरफ अर्थात सत्संग हाल की तरफ एकत्रित हो रहे हैं।

हल्के अँधेरे में साधकों के चेहरे दिखाई नहीं पड़ते, आकार दिखाई देता है। देव मंदिर में आरती हो रही है, परमार्थ निकेतन में दो आरती लेने जैसी है। एक साढ़े चार बजे प्रातः काल में आश्रम परिसर के मंदिरों में होने वाली आरती और दूसरी शाम होने पर आश्रम के सामने ही कलकल निदाद करती हुई बहती माँ गंगा के चरणों में झिलमिलाते दीपक और सुगन्धित पुष्पों की सुगन्ध के साथ होने वाली गंगाजी की आरती।

सुबह की आरती का दर्शन करके सभी सत्संग भवन में अपनी-अपनी निश्चित जगह पर किसी की साधना को खलल पहुँचाये बिना व्यवस्थित हो जाते हैं।

साधक नीचे बैठे हैं और 'परमार्थ निकेतन' के भगवा वस्त्रधारी सन्यासीगण एक-एक करके प्रार्थना मंदिर में स्थान ग्रहण करते हैं।

पाँच बजने में लगभग 10 मिनट बाकी होंगे वहाँ नित्य प्रार्थना गाने वाले संगीतकार साधक रूप से व्यवस्थित हो जाते हैं। और 'हरिओम' के एक पहाड़ी नाद गूँजते ही आश्रम के टावर में 'पाँच बजे का डंका बज उठता है। और हजारों भक्तों का समूह ब्रह्मानंद परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्.... से शुरू करके अनवरत पैंतीस मिनट तक प्रार्थना, भजन, धुन जैसी सुरावलि छोड़ते हैं कि उस समय शब्द में से उत्पन्न नाद ब्रह्मानंद बनकर सभी के अन्तर मन को आलोकित कर उठता है।''

साडे पाच बजते ही परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी प्रातः कालीन प्रवचन आरंभ करते हैं।

वंशी विभूषित करान् नवनीरदाभात्...... के मंगलाचरण की आवाज जिसके कानों में पड़े उन सभी के हृदय में कोई झंकार होने लगती है। रोम-रोम में विद्युत प्रवाहित होने लगता है, बन्द नयन के अंदर कोई सत्य विश्वात्मा की झलक की अनुभूति में श्रोतागण डूब जाते हैं। पैतीस मिनट के पश्चात प्रवचन को विराम दिया जाता है। इसके बाद दैनिक प्रवृत्तियाँ शुरू करके सभी साधक सुबह से शाम तक आश्रम में चलने वाले साधना सत्रों में भाग लेते रहते हैं।

परमार्थ निकेतन ऋषिकेश के इस आश्रम के सन्यासियों के प्रवचनों को सुनने के लिए पूरे विश्व के प्रवासियों का समूह बारहों महीने आता रहता है।

परमार्थ निकेतन इस अर्थ में आध्यात्मिक अनुभव का परिचय कराने वाली स्पिरीच्यूअल यूनिवर्सिटी की कमी को पूरा करता है।

पूज्य स्वामीजी इस संस्था के अध्यक्ष हैं। देश - विदेश में इनके कार्यों की झलक का प्रसारण होता रहता है। विश्व की प्रमुख भाषाओं पर प्रभुत्व रखने वाले पूज्य स्वामीजी बहुश्रुत विद्वान हैं।

हिमालय की गुफाओं में बैठकर मात्र साधना करने वाले विरक्त संतों में इन्हें नहीं रखा जा सकता। चार घंटे सोने को छोड़कर शेष सभी समय ये सतत और सत प्रवृत्तियों में निमग्न रहते, साधना के साथ वैश्विक मानवजीवन को दिव्य और भव्य बनाने वाले अनेक तरह के प्रकल्प अपने हाथ में लेते हैं, वह पूरा हो न हो वहाँ उसकी अपेक्षा अधिक जटिल अन्य योजनाओं को पूरा करने में वे संलग्न हो जाते हैं। ऋषिकेश में वर्ष में दो-चार महीने रुकने को छोड़कर वे अमेरिका, इंग्लैण्ड, कनाडा, अफ्रीका सहित विश्व के प्रमुख शहरों में भारतीय संस्कृति के संदेश को लेकर घूमते हुए पूज्य स्वामीजी शंकराचार्य और स्वामी विवेकानंद की प्रवृत्तियों की याद दिलाते हैं।

पूज्य स्वामीजी का नाम 'इन्साइलोपीडिया ऑफ हिन्दुइज्म' की प्रवृत्ति से विश्वभर में प्रख्यात हुआ है। 'हिन्दू धर्म विश्वकोश' के विषय में इस पुस्तक में प्रकाशित परिचय लेख के अध्ययन से इस प्रवृत्ति के महत्व का ख्याल आ जायेगा।

समग्र विश्व में भारतीय संस्कृति की विरासत को लेकर बसे हुए भारत के मूल निवासियों की संवेदना को विश्व के समक्ष रखने के लिए यह संस्था कार्य कर रही है। समय - समय पर समस्त विश्व में वैविध्यपूर्ण सांस्कृतिक कार्यक्रम करती रहती है, जिनमें

- युवकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय ग्रीष्म शिविरों का आयोजन करना।
- सांस्कृतिक परम्परा और मूल्यों पर सेमिनार आयोजित करना।
- भारत के महान और भव्य संस्कार विरासत का परिचय कराने के लिए अलग अलग वेबसाईट के साथ इन्टरनेट द्वारा प्रसारण करना और युवकों को उचित दिशा निर्देश मिलता रहे ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन इस संस्था के तत्त्वावधान में होता रहता है।

- तेजस्वी विद्यार्थियों के अध्ययन में सहायक होने के लिए शिष्य वृत्तियाँ (स्कालरशिप) देने से लेकर उनके व्यक्तित्व निर्माण में उपयोगी प्रोजेट अपनाये जाते हैं।

आदर्श मातृत्व प्रशिक्षण केन्द्रः

परिवार में से समाज बनता है, समाज और परिवार को जोड़ने वाली केन्द्र बिन्दु माता है। इस दृष्टि से माता को उचित प्रशिक्षण दिए जाने वाले निर्विघ्न कार्यक्रम इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन के अंतर्गत आयोजित किये जाते हैं।

संस्कार विद्या मंदिरः

इस संस्था द्वारा प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों के जीवन निर्माण में रुचि लेकर उनके कोमल मन में आदर्श नागरिक होने के सद्‌गुणों का विकास किस तरह हो इस दिशा में 'चाईल्ड साइकोलॉजी' बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर संस्कार चिंतन की प्रवृत्तियाँ की जाती हैं।

महिला पोलिटेकनिकः

'अर्न एंड लर्न' आर्थिक प्रवृत्ति के साथ – साथ शिक्षा के सूत्र को अमल में लाने के लिए युवतियों को 'टेकनिकल क्लब' के माध्यम से टाईपिंग, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, हस्तकला उद्योग, लघु उद्योग सिखाकर आत्मनिर्भर बनाने के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण दिया जाता है।

संगीत विद्यालयः

इस प्रकल्प द्वारा गायन वादन की संगीत पद्धतियों द्वारा बालकों को भक्ति संगीत के उन्नत पथ पर आगे बढ़ने की दिशा और दीक्षा दी जाती है।

युवा वर्षोत्सवः

भारत की स्वतंत्रता के अर्द्धशताब्दी के अवसर पर संस्था द्वारा समग्र वर्ष दौरान युवा शिविर, वर्कशाप, धार्मिक तथा मानवतावादी प्रवृत्तियों द्वारा सामाजिक जीवन में सेवायकुत संस्कारों का प्रत्यक्ष पाठ पढ़ाया गया था।

स्वास्थ्य सुरक्षा एवं संवर्धनः

गरीबी की रेखा से नीचे जाने वाले आर्थिक रूप से पिछड़े नागरिकों की देखभाल करना इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन का ध्येय है। समाज में त्याज्य अपने इन बन्धुओं के स्वास्थ्य संबंधी सावधानी रखने के लिए हमेशा प्रयत्न करने के साथ – साथ यह संस्था निम्मलिखित प्रवृत्तियाँ करती हैः

प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी सेमिनार

1995 में संख्या के तत्वावधान मे गंगा तट पर ऋषिकेश में प्राकृतिक उपचार पद्धति आयोजित सेमिनार में पूरे विश्व में से दो हजार डॉक्टरों ने भाग लेकर जीवंत चर्चा की थी।

इमरजेंसी चिकित्सा प्रशिक्षण

गंभीर संकट और दुर्घटना के समय घायलों को तात्कालिक ऋषिकेश शहर के अस्पताल में लाने ले जाने के लिए संस्था ने एम्ब्युलेन्स दान में दिया है। दूर क्षेत्र के गांवों में मरीजों को इससे विशेष लाभ हुए हैं।

प्राणिशास्त्र

- पर्यावरण की रक्षा के लिए IHRF जागृति लाने के लिए प्रयत्नशील है। धरती और प्रकृति की रक्षा के लिए समय-समय पर कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं।
- IHRF प्रतिवर्ष शहरी, उज्जड़ भूमि को हराभरा बनाने के लिए वृक्षारोपण के सघन कार्यक्रम आयोजित करती है। आयुर्वेदिक औषधियों और जड़ीबूटियों को उगाती है।
- यह संस्था स्वच्छता, कचरे का पुनः शुद्धिकरण, साफ पानी, प्राकृतिक कृषि कार्य और तीर्थस्थानों की सुरक्षा एवं विकास के क्षेत्र में कार्यरत है।

सेवाभावनाः

मानव बन्धुओं की मदद के लिए यह संस्था अग्रसर है।

- प्राकृत संकट और संकटकालीन स्थिति।
- अपंग बालकों की देखभाल।
- अनाथों एवं गरीब बच्चे की देखभाल।
- छात्रवृत्ति द्वारा बौद्धिक रूप से कुशाग्र विद्यार्थियों की पढ़ाई को आगे बढ़ाने का प्रयत्न।

प्रकाशन:

- अमृत बिंदु (DROPS OF NECTAR)
- शांति (PEACE)
- आत्मा का पोषण और वैश्विक प्रार्थनाएं
- जीवन ज्योत जले।
- दिव्यता के पथ पर (गुजराती)
- गुरू पूर्णिमा संदेश (गुजराती)

IHRF प्रोजेक्ट "YES"

हिमालय की दुर्गम पहाड़ों में बसने वाले पहाड़ी लोगों के बच्चों में निरक्षरता की मात्रा बहुत अधिक होती है। इस कमी को दूर करने के लिए इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन ने अनेक तरह की प्रवृत्तियाँ अपनायी हैं। उनमें से 'यस' स्कूल का समावेश होता है।

- यस स्कूलों में अध्ययन की सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। महिलाओं के लिए उपयोगी अलग प्रशिक्षण दिया जाता है। और बालकों को व्यावसायिक शिक्षा दी जाती है ताकि बड़े होकर रोजगार धन्धा कमाने लग जाएं।

ये सभी प्रवृत्तियां हरिद्वार-ऋषिकेश एवं हिमालय के पर्वतीय प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन की झलक समग्र विश्व और विश्व में बसने वाले मानवबंधु हैं।

यह संस्था इस प्रवृत्ति को देश और दुनिया में एक विशिष्ट अभियान द्वारा व्यापक मात्रा में चलाती है। इसकी संचालन शक्ति पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वतीजी हैं।

पू. स्वामीजी विश्व प्रवासी, परिब्राजक संत हैं। उत्साह और उमंग से आप्लावित इस संन्यासी में भारतीय संस्कृति की धारा बहती हुई देखी जा सकती है। ये उत्पन्न क्रियाशील हैं। इतना ही नहीं इनके परिचय में आने वाले सभी कार्यकर्ताओं को भी इतना ही क्रियाशील रखते हैं।

भारत के ऐसे सन्यासी कर्म और धर्म इन दोनों क्षेत्रों में कितना योगदान दे सकते हैं। इसके पूज्य स्वामीजी ज्वलंत प्रतीक हैं।

(३६)

'हिन्दू धर्म विश्वकोश': एक झाँकी

हिन्दू धर्म विश्वकोश की लाक्षणिक विशेषताएँ

''हिन्दू धर्म विश्वकोश'' हिन्दू धर्म के संबंध में सर्वप्रथम सर्वग्रही, प्रमाणिक ज्ञानकोश प्रकाशित करने वाला ग्रंथ है। यह व्यापक और विस्तृत रूप से संशोधनात्मक दस्तावेज के अन्तर्गत विषयों को संपूर्ण रूप से समाहित कर लेता है।

- भारतीय कला और स्थापत्य
- इतिहास और भूगोल
- साहित्य
- तत्वज्ञान
- धर्म और आध्यात्मिकता
- विज्ञान
- सामाजिक संस्थाएं और आन्दोलन
- आध्यात्मिक अनुशासन और शासन
- हिन्दुत्व का विशिष्ट अध्ययन
- ग्यारह हजार से अधिक मौलिक लेख
- साठ लाख से अधिक शब्द
- लगभग 3000 रंगीन चित्र
- लगभग 1000 से अधिक लेख
- व्यापक रूप से यह संदर्भ सहित

उपवन में तपोवन की संस्कृति

इस धरती पर जब मनुष्य पशुवत जिंदगी बिताता था और उसकी संस्कृति का जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय गंगा, यमुना के निर्मल और पवित्र जल के समान भारतीय संस्कृति का प्रसार और विस्तार होता जाता था।

भारतीय प्राचीन संस्कृति यज्ञ की पावक-ज्वाला में से उदित हुई है। वेद की ऋचाओं तथा उपनिषद के मंत्रों में गूँजी है। ऋषियों के तपोवन में यह तप, संयम और संस्कार

से सुवासित है। रामायण मे यह रममाण बनी है। गीता में वह गूँजी है और महाभारत के रूप में यह आकाश रूप में विस्तृत है।

भारत के हजारों ऋषि मुनि, त्यागी, तपस्वी, ज्ञानी, ध्यानी, तत्वज्ञान, संत, महंत और मनीषी कवि, कलाकार, धर्माचार्य, नृपति, नैयायिक, संस्कृति-रक्षक और महाकवियों ने इसके निर्माण में योगदान दिया है। हिन्दू धर्म यह कोई संकुचित सीमा में बंधे नहीं परन्तु आकाश के सदृश्य विस्तृत क्षितिज है। शोध करें तो इसका यह चिह्न जगत की सबसे प्राचीन संस्कृति से अंकुरित होते देखा जा सकता है। इसीलिए तो इसे विश्व की सबसे समृद्ध, सबसे तेजस्वी और सबसे अधिक प्रभावशाली प्रणालिका के रूप में पूरे विश्व में मीमांसकों ने स्वीकार किया।

मानव मन में कोई भी क्षेत्र के किसी भी भाव या स्पंदन का किसी को अध्ययन करना हो और वह जब जीवन के सार्वजनिक क्षेत्र को स्पर्श करने वाले झलक को मापने बैठे तब उसे भारतीय संस्कृति के पास से एक से बढ़कर एक उत्तम मोती प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा। बाद में उस संवेदना को स्वर देने वाली भाषा हो, सामाजिक जीवन में से उत्तम रीति-रिवाज हो, सौंदर्य और आनन्द की अभिव्यक्ति के रूप में कला हो, तत्वज्ञान के निचोड़ रूप प्राचीन विद्या का अध्ययन हो, योग का विज्ञान हो, राज्यव्यवस्था का संचालन हो, जीवन को शांति की ओर ले जाने वाले मंत्र हों, जहाँ हथौड़ा और छेनी से प्रदर्शित होने वाले भाव भंगिमा को हूबहू प्रस्तुत करने वाले स्थापत्य हों या फिर प्रकृति के अगाध सौंदर्य को रंग, रेखा और कुची से बिंब-प्रतिबिंब रूप में विकसित चित्रकला हो या फिर नादब्रह्म से अलौकिक आनंद की यात्रा कराने वाले संगीत हों। अरे! इस जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की किसी शाखा या उपशाखा को लें तो दुनियाभर के विचारशील मनुष्य को भारतीय संस्कृति का अनिवार्य रूप से अध्ययन करना पड़ेगा।

संसार में ऐसा कोई शास्त्र नहीं है। ऐसी कोई कला नहीं है। ऐसा कोई धर्म नहीं है और एक ही शब्द में कहना हो तो ऐसी कोई संस्कृति नहीं है, जो भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की बराबरी कर सके। इस तरह से आयुर्वेद, योग, ध्यान, ज्ञान, खगोलविज्ञान, गणित, ज्योतिष, शास्त्र से लेकर सागर के बिन्दुओं को गिनने बैठे जैसे-जैसे उलझन हो वैसे-वैसे ज्ञान विज्ञान की कोई भी हलचल या आंदोलन ऐसा नहीं है, जिसकी चर्चा हिन्दू धर्म में आती न हो।

इस कारण पूरे विश्व के तत्वज्ञानी, धर्मशास्त्री, मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, हिन्दू विचारधारा में गहरी रुचि ले रहे हैं और आधुनिक विचारधारा में तादात्म्य स्थापित करने और हिन्दू धर्म का तलस्पर्शी अध्ययन करने के लिए तत्पर हुए हैं।

विश्व में हुए संशोधनों ने प्रमाणित किया है कि हिन्दू धर्म सात हजार वर्ष परम्परा रखता है। वास्तव में हिन्दू धर्म इससे भी अधिक प्राचीन है। हिन्दू धर्म एक ऐसा विशाल वृक्ष है, जिसका मूल भूतकाल की गहराई में, वसुधा के विस्तार में और हिमालय की पर्वत श्रृंखलाओं तक फैला है। मानव जाति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दू धर्म ने प्राचीन काल से समस्त एशिया महाद्वीप के जीवन को प्रभावित करने का कार्य किया था।

हिमालय जैसी ऊँचाई और सागर जैसी गहराई रखने वाले हिन्दू धर्म का अध्ययन करने के इच्छुक विद्यार्थियों के लिए आज के गतिमान युग में पूर्वी वैज्ञानिक पद्धति से तैयार ऐसा कोई शब्दकोष नहीं है। भारत से बाहर बसने वाले विद्वान तथा विद्यार्थी भारत की संस्कृति के विषय में तलस्पर्शी जानकारी लेने के लिए तत्पर होते है तब उन्हें हताश इसलिए होना पड़ता है कि अंग्रेजी भाषा में हिन्दू धर्म की आधारशिला को आधारभूत, विश्वासपात्र, वस्तुनिष्ठ, अंर्तदृष्टि से भरपूर वैज्ञानिक पद्धति से रचित कोई विश्वकोश नहीं मिलता।

हिन्दू धर्म की सबसे अधिक दुःखद घटना यह है कि धर्म और इसकी सभ्यता तथा संस्कृति लाखों लाखों वर्ष पुरानी होने पर भी इसका कोई श्रद्धेय विश्वकोश नहीं है। इसकी तुलना में ईसाई धर्म के अनुयायियों ने अपने धर्म का विश्वकोश प्रकाशित किया है। श्रीलंका में हाल ही में बौद्ध धर्म का विश्वकोश प्रकाशित करने की तैयारी है। तुर्की सरकार द्वारा कुछ वर्ष पहले इस्लाम धर्म के विश्वकोश की तुर्की आवृत्ति प्रकाश हो चुकी है। और अब पाकिस्तान इस्लाम धर्म का इस प्रकार का विश्वकोश प्रकाशित करने ही वाला है। तब भारतीय संस्कृति की सर्वांगी झाँकी कराने वाले अंग्रेजी भाषा में लिखे गये एक भी विश्वकोश राज्य सरकार अथवा केंद्र सरकार, धार्मिक संगठनों या संप्रदायों, विद्वानों या संशोधकों ने अब तक संसार के चरणों में समर्पित नहीं किया।

इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाइन्डेशन के अनन्य और अभूतपूर्वआयोजनः ''हिन्दू धर्म विश्वकोश''

हिमालय की गोद में गंगा के तट पर शोभायमान भारत के एक सबसे विशाल आश्रम परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश के अध्यक्ष स्वामी श्री चिदानंद सरस्वती जी ने हिन्दू धर्म विश्वकोश के प्रकाशन करने का शिवसंकल्प किया। इस दिशा में उनके मार्गदर्शन में पूरे विश्व के संशोधकों द्वारा विचार मंथन करके ग्यारह ग्रंथों में हिन्दू धर्म विश्वकोश विश्व को अर्पित किया। भारत और पूरे विश्व के विद्वानों का प्रतिनिधि मंडल इस कार्य को पूरा करने में रात-दिन एक करके साठ लाख से भी अधिक शब्दों का लेखन करने के लिए तत्पर थे। (ग्यारह) खण्ड में यह कार्य पूरा होकर प्रकाशित हुवा है, उस समय 21 वीं सदी को 20 वीं सदी की यह बड़ी भेंट मानी जायेगी। उसमें हिंदू धर्म और भारतीय धर्म परम्परा के प्रत्येक फलक को मापा गया है। और उसके अलग-अलग अंगों में इस संस्कृति को स्पर्श करते हुए एक-एक आन्दोलनों को प्रतिबिंबित किया गया है।

प्राचीन पुराणों में देवों के समुद्र मंथन करने की रोमांचकारी कथा प्राप्त होती है। उस समुद्रमंथन से भी अधिक उत्तेजक विश्वकोश रूपी यह विचारमंथन साबित हो रहा है। तब समग्र विश्वकोश के विद्वान इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दुइज्म की आतुर निगाहों से राह देख कर बैठे हैं।

इस विश्वकोश का मूल हेतु भारतीय धर्म का समस्त विश्व को दर्शन कराना, हिन्दू धर्म का विचार, आचार और संस्थाओं का इतिहास और ऐतिहासिक स्थिति की झाँकी प्रस्तुत करना है। यह विश्वकोश प्रत्येक संशोधक के संशोधन कार्य में उपयोगी हो सके और इसके साथ-साथ हिन्दू धर्म का दर्शन करने के इच्छुक, इस संस्कृति के प्रति आदर, श्रद्धा, भाव और संवेदन का अनुभव करने वाले सर्वसामान्य शिक्षित मनुष्य की समझशक्ति में वृद्धि करें, उसे इस धर्म के प्रभावक तत्वों का परिचय मिलता रहे और विशेष रूप से भारत की संस्कृति से बाहर विदेश में पलती पीढ़ी को स्वयं जिस धरती में से पोषण प्राप्त करके विकसित किया है। इस धरती के सुगन्ध का सागर निरखने का अवसर मिले और नई पीढ़ी प्राचीन भारतीय विरासत को जीवन में आत्मसात करके भारतीय संस्कृति से सुवासित रहे और भारत की संस्कृति को अपना कर अपने जीवन को शुद्ध करे इस लिए यह विश्वकोश एक आदर्श साबित होगा।

इसमें प्रत्येक विषय सम्मिलित कर लेने पर भी उसका निरूपण दुर्बोध न बने इसका विशेष ध्यान रखा गया है। यह हिन्दू परम्परा के अनुरूप होने पर भी अवश्य यह धार्मिक संकुचितता की सीमा को भेदकर संकुचितता से परे हो ऐसा आयोजन किया गया है। इससे भारत की प्राचीन संस्कृति की जानकारी होने पर भी उसकी प्रस्तुति आधुनिक युग के अनुरूप है।

यह विश्वकोश शैक्षणिक होने पर भी शैक्षणिक भावों को अभिव्यक्त नहीं करेगा। विश्व में आंतरिक भावजगत में भारतीय विरासत जुड़ी होने से यह पूरे अर्थ में समस्त मनुष्य जाति की आध्यात्मिकता का नशा बना रहे ऐसा आयोजन किया गया है।

कलाः

प्राचीन भारत की समस्त कलाओं का उद्‌गम धर्म में से हुआ है। इससे भारतीय कला अपने कलाकार की आंतरिक मनोदशा का प्रकटीकरण कभी भी बना नहीं परन्तु इसका उद्देश्य धर्म प्रसार के लिए, लोगों को इस कला के प्रभावक तत्व से उर्ध्वगामी विचारों की प्रेरणा देकर आध्यात्मिक विकास की तरफ ले जाना रहा है। इसके कारण भारतीय कला ''आर्ट फॉर आर्टसेईक'' अर्थात ''कला के लिए कला'' नहीं परन्तु ''आर्ट फॉर लाइफसेईक'' ''जीवन के लिए कला'' का संदेश देता है। इस दृष्टिबिन्दु को ध्यान में रखकर हिन्दू धर्म विश्वकोश में सघन ललितकलाओं के अध्ययनरूपी निचोड़ को रखा गया है।

स्थापत्यः

भारतीय स्थापत्य कला के प्रतीकात्मक भावों को विकसित करता है। स्थापत्य कला में योजित प्रतीक बहुत ही गूढ़ और सर्वव्यापी प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सक्षम हैं। भारत के मंदिर स्थापत्य कला के सर्वोच्च शिखर हैं।

शिल्पः

इस कला में आवाज और गति के अतिरिक्त सभी मानवीय संवेदनाओं को प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारत के मंदिर में और भारत के अन्य मंदिरो में देवी-देवताओं के प्रतीक रूप में मंदिर के बाहर यक्ष किन्नर और गांधर्व और नृत्य करते कलाकारों की भावभंगिमा दर्शाने वाले शिल्पकला के नमूने अद्‌भुत कला के उत्तुंग शिखरों पर दृष्टिगोचर होते हैं।

चित्रकलाः

भारतीय चित्रशैली विश्व के अध्ययन कर्ताओं को आकर्षित करती रही है। रंग, रेखा, कूची द्वारा विविध धर्मों के प्रभाव अंतर्गत निर्मित चित्रकला का एक अपना इतिहास है। हजारों वर्ष की चित्रकला का एक विशाल फलक है। भारत में प्रत्येक धर्म के प्रसार में चित्रकला ने जो अप्रतिम योगदान दिया है उसे इस विभाग में संम्मिलित किया गया है।

संगीतकलाः

जिसकी अभिव्यक्ति नाद से होती है और जिस नाद को नादब्रह्म का नाम दिया गया है, उस संगीतकला कंठ और वाद्य के स्वरूप में तत्काल तथा अप्रतिम शुद्ध आनन्द देकर आन्तरिक भावजगत को परिशुद्ध करके व्यक्त करती आयी है। भारतीय शास्त्रीय संगीत के मंगल आन्दोलनों, धर्म की साधना, उपासना और आराधना के लिए उत्पन्न प्रभावकारी परिणाम लाते हैं, इसके राग विशिष्टभाव छटा को समय-समय के प्रहार में नयी अर्थ घटाओं को प्रकट करता है। भारतीय संगीत अपनी शास्त्रीय राग-रागिणियों के कारण धर्म क्षेत्र में विशुद्ध मति की धाराएं किस तरह प्रकट करते हैं, उसकी इसमें झाँकी मिलेगी।

भारत के एक-एक प्रान्त में जो नृत्यशैली विकसित हुई है उसे भारतीय धर्मों के आन्दोलनों के विविध भावमुद्राओं द्वारा प्रकट करने का कार्य किया है। मणिपुर नृत्य, भरत नाट्‌यम, कुचीपुड़ी से लेकर किसी भी नृत्यशैली की मीमांसा की जाये तो उनके प्रत्येक संकेत में धर्म, संप्रदाय या पौराणिक गाथा का सीधा प्रकटीकरण दृष्टिगोचर होगा।

साहित्यः

भारतीय साहित्य हिन्दू धर्म का श्वासोच्छवास है। भारतीय संस्कृति में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास से लेकर प्राचीन जगत में दृष्टिपात करने पर जो वेद, उपनिषद और

महाकाव्य प्राप्त हुए हैं। उनके रचयिता ऋषि मात्र ललितकला के ही सर्जक नहीं, अपितु क्रांतदृष्टा, आर्षदृष्टा जैसे मेधावी युग पुरुष होने से यह साहित्य चिरकालीन और समस्त मानव जाति को प्रत्येक समय में प्रेरणा अपनाने वाले वैश्विक कोटि का स्पर्श किया है।

हिन्दू धर्म का प्रचार-प्रसार जागृतिक संदर्भ में:

हिन्दू धर्म वायु की तरह यत्र, तत्र, सर्वत्र फैला हुआ है। यह कोई भौतिक, संकुचित सीमाओं के मर्यादित फलक में सीमित नहीं है। इसलिए हिन्दू धर्म में जो भक्ति आन्दोलन प्रकट हुए हैं वे दक्षिण पूर्व एशिया आस्ट्रेलिया, यूरोप, उत्तर और दक्षिण अमेरिका, केरेबियन, प्रदेशों तथा नेपाल तक फैले हैं। और प्रगाढ़, प्रभाव में वहां की संस्कृति का निर्माण हुआ है। इस मुद्दे को हिन्दू धर्म विश्वकोश में व्यापक रूप से संम्मिलित कर लिया गया है।

इतिहासः

इतिहास हकीकत का खजाना और घटनाओं का महासागर है। भारतीय इतिहास लेखन की एक विशिष्ट पद्धति है। यह पद्धति इतनी प्रबल और विशिष्ट है कि पूरे विश्व के अध्ययनकर्ताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया है। हिन्दू तथा जैन धर्म, बौद्ध तथा सिख धर्म के प्रभाव अन्तर्गत के राज्यों तथा सीमाओं को जनजीवन के तानाबाना की तरह इतिहास गूंथा हुआ है। उसके धार्मिक आन्दोलन, शिलालेख, सिक्के तथा आधारों और पुराणों की गाथाओं में सुरक्षित पड़े हैं।

भाषा और साहित्यः

धर्मग्रंथों और धार्मिक विषयों पर संस्कृत और जगत की अन्य भाषाओं में भाष्य टीकाओं से लेकर जनजीवन को स्पर्श करते लोक साहित्य, दंतकथाएँ, रूपक और तब से शुरू करके तात्विक विचार संबंधी धार्मिक वादों की देन अत्यन्त विशिष्ट है।

तत्वज्ञानः

आध्यात्मिक, विद्या, मानसशास्त्र, नीतिशास्त्र, भारतीय तत्वज्ञान का षड्दर्शन, जैन, बौद्ध और सिख सप्रदाय की विचारधारा, तंत्र, शैव, सैद्धान्तिक और आधुनिक हिन्दू विचारधारा इस विषय के अध्ययन क्षेत्र हैं।

राज्यशास्त्रः

राज्यशास्त्र हिन्दू धर्म का महत्वपूर्ण अध्ययन करने जैसा प्रकरण है। हिन्दू धर्म के राज्य में व्यवस्था तंत्र, राजद्वारी संस्थाओं की कार्यपद्धतियाँ, न्यायपद्धति, अर्थशास्त्र, कानून और व्यवस्था, सैन्य, सैनिकों का इतिहास एवं आयुध तथा शास्त्र हिन्दू धर्म की संस्कृति की एक विशिष्ट भेंट है।

धर्म और आध्यात्मविद्याः

धर्मसूत्र, श्रुति, स्मृति, देव-देवियों, संतों, रहस्यवादियों, आचार्यों, कर्मकांड, धार्मिक त्यौहार, उत्सव, वैष्णव, संप्रदाय, शैव संप्रदाय, शात संप्रदाय, तीर्थ स्थानों, सर्वधर्म, समभाव की प्रवृत्तियाँ, पुराणों मंदिरों तथा देवस्थानों, धार्मिक संस्कारों और विधियों का इस विभाग में समावेश होता है।

विज्ञानः

आयुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, खगोलशास्त्र, गणितशास्त्र, विश्व विशेष की उत्पत्ति के संबंध में मत रसायनशास्त्र और दूसरे आनुसांगिक विद्या का समावेश इस विभाग में होता है।

सामाजिक संस्थाएँः

वैचारिक आन्दोलनों, शिक्षा पद्धतियों, वर्णाश्रम धर्म, जाति आदिवासी जातियाँ, उनके रीति-रिवाज, समाज में महिलाओं का स्थान खेल-कूद आमोद-प्रमोद, व्रत, उपहार, उत्सव, भोजन, प्रसाधन, विद्या सहित अन्य सभ्यताओं का विचार इस विषय के अंतर्गत किया जाता है।

कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, हठयोग और तंत्र विद्या इस विषय के महत्वपूर्ण भाग हैं।

तुलनात्मक अध्ययनः

भारतीय विचार परम्परा में दर्शन संम्मिलित करते तुलननात्मक अध्ययन किया गया है।

महिला जगत के प्रश्नः

वैवाहिक प्रथा, सती प्रथा, विरासत, दहेज, लग्न विच्छेद से मानव को भारतीय नारी के भाव जगत को प्रभावित करने वाले परम्परा का नवनीत यहाँ अभिव्यक्ति हुआ है। सामाजिक जीवन व्यवस्था इस विश्वकोश के एक अध्ययन का विषय है।

भावी समाज को संदेशः

जिस किसी परम्परा का मूल्यवान आन्तरिक दर्शन करके उसके मूल्यों तथा सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धि को स्पष्ट रूप से एवं उचित ढंग से प्रकट न किया जाये तो समग्र प्रणाली को गंभीर नुकसान होता है। हिन्दू के रूप में हमें संस्कृति के सिद्धांतों एवं परम्परा की रक्षा करना तथा उसे आगे विकसित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

अलग-अलग ऐतिहासिक, राजनैतिक तथा आर्थिक कारणों के कारण हिन्दू परम्परा सदियों तक परिवर्तित होती रही है। जगत का मानव समाज और अति प्राचीन तथा अगाध धार्मिक परंपरा के बारे में बहुत कम जानता है। इस कार्य को सरल करने का समय पूरा हो गया है। वर्तमान युवा और भावी पीढ़ी के हित में ''हिन्दू धर्म विश्वकोश'' को प्रोत्साहन देने के लिए हम सभी उमदा आत्माओं से विनति करते हैं।

प्राचीन संस्कृति का शाश्वत संदेशः

- हमारे बालकों एवं भावी जनता के लिए हम अपने से संभव हो सके उतना सभी कुछ करें इस दिशा में ''हिन्दू धर्म विश्वकोश'' एक प्रथम प्रयास है।
- हिन्दू धर्म के संबंध में पश्चिमी देशों में बहुत अधिक गलतफहमी व्याप्त है। यह विश्वकोश इस गलतफहमी को दूर करके प्रमाणित और विश्वसनीय जानकारी देगी।
- हिन्दू धर्म विश्वकोश भारत की संस्कृति को समझने के लिए मूल्यवान, आधारभूत ग्रंथ साबित होगा।
- मानव जीवन का लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। समाज के चार विभाग, चार वर्ण, चार आश्रम तथा जीवन के चार पुरुषार्थो का हिन्दू धर्म में विशिष्ट महव है। इन परम्पराओं का दर्शन एवं विश्लेषण हिन्दू धर्म विश्वकोश में प्रतिबिंबित हुआ है।
- वेद, उपनिषद, पुराण, भगवद् गीता, रामायण तथा महाभारत जैसे ग्रंथों ने हिन्दू धर्म के प्रसार की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इन महाकाव्यों तथा ग्रंथों के अभिव्यक्ति होते हिन्दू धर्म के पहलुओं की हिन्दू धर्म विश्वकोश में विशद छानबीन होगी।
- मध्यकालीन भक्ति संप्रदाय का व्यापक प्रसार करने वाले संतों-भक्तकवियों और अर्वाचीन युग के मेधावी मनुष्यों जैसे कि रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री दयानंद सरस्वती, श्री अरविंद, महात्मा गांधी जी, रमण महर्षि, रवीन्द्र नाथ टैगोर, सर्व पल्ली राधाकृष्णन सहित समग्र भारत के प्रान्तों में उदित वैचारिक आन्दोलन की रूपरेखा तथा आकृति का दर्शन 'हिन्दू धर्म विश्वकोश' में संम्मिलित कर लिया गया है।
- 'हिन्दू धर्म विश्वकोश' भारतीय समाज और विश्व के अन्य सांस्कृतिक और धार्मिक समाज के बीच समझदारी, सुसंवादिता तथा सहिष्णुता को विकसित करना चाहता है। इस धर्म का संमग्र आयोजन आंतरिक दृष्टि वाले ज्ञान और विश्वशांति का माध्यम बनेगा।
- हिन्दू धर्म और विज्ञान को कभी अलग नहीं माना है। और उसके संघर्ष का दर्शन नहीं किया है। हिन्दू परम्परा को ऋषियों एवं वैज्ञानिक मानते हैं। और भारतीय जीवन प्रणाली आंतरिक ब्रह्म सत्य की खोज को प्रोत्साहन देते हैं।
- हिन्दू तत्व दर्शन निरंकुश सत्तावादी नहीं है। नीति शास्त्र में जीवन व्यवहार के स्तरों का विकास है। भारतीय नीतिशास्त्र उर्ध्वगामी विकास की गति पर बल देता है।
- भारतीय राजनीति लोगों की विविधता में एकता को देखती है। वह विकेन्द्रीकरण पर बल देती है।
- भारत में महर्षि व्यास ने वेदों का जो विभागीकरण किया है ऋग्वेद, यदुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। ये इनसालिोपीड़ीया जैसे विस्तृत है। भारत का महाकाव्य महाभारत एक ज्ञान का खजाना है। इसके बारे में महर्षि व्यास कहते हैं, 'यहाँ जो प्राप्त होगा वह आपको

दूसरे के द्वारा भी मिल सकता है, परन्तु आपको यहाँ जो नहीं मिले वह दूसरी अन्य जगह कहीं न मिले।' ''हिन्दू धर्म विश्वकोश'' इस महान कार्य को आगे ले जाता है।

- ''हिन्दू धर्म विश्वकोश'' सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होने से हिन्दू धर्म का विशाल ज्ञान इस तरह से प्रकाशित करेंगे कि जिन्हें भारतीय संस्कृति के किसी न किसी विशिष्ट पहलू पर संशोधन करना हो तो उसे मात्र संदर्भ कोश के रूप में नहीं परन्तु ज्ञान और अनुभूति की एकात्मकता विकिसित करने में यह सहायक सिद्ध होगी।
- धर्म और तत्वज्ञान के क्षेत्र में अन्य विश्वकोश की तरह यह विश्वकोश मात्र हिन्दुओं के लिए ही सीमित नहीं रहता बल्कि समग्र मानव जाति के लिए मार्गदर्शन देगा।
- 'हिन्दू धर्म विश्वकोश' में हिन्दू धर्म का संपूर्ण चित्रण प्रतिबिंबित होता है। इससे विधियाँ, उत्सवों, सांस्कृतिक कर्मकांडों एवं धार्मिक संस्कारों और रीति-रिवाज का संपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह सत्य और परमतत्व की प्राप्ति के लिए अनेक आध्यात्मिक साधनों को अंगीकार करने वाला विश्वकोश बने इसके लिए पूरी तरह ध्यान दिया गया है।
- हिन्दू धर्म विश्वकोश एक ओर से भारतीय संस्कृति की प्रामाणिक विरासत वाचकों के समक्ष प्रस्तुत करेगा। दूसरी तरफ यह हिन्दू धर्म विश्वकोश अन्य धर्मों के अनुयायियों को भारत के अमूल्य विरासत का साक्षात्कार करने में मदद रूप बनेगा। यह विश्वकोश तैयार करने के लिए प्राचीन लेखों, हस्त लेखों, प्रादेशिक भाषाओं में संशोधन, चिंतन करने वाले विद्वानों का सहयोग लेकर उसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया है।

हिन्दू धर्म विश्वकोष 11 खंडो में समय मर्यादा में तैयार हो इसके लिए पूर्व और पश्चिम के अनेक विद्वानों का सहयोग लिया गया है। इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन के चेयरमैन तथा ऋषिकेश परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष पूज्य श्री स्वामी चिदानंद सरस्वतीजी महाराज ने प्रेरणा तथा मार्गदर्शन दिया है।

पूज्य स्वामीजी ने सतत परिभ्रमण करके आधुनिक युग में एक विरक्त संन्यासी भारतीय संस्कार एवं संस्कृति के समर्थन के लिए कितना विराट पुरुषार्थ कर सकते हैं इसका जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है।

इस अर्थ में पूज्य स्वामीजी भारतीय संस्कृति की गंगोत्री हैं। इन्होंने समग्र विश्व में हिन्दू धर्म के प्रभाव तत्वों को प्रसारित करने का जो अद्‌भुत कार्य किया है, उससे ये विरल, कर्मठ संन्यासी युगों तक याद किये जायेंगे।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दुइज्म
प्रस्तुतिः घनश्याम महेता, अनुभूति महेता
इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउन्डेशन के इस सदी का हिमालय
समान विराट, गंगा समान पवित्र प्रकल्प।

(३७)

गंगा एक्शन परिवार (G.A.P.) गैप

गंगा एक्शन परिवार क्या हैः-

'नद्याः जगतस्य मातरः' – नदियाँ विश्व की माँ है क्योंकि न केवल मनुष्य बल्कि सृष्टि रचना का प्रत्येक प्राणी, वनस्पति उससे अपना जीवन पाता है। 'गंगा एक्शन परिवार' माँ गंगा की सेवा में समर्पित एक विश्व–परिवार है। इस परिवार का लक्ष्य माँ गंगा और इसके परिवार के अन्य सदस्य यथा नदी, नाला, झरना, झील, तालाब इत्यादि के जल को निर्मल, निर्बाध एवं अविरल प्रवाहमय बनाने में अपना योगदान देना है। इस पुनीत कार्य के लिए देश–विदेश से अनेक भारतवंशी – वैज्ञानिक, पर्यावरणविद्, पूज्य सन्त, कवि, लेखक, पत्रकार, कलाकार, नेता, अभिनेता, पूर्व सरकारी अधिकारी एवं सांस्कृतिक विचार–धाराओं के लोग इस परिवार से जुड़कर अपने–आपको गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। सभी लोग माँ गंगा की मोक्षप्रदायिनी जलधारा को प्रदूषण–मुक्त कराने में अपना योगदान कर रहे हैं। गैप की शुरूआत करने की प्रेरणा परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी महाराज ने दी, परन्तु इसकी मुखिया माँ गंगा हैं और हम सब हैं उसके सेवक।

कौन है - 'गंगा एक्शन परिवार' के प्रणेता :

'गंगा एक्शन परिवार' (G.A.P.) की स्थापना पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी की प्रेरणा से हुई। इस परिवार की मुखिया स्वयं माँ गंगाजी हैं। पूज्य महाराजश्री अपने आध्यात्मिक जीवन–दर्शन, शाकाहार आन्दोलन आदि के लिए देश–विदेश में विख्यात हैं। वह एक गम्भीर चिन्तक, विचारक व समाज सुधारक हैं। आपने गंगा माँ को प्रदूषण–मुक्त कराने के लिए एक अभिनव अभियान चलाया, उसी को "गंगा एक्शन परिवार" का नाम दिया गया है।

'गंगा एक्शन परिवार' की स्थापना :

"गंगा एक्शन परिवार' की स्थापना दिनाँक 04 अप्रैल, 2010 को 'स्पर्श गंगा' आयोजन के महान अवसर पर परमार्थ निकेतन आश्रम, ऋषिकेश में परम पूज्य दलाई लामा एवं अन्य परम पूज्य सन्तों के कर–कमलों द्वारा हुई। इस पवित्र अवसर पर अनेक संतों, विशिष्ट महापुरुषों ने उपस्थित होकर आशीर्वाद दिया।

क्या है 'गंगा एक्शन परिवार' की स्थापना का लक्ष्य:

'गंगा एक्शन परिवार' की स्थापना का लक्ष्य माँ गंगा यमुना की निर्मल जलधारा को किसी भी तरह के प्रदूषण से मुक्त कराना है। साथ ही साथ भारतीय राष्ट्र की इस अमूल्य धरोहर के सांस्कृतिक इतिहास को जीवन्त बनाना है। माँ गंगा, भारत के वैभवशाली अतीत के इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, अध्यात्म, दर्शन, कला, साहित्य एवं भारतीयों के पौरुष की मूकदर्शक है। 'गंगा एक्शन परिवार' गंगा के तट पर विकसित होने वाली संस्कृति के इतिहास को देश–विदेश के लोगों तक पहुँचाने के लिए विभिन्न संचार माध्यमों का उपयोग कर रहा है। समय–समय पर देश–विदेश की पत्र–पत्रिकाओं में शोधपरक लेख प्रकाशित हो रहे हैं। गंगा के महत्व को दर्शाने वाली फिल्मों एवं उसे प्रदूषण से मुक्त कराने के लिए किए जाने वाले प्रयासों का भी दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

यह परिवार सभी संस्थाओं से जुड़कर उन्हें, साथ लेकर माँ गंगा के साथ–साथ इसकी अन्य बहनों – यमुना, सरयू, घाघरा, गोमती, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, महानदी आदि नदियों और देश के सभी जलाशयों को प्रदूषण–मुक्त कराने की मुहिम चला रहा है।

क्या है गंगा से सम्बन्धित समस्या :

माँ गंगा के साथ आज जितना अन्याय हो रहा है शायद दुनिया की किसी भी नदी की जलधारा के साथ नहीं हुआ। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और चीन की तुलना में भारत कहीं बहुत पीछे छूट गया है। आखिर क्या कारण है कि हम भारतीय जिस गंगा जल को अपने जीवन की अन्तिम वेला में मोक्ष का साधन मानते रहे हैं, आज उसी में अपनी हर तरह की गन्दगी प्रवाहित कर रहे हैं। आज माँ गंगा की अमृततुल्य, जलधारा में मल–मूत्र, कूड़ा–कचरा, अधजले शव, मृत पशुओं को फेंक कर कौन सा पुण्य अर्जित कर रहे हैं? औद्योगिक अपशिष्ट (कूड़ा) और कारखानों का जहरीला पानी गंगा में बहाया जा रहा है। महानगरों की सीवर लाइनें नदी के जल को इस तरह प्रदूषित कर रही है कि पानी का स्पर्श करने में भी डर लगने लगा है। कुछ खास समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

स्वास्थ्य की समस्या :

गंगा–जल के प्रदूषण से इसके बेसिन में बसने वाली विशाल आबादी को स्वास्थ्य की भीषण समस्याओं से होकर गुजरना पड़ रहा है। चिकित्सा–विज्ञानियों के अनुसार जलजनित बीमारियों यथा– डायरिया, टायफाइड, हैपेटाइटिस, पीलिया, खसरा, आंत्रशोध, हैजा के कारण गंगा बेसिन में हर मिनट में एक व्यक्ति मौत का शिकार हो रहा है। डाक्टरों का कहना है कि हार्ट अटैक, टी.बी., कैंसर ये तीनों बड़ी बीमारियाँ मिलकर भी साल भर में जितने लोगों

को नहीं मार पाती हैं, उससे तीन गुना अधिक लोग हर साल केवल हैपेटाइटिस से हमारे देश में मर जाते हैं। यह एक जलजनित बीमारी है। जलजनित बीमारियों के कारण हमारे देश में लगभग 20 लाख बच्चे हर साल मौत के शिकार हो रहे हैं।

सीवेज की समस्या :

गंगा की जलधारा को प्रदूषित करने वाली सबसे बड़ी समस्या इसके तट पर बसे हुए महानगरों के सीवेज है – इनके जरिये प्रतिदिन लगभग 1.3 अरब लीटर पानी एवं मल–मूत्र गंगा की जलधारा में गिराया जा रहा है। यही नहीं, इसी के साथ औद्योगिक महानगरों का कूड़ा–कचरा, तेजाबी जल, जहरीले पदार्थ गंगा की धारा में प्रवाहित किये जा रहे हैं। अकेले कानपुर में ही 1,125 टन लीटर सॉलिड क्रोमियम पानी गंगा में बहाया जा रहा है, जिससे किडनी एवं लीवर की जानलेवा बीमारी पैदा हो रही है। कानपुर के अलावा इलाहाबाद, वाराणसी, पटना इत्यादि महानगरों का गन्दा पानी और कचरा गंगा में मिलकर प्रदूषण की समस्या पैदा कर रहा है।

क्या गंगा का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा?

यदि आज जैसा हाल रहा और हम माँ गंगा की अविरल धारा को बचाये रखने के लिए तैयार नहीं हुए तो वह दिन दूर नहीं जब गंगा और उसकी सहायक नदियों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा। अभी हाल में ही दुनिया की 900 नदियों के अध्ययन की रिपोर्ट में कहा गया है कि गंगा विश्व की उन नदियों में से एक है जो तेजी के साथ विलुप्त होने की ओर बढ़ रही है। यह सही है कि गंगा और उसकी कई सहायक नदियों में तेजी के साथ जल की कमी होती जा रही है। यदि पर्यावरणविदों की यह भविष्यवाणी सही हुई तो भारत की लगभग एक तिहाई आबादी अन्न और पानी के अभाव में अकाल मौत के मुँह में समा जायेगी।

गंगोत्री के ग्लेशियर का तेजी के साथ पिघलना, अनावश्यक बाँध–बंधों का निर्माण, जंगलों का विनाश, पर्वत शिखरों का धराशायी होना, विश्व–तापमान में तेजी से वृद्धि आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनका समाधान ढूँढने की आज आवश्यकता है।

'गंगा एक्शन परिवार' गैप में शामिल होकर आप निम्नलिखित सहयोग कर सकते हैं:–

- प्रशासनिक सहयोग,
- वैज्ञानिक शोध,
- ठोस कचरा प्रबंधन,
- प्रदूषित जल प्रबंधन,
- ऊर्जा प्रबंधन,
- कृषि प्रबंधन,

- पर्यावरणीय प्रबंधन,
- कानूनी सहयोग एवं सलाह,
- मीडिया संबंधी सहयोग एवं सलाह (टी.वी., फिल्म, रेडियो),
- रचनात्मक सहयोग (फोटोग्राफी, आर्ट, कविता, लेख, पत्रकारिता आदि),
- भाषाई सहयोग,
- ऑनलाइन सोशल नेटवर्किंग (फेसबुक, ट्विटर, यू–ट्यूब, ब्लागिंग इत्यादि),
- डिजाइनिंग,
- वेब साइट का विस्तार और रख–रखाव,
- इवेंट प्लानिंग और लोकल इवेंट,
- स्थानीय व्यापार, स्कूल सम्बन्धी सहयोग,
- प्रचार अथवा अन्य किसी प्रकार का सहयोग

(३७)

गंगा एक्शन परिवार
स्वच्छ गंगा, निर्मल गंगा, गंगा की सेवा करें, गंगा को प्रदूषण से मुक्त करें।

गंगा एक्शन परिवार :–

गंगा एक्शन परिवार (GAP) पेशेवर पर्यावरणीय अभियंताओं, वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों, सन्तों तथा समर्पित सेवकों का एक विश्वव्यापी परिवार है, जो मॉ गंगा की सेवा के लिए समर्पित हैं। यह परिवार मॉ गंगा और उनकी सहायक नदियों के पुनरुद्धार, रक्षण तथा उनके अविरल एवं निर्मल प्रवाह बनाये रखने हेतु प्रतिबद्ध है तथा प्रदूषण एवं अन्य बाधाओं के प्रभावकारी निराकरण हेतु प्रयासरत है। GAP इस पवित्र भारतीय सांस्कृतिक विरासत की रक्षा एवं संरक्षण हेतु समर्पित है, क्योंकि यह केवल लाखों लोगों की आस्था ही नहीं बल्कि पचास करोड़ लोगों, असंख्य जीवधारियों, वनस्पतियों आदि के लिए जीवनदायिनी है तथा भूमि को सिंचित करने वाली है।

गंगा से सम्बन्धित मुद्दे :–

- जलजनित रोगों और 80 प्रतिशत स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं तथा एक तिहाई मृत्यु के लिए भारत एवं विकसित देश में उत्तरदायी है। केवल वाराणसी में 66: लोग जो गंगा–जल का उपयोग करते हैं, टाइफायड एवं पेचिश जैसे रोगों के सम्पर्क में आते हैं।
- प्रत्येक 60 सेकेण्ड में गंगा बेसिन में रहने वाले एक व्यक्ति की मृत्यु डायरिया से होती है। यह जल जनित बीमारी प्रतिवर्ष 2 लाख से ज्यादा भारतीय बच्चों की मृत्यु के लिए जिम्मेदार है।
- 1.3 विलियन दूशित जल प्रतिदिन गंगा में प्रवाहित होता है। कुछ स्थानों पर फीकल कॉलीफॉर्म की संख्या स्वास्थ्य मानकों से 47,000 गुना ज्यादा है, जो कि डायरिया तथा गुर्दा सम्बन्धी व्याधियों के लिए उत्तरदायी है।
- जल की कमी की समस्या प्रत्येक स्थान पर है। वास्तव में गंगा के कुछ भाग तथा सहायक नदियॉ सूख रही हैं। यह तो त्रासदी है कि एक नवीन षोध के अनुसार; विश्व की नौ सौ नदियों पर हुए अनुसंधान में गंगा को विश्व की षीघ्रतम सूखने

वाली नदी के रूप में वर्गीकृत किया गया है। गंगा का षुश्कीकरण भारत के एक तिहाई भाग में भोजन एवं जल की कमी का कारण बनेगा।

- केवल कानपुर में 1,124 टन ठोस अपशिष्ट क्रोमियम गंगा में टैनरी के द्वारा प्रवाहित किया जाता है। क्रोमियम कैंसर उत्पन्न करता है, जो गुर्दे एवं यकृत को नश्ट करता है, जिससे मृत्यु हो जाती है। ये रसायन करोड़ों फसलों को नुकसान करते हैं, जो कि गंगा–जल से उगाये जाते हैं।
- कृशि से निकलने वाले गंगा–जल में खतरनाक एवं कैंसरकारी विशैले रसायन जैसे क्क्ज एवं HCH भर रहे हैं। ये सब तत्व अन्तरराष्ट्रीय मानकों से कहीं ज्यादा पाये गये हैं।
- गंगोत्री ग्लेशियर (हिमन) जो 70ः जल गंगा नदी को उपलब्ध कराती है, वह तेजी से पिघल रही है। यह उन 500 मिलियन लोगों के लिए संकट उत्पन्न कर रहा है, जिनका जीवन और जीविका गंगा नदी पर निर्भर है।
- प्रदूशण एवं बाधा के कारण गंगा नदी की डाल्फिन अन्य पादप एवं जीवों के साथ विलुप्त हो रही है। अब 2000 से भी कम डाल्फिन गंगा नदी में रह गयी हैं।

हमारे समाधान –

- ठोस अपशिष्ट का समाधानिक प्रबन्धन
- ठोस अपशिष्ट के स्रोतों का निवारण।
- जितना सम्भव हो ठोस अपशिष्ट को कम करना एवं उनका पुनरुपयोग करना।
- रचनात्मक एवं सृजनात्मक पद्धति द्वारा ठोस अपशिष्ट का आर्थिक एवं उन्नति में उपयोग करना।
- नदियों में पॉलीथीन जैसे अविघटनकारी पदार्थों को जाने से रोकना।
- ईको फ्रेंडली विकल्प उपलब्ध कराना।

वेस्ट वाटर (अपशिष्ट जल) का प्रबन्धन :

- नदी को सभी अपशिष्ट से मुक्त करना।
- सभी औद्योगिक अपशिष्टों एवं कृशि जल से नदी को मुक्त करना।
- षोधित जल का पुनरुपयोग सिंचाई एवं टॉयलेट तथा अन्य उद्देश्यों हेतु करना।

ऊर्जा प्रबन्धन :

- आवश्यकताओं एवं प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित सस्टेनेबल ऊर्जा स्रोतों जैसे प्राकृतिक सौर ऊर्जा तथा जल विद्युत ऊर्जा के विकल्प में प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों को विकसित करना।

कृशि–प्रबन्धन :

- सिंचाई हेतु उचित जल–उपयोग को बढ़ावा देना। गंगा को विशकारी रसायन एवं कीटनाशक प्रवाह से मुक्त करने वाली नीति को लागू करना।
- किसानों के जनसमूह को कार्बनिक कृशि हेतु शिक्षित करना।

पारिस्थितिकी प्रबन्धन :–

- पर्यावरण की रक्षा करते हुए सद्भावना के साथ रहने के लिए चेतना जागृत करना।
- गंगा नदी बेसिन के विविध पादप एवं जन्तुओं को संरक्षित करना एवं पुनर्भरण करना।
- गंगा नदी बेसिन में किनारों पर सघन वृक्षारोपण करना, जिससे जल षुद्ध हो एवं मृदा अपक्षरण रुके।

हमारे प्रयास

- GAP मॉ गंगा को अनेकों प्रकार से प्राकृतिक, नैसर्गिक अवस्था में बनाये रखने हेतु प्रयासरत है। GAP के द्वारा आयोजित कुछ कार्यक्रमों का विवरण निम्न है –
- 3 T's कार्यक्रम – Toilets, Tap, Trees

  गंगा नदी के 2500 किमी बेसिन क्षेत्र में मल–निस्तारण की व्यवस्था एवं सघन वृक्षारोपण जिससे मृदा क्षरण रुक सके।
- 3 G's कार्यक्रम – गौ, गंगा एवं गन्दगी।
- घुमन्तु गायों को सड़कों से हटाकर षरण देना एवं उनकी उचित देखभाल करना।
- गंगा एवं उनकी सहायक नदियों को प्राकृतिक एवं नैसर्गिक अवस्था में बनाये रखने हेतु गंदगी को हटाना।

सौर ऊर्जा योजना –

- एक नवीन योजना का विकास करना, जो भारत की आवश्यक ऊर्जा की जरूरत को सौर ऊर्जा द्वारा पूर्ण कर सके तथा वर्ष 2050 तक सौ प्रतिशत ऊर्जा–आवश्यकता को पूर्ण कर सकें।

गंगोत्री–कार्यक्रम का नया चरण :–

- गंगोत्री के नवीनीकरण एवं सुन्दरीकरण हेतु योजना का निर्धारण। चार धाम एवं तीर्थ–यात्रियों की ईको–फ्रेंडली यात्रा तथा 2013 में हरित कुम्भ मेले का आयोजन।
- गंगा संरक्षण के लिए चेतना जागृत करना तथा लाखों लोगों को पवित्र आरती, गंगा उत्सव, नाटकों, विद्यालय एवं सामूहिक गतिविधियों द्वारा प्रेरित करना है। साथ ही स्थानीय स्तर पर गंगा सफाई के कार्यक्रम आयोजित करना।

आपसे कुछ सवाल :–

1. क्या आप गंगा एवं उसकी सहायक नदियों के पुनर्भरण एवं संरक्षण में सहायता करेंगे। गंगा एक्शन परिवार का हिस्सा बने।
2. क्या आप मां गंगा की सेवा हेतु प्रत्येक सुझाव, विचार, दान, योजना का स्वागत प्रशंसनीय है।

हमें देखें :

www.gangaaction.com

अधिक जानकारी हेतु मेल करें –

E-Mail : ganga@gangaaction.com

जय–जय गंगे, हर–हर गंगे

गंगा माँ, तुम अविरल, निर्मल बहती रहो

हमारा संकल्प

❖ गंगा मेरी माँ है, मेरी आस्था का केन्द्र है, राष्ट्रीय धरोहर है, विश्व–धरोहर है एवं प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति का पुण्य प्रवाह है।

❖ गंगा अविरल बहे, निर्मल रहे, जीवन्त रहे, इसके लिए मैं संकल्प लेती /लेता हूँ कि मैं ....(स्वयं का नाम) नीलकण्ठ यात्रा, काँवड़ यात्रा, या अन्य दिवस यात्रा, कुम्भ और धार्मिक परम्पराएँ निभाते हुए अथवा अन्य समय में भी ऐसा कोई व्यवहार नहीं करूँगी/करूँगा, जिससे गंगाजी प्रदूषित हों, जैसे–

1. गन्दे कपड़े गंगा किनारे नहीं धोऊँगी/धोऊँगा।
2. प्लास्टिक, पोलिथिन आदि को गंगा में नहीं डालूँगी/डालूँगा।
3. गंगा तट पर डिटर्जेंट साबुन आदि का प्रयोग नहीं करूँगी/करूँगा।
4. गंगा में मल–मूत्र का विसर्जन नहीं होने दूँगी/दूँगा।
5. गोमुख से गंगासागर तक गंगा अविरल एवं निर्मल बहती रहे, इसके लिए जो भी प्रयास होंगे, मैं उनमें सहभागी रहूँगी/रहूँगा।
6. मैं निम्नांकित विषयों पर गंगा एक्शन परिवार, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश को अपना सहयोग देने का संकल्प लेती हूँ/लेता हूँ –

   (क) ....

   (ख) ....

   (ग) ....

हमारा यह भी प्रयास रहेगा कि हम जन सहयोग प्राप्त कर गंगा के किनारे निर्मित किसी तट का सुदृढ़ीकरण व सौन्दर्यीकरण कराकर वहाँ गंगा–आरती का श्रीगणेश करायेंगे। हम हर साल गंगा दशहरा का उत्सव गंगा एक्शन परिवार के साथ मिलकर मनायेंगे।

हस्ताक्षर शपथकर्ता

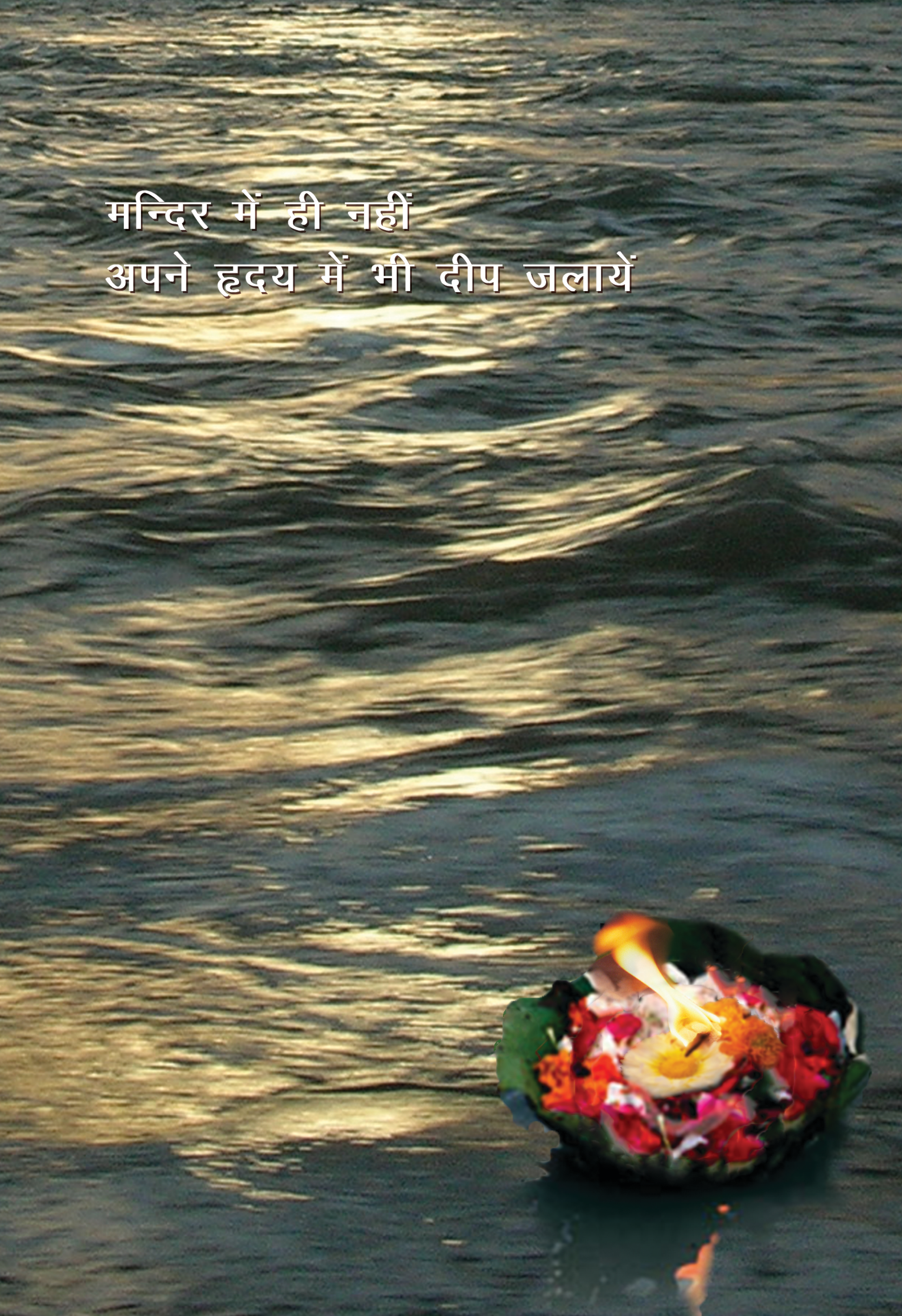
मन्दिर में ही नहीं
अपने हृदय में भी दीप जलायें